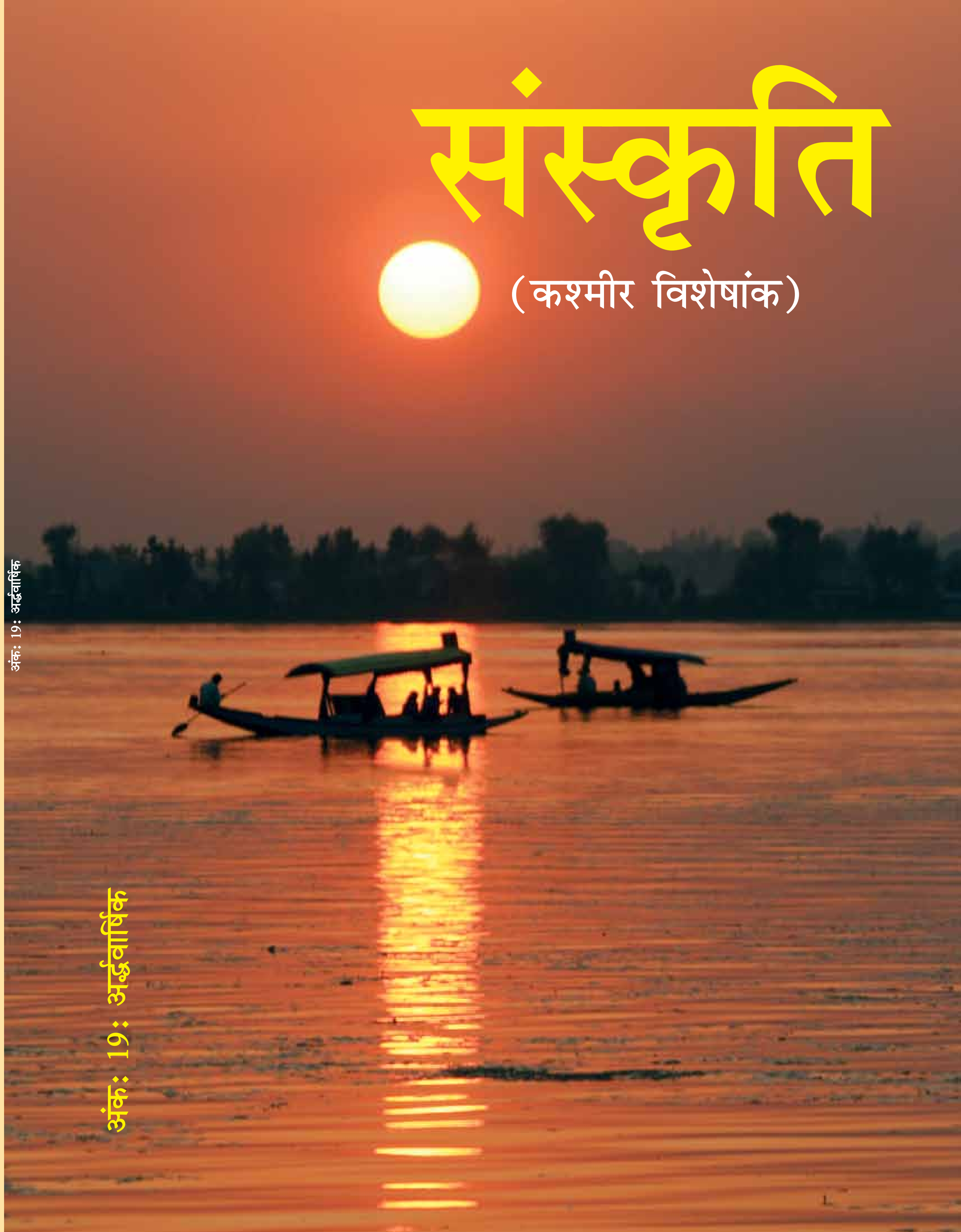

संस्कृति

(कश्मीर विशेषांक)

अंक: 19: अर्द्धवार्षिक

अंक: 19: अर्द्धवार्षिक

शारदा लिपि में देवी माहात्म्य के पृष्ठ
साभार: इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र

संस्कृति

प्राच्या नव्या विलसतुतरां संस्कृतिर्भारतीया

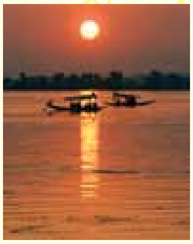

सांस्कृतिक विचारों की प्रतिनिधि
अर्द्धवार्षिक पत्रिका

संरक्षक:
जवाहर सरकार, सचिव, संस्कृति मंत्रालय

परामर्शदाता:
राकेश गर्ग, अपर सचिव, संस्कृति मंत्रालय
डॉ. टुकटुक कुमार, संयुक्त सचिव, संस्कृति मंत्रालय
डॉ. विजय एस. मदान, संयुक्त सचिव, संस्कृति मंत्रालय
निहाल चन्द गोयल, संयुक्त सचिव, संस्कृति मंत्रालय
संजीव मित्तल, संयुक्त सचिव, संस्कृति मंत्रालय

संपादक:
भारतेश कुमार मिश्र, संयुक्त निदेशक, संस्कृति मंत्रालय

उप संपादक:
विक्रमाजीत पाण्डेय, उप निदेशक, संस्कृति मंत्रालय

प्रशासनिक सहयोग:
डी. आर. डोगरा, निजी सचिव, संस्कृति मंत्रालय

वर्ष: 2010 (उत्तरार्द्ध)

अंक: 19 (तीन हजार प्रतियाँ)
केवल नि:शुल्क सीमित वितरण के लिए
मंत्रालय की वेबसाइट www.indiaculture.nic.in पर भी उपलब्ध

मुख्य आवरण: डल झील में सूर्यास्त का दृश्य
छायांकन: श्री अभिषेक पाण्डेय

भीतरी आवरण: शारदा लिपि में देवी माहात्म्य के पृष्ठ
साभार: इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र

अंतिम आवरण: रंग संयोजन, 2010,
कैनवास पर तैल रंग, 120 × 120 सें.मी.
चित्रकार: डॉ. अवधेश मिश्र, लखनऊ

संपादकीय पता:
केंद्रीय सचिवालय ग्रंथागार, द्वितीय तल,
शास्त्री भवन, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मार्ग,
नई दिल्ली-110001
टेली-फैक्स: 91 11 23383032
ई-मेल: editorsanskriti@gmail.com
dirol-culture@nic.in

'संस्कृति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार और तथ्य लेखकों के हैं, उनसे मंत्रालय या संपादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है और न ही वे उसके लिए जिम्मेदार हैं।

सत्यमेव जयते

भारत सरकार
संस्कृति मंत्रालय
शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001

ॐ में भगवान विष्णु, शिव, ब्रह्मा और हरिहर सहित देवी भवानी, दुर्गा, महाकाली और सरस्वती
18वीं शताब्दी के अंत का कश्मीर शैली का चित्र (साभार : राष्ट्रीय संग्रहालय)

अनुक्रम

संपादकीय

बुर्जहोम संस्कृति
ओंकार नाथ राजदान 7

कश्मीर की शैव परम्परा
डॉ. बैकुण्ठ नाथ शर्गा 12

कश्मीर का शैवमत
महाराज कृष्ण काव 17

कश्मीर में सूफीमत का प्रवेश एवं भावलोक
डॉ. जिया लाल हंडू 20

कश्मीरी की लोकप्रिय रामायण : रामावतारचरित
डॉ. शिबन कृष्ण रैणा 27

राम संस्कृति और कश्मीर
पृथ्वीनाथ मधुप 35

कश्मीर में संस्कृत की गतिविधियाँ
डॉ. बदरीनाथ कल्ला 40

कश्मीर के महान सूफी संत कवि : नुंद ऋषि
डॉ. निज़ामउद्दीन 45

मार्तंड : कश्मीर का सूर्योपासना केंद्र
किशोर कुमार त्रिपाठी 50

कश्मीरी वास्तुकलागत वैशिष्ट्य
डॉ. वीरेन्द्र बांगरू 53

61 पौराणिक एवं आधुनिक संदर्भों में अमरनाथ यात्रा
डॉ. रेनू कोछड़ शर्मा

65 कश्मीरी भाषा और साहित्य के नवयुग निर्माता दीनानाथ नादिम
प्रो. चमनलाल सप्रू

69 कश्मीर की सांस्कृतिक धरोहर
डॉ. रूप कृष्ण भट

71 कश्मीर और कश्मीरियत
डॉ. मज़हर अहमद ख़ान

74 कश्मीरी लोक संगीत एवं लोक नाट्य
डॉ. बीना बुदकी

80 कश्मीरी लोक नाट्य : भांड पाथर
डॉ. दिलशाद जीलानी

84 कश्मीरी लोक गीत : वनवुन
रजनी पाथरे राजदान

94 कश्मीरी लोक संस्कृति के कुछ रंग
अवतार कृष्ण राजदान

99 भाषा, संस्कृति और कश्मीरियत
अशरफ़ बट

102 सती प्रदेश की बेटियाँ
श्रीमती चन्द्रकान्ता

108 आपका पत्र मिला

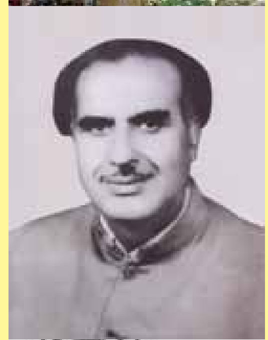

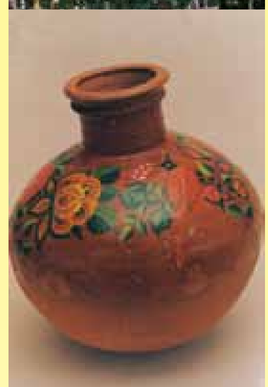

संपादकीय

हिमालय पर्वत श्रृंखला की ऊँची पहाड़ियों से आच्छादित कश्मीर घाटी की अपनी एक अलग भौगोलिक पहचान है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा कश्मीर स्थित दो पुरातात्विक स्थलों-बुर्जहोम और गुफ्रकाल में कराए गए उत्खनन से यह प्रमाणित होता है कि कश्मीर घाटी नवपाषाण काल से ही विद्यमान है।

कश्मीर घाटी अपनी प्राकृतिक सुंदरता की तरह ही अपनी सांस्कृतिक विरासत के लिए प्रसिद्ध है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में भी कश्मीर को स्वर्ग की उपमा दी गई है। मुगल बादशाह शाहजहाँ ने भी कश्मीर की सुंदरता से प्रभावित होकर कहा था 'गर फिरदौस वर-रुए ज़मीं अस्त, हमीं अस्त, हमीं अस्त, हमीं अस्त' यानी इस पृथ्वी पर यदि कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है। यहाँ के पर्यटन स्थल भारत के ही नहीं विश्व भर के पर्यटकों और प्रकृति प्रेमियों को आकर्षित और रोमांचित करते हैं। कश्मीर जितना आकर्षक है उतना ही अद्वितीय है। कश्मीर इतिहास, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, भाषा, दर्शन आदि की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध रहा है। सदियों से इसने विभिन्न सभ्यताओं और धर्मों को अपनाया तथा आत्मसात किया। हिंदू, मुस्लिम और बौद्ध दर्शन के समामेलन से यहाँ मानवतावाद, धर्मनिरपेक्षता तथा सहिष्णुता की एक मिली-जुली संस्कृति का विकास हुआ।

पंडित कल्हण ने अपनी पद्यबद्ध कृति राजतरंगिणी में कश्मीर के गौरवशाली इतिहास, सामाजिक व्यवस्था, परम्परा और मान्यताओं का विस्तृत वर्णन किया है। यह अद्भुत ग्रंथ कश्मीर पर लिखी गई पुस्तकों के लिए संदर्भ ग्रंथ रहा है। पंडित कल्हण के अलावा चार अन्य राजतरंगिणियों की भी रचना हुई, जिनके रचनाकार हैं-जोनराज, श्रीवर, प्राज्य भट्ट और शुक।

दर्शन के क्षेत्र में कश्मीर का शैव दर्शन या त्रिक दर्शन विशेष महत्व रखता है। इस दर्शन के तीन महान आचार्य वासुगुप्त, कल्लाथा और अभिनव गुप्त हुए हैं। इस दर्शन के सैंकड़ों अन्य कश्मीरी दार्शनिक और विचारक भी हुए, जिन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की। कनिष्क के समय में दर्शन की एक अन्य शाखा बौद्ध धर्म की महायान का सूत्रपात हुआ। इस विचारधारा को वासुमित्र और नागार्जुन ने आगे बढ़ाया।

कश्मीर सदियों से संस्कृत के महान विद्वानों की भूमि रही है। अपनी नयनाभिराम प्राकृतिक सुंदरता के अलावा कश्मीर के मंदिरों और ललित कला में निहित यहाँ की वास्तुकला आकर्षण का मुख्य केंद्र रही है। मार्तंड और अवंतिपुर के मंदिर वास्तुकला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

साहित्य की शायद ही कोई ऐसी विधा होगी जिसका अध्ययन और मनन कश्मीरियों ने न किया हो या उसमें अपना योगदान न दिया हो। दर्शन, धर्म, चिकित्सा, खगोल विज्ञान, साहित्य इंजीनियरी, कला, शिल्प संगीत, नृत्य तथा अन्य क्षेत्रों में कश्मीरियों ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है और समय के साथ-साथ भारत की सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध किया है।

संस्कृति के इस अंक को कश्मीर विशेषांक के रूप में प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास में हम कहाँ तक सफल रहे हैं इसका निर्णय तो हमारे सुधी पाठक ही कर सकेंगे। प्रस्तुत अंक में प्रकाशित लेख कश्मीरी मूल के लेखकों द्वारा ही लिखे गए हैं। हमारा मानना है कि किसी स्थान विशेष की लोक संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज और तथ्यों का वर्णन जितनी गहराई से किसी स्थान विशेष का निवासी कर सकता है संभवत: किसी अन्य व्यक्ति के लिए कर पाना कठिन होगा।

यह अंक काफी विलंब से पाठकों के पास पहुँच रहा है। इसके लिए हमें खेद है। यह विलंब कुछ ऐसे कारणों से हुआ जो हमारे वश में नहीं थे। हमारा प्रयास है कि संस्कृति के आगामी अंक जल्दी ही प्रकाशित होकर पाठकों को उपलब्ध करवाए जाएं। आशा है सुधी पाठक हमारी विवशताओं और सीमाओं को समझते हुए अपनी सद्भावना और सुहृदयता बनाए रखेंगे।

प्रस्तुत अंक में श्री ओंकारनाथ राज दान के खोजपूर्ण लेख में कश्मीर की नवपाषाण कालीन संस्कृति को उजागर किया गया है। कश्मीर के पर्व और त्यौहार, लोकगीत, लोकनृत्य आदि का विशिष्ट स्थान है जिसका परिचय डॉ. बीना बुदकी, डॉ. दिलशाद जीलानी, रजनी पाथरे राजदान, अवतार कृष्ण राजदान तथा अशरफ बट के लेखों में दिया गया है। कश्मीर का भारतीय दर्शन और भक्ति, साहित्य तथा चिंतन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस संदर्भ में कश्मीर के विख्यात शैव दर्शन पर डॉ. बैकुंठनाथ शर्गा और श्री महाराज कृष्णकाव ने प्रकाश डाला है, तो सूफीमत पर डॉ. जियालाल हंडु ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। कश्मीर की सांस्कृतिक धरोहर उल्लेखनीय रही है, जिसकी पृष्ठभूमि में कश्मीर की संस्कृति का परिचय दिया है-डॉ. रूपकृष्ण भट ने। कश्मीरी कथा साहित्य का बहुत कम उल्लेख मिलता है। कृष्ण राजदान के काव्य का आध्यात्म और लोक रंग नामक लेख में डॉ. कृष्णा रैणा तथा कश्मीरी भाषा और साहित्य के नवयुग निर्माता दीनानाथ नादिम नामक लेख में प्रो. चमनलाल सप्रू द्वारा दी गई जानकारी महत्वपूर्ण है। श्रीमती चन्द्रकांता के लेख सती प्रदेश की बेटियाँ में कश्मीरी महिलाओं की प्रतिभा और कौशल का विषद् वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

सुहृदय पाठकों से इस अंक के प्रकाशन में हुए विलंब के लिए पुन: खेद प्रकट करते हुए, हम उनके मूल्यवान सुझावों और सहयोग के लिए अनुरोध करते हैं।

(भारतेश कुमार मिश्र)

ओंकार नाथ राजदान*

बुर्जहोम संस्कृति

'बुर्जहोम' दो शब्दों के योग से बना है 'बुर्ज' और 'होम'। 'बुर्ज' संस्कृत शब्द 'भुर्ज' का विकृत रूप है और 'होम' उस स्थान को कहते हैं, जहाँ किसी प्राचीन संस्कृति के अवशेष सुरक्षित हों। 'होम' उस स्थान को भी कहते हैं जहाँ किसी साधु-सन्यासी का आश्रम हो या जिस स्थान पर उसे दफन किया गया हो।

कश्मीर में बहुत से ऐसे स्थान हैं जिनका नाम 'होम' से लिया जाता है जैसे मन्दहोम, बालहोम, निचहोम, दोदरहोम, हमेहोम इत्यादि। ये कश्मीर के प्रसिद्ध स्थान हैं और इनमें से

मनुष्यों के रहने के गड्ढे (साभार: भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण)

कई धार्मिक स्थान भी हैं। किंतु इनमें से किसी भी स्थान पर प्राचीन सभ्यता व संस्कृति के अवशेष अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं। अलबत्ता बुर्जहोम ही एक ऐसा स्थान है जहाँ उत्खनन के बाद प्राचीन सभ्यता व संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिनसे साफ पता चलता है कि ये सबसे पुराने हैं। इनके संबंध में यह भी कहा जाता है कि यह एक समानांतर संस्कृति रही होगी क्योंकि संस्कृति के ऐसे ही अवशेष ईरान, रूस और मध्य-एशिया के दूसरे कई भागों में प्राप्त हुए हैं।

"कश्मीर में बहुत से ऐसे स्थान हैं जिनका नाम 'होम' से लिया जाता है जैसे मन्दहोम, बालहोम, निचहोम, दोदरहोम, हमेहोम इत्यादि। ये कश्मीर के प्रसिद्ध स्थान हैं और इनमें से कई धार्मिक स्थान हैं।"

बुर्जहोम तेलबल गाँव के पास श्रीनगर से लगभग तेरह किलोमीटर दूर है। यहाँ सबसे पहले उत्खनन डी टेरा और पीटरसन की देख-रेख में 1939 में) हुआ था, जिसे उत्खनन की दृष्टि से इसका प्रारंभिक काल कहा जा सकता है। इसका असली उत्खनन आजादी के बाद यहाँ के मशहूर पुरातत्व विशेषज्ञ टी. एन. खजांची की देख-रेख में 1960 और 1971 के बीच हुआ, जिससे बुर्जहोम संस्कृति की परत-दर-परत सामने आई और जानकार लोग इनके मूल के संबंध में सोचने लगे और अपने बहुमूल्य विचार प्रकट करने लगे।

बुर्जहोम के आसार कितने पुराने हैं इस संबंध में जानकारों के विभिन्न मत हैं। कुछ का कहना है कि ये साढ़े चार हजार साल पुराने हैं। कुछ इस संस्कृति का समय ईसा पूर्व छः हजार साल कहते हैं। अलबत्ता कार्बन प्रयोग से पता चला है कि बुर्जहोम की संस्कृति ईसा पूर्व सत्रह-अठारह

मनुष्यों के रहने के गड्ढे (साभार: भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण)

सौ वर्ष की है। यह वही समय है जिसे ऐतिहासिक दृष्टि से वैदिक काल का स्वर्ण युग कहा जाता है।

बुर्जहोम के आसार अंतिम प्रस्तर काल की संस्कृति के उदाहरण हैं। प्राचीन प्रस्तर युग तीन खंडों में विभाजित करने की गुंजाइश है। इसके पहले खंड में यहाँ से प्राप्त बड़े-बड़े और गहरे गड्ढ़े प्राप्त हुए हैं, जिन पर चट्टान जैसे पत्थरों के निशान दिखाई देते हैं। ये साधारण गड्ढ़े नहीं हैं। ऐसा लगता है कि उस समय इनमें लोग स्थायी तौर पर आवास करते थे। इन गड्ढ़ों का मुहाना तंग है किंतु इनकी तह चौड़ी है। यहाँ जो सबसे गहरा गड्ढ़ा मिला है, वह गोलाई में सबसे बड़ा है। गड्ढ़ों के आस-पास जो कड़ियाँ लगी हैं इन पर छत टिकी रही होगी, जिस पर 'भुर्ज' बिछा रहता होगा ताकि बर्फ या वर्षा का पानी इसके अंदर न आ जाए। यहाँ तक आने के लिए बड़ी-बड़ी सीढ़ियाँ भी मिली हैं, लेकिन 'टसर' गड्ढ़ों के लिए ऐसा प्रावधान नहीं है। इन गड्ढ़ों में कोयला, राख, तथा मृद् टुकड़े मिलने से यह बात साफ लगती है कि इनमें इंसान कभी रहा करते थे।

"बुर्जहोम तेलबल गाँव के पास श्रीनगर से लगभग तेरह किलोमीटर दूर है। यहाँ पहले उत्खनन डी टेरा और पीटरसन की देख-रेख में हुआ था, जिसे उत्खनन की दृष्टि से इसका प्रारंभिक काल कहा जा सकता है।"

इंसानों का रहन-सहन, आदत आदि बुर्जहोम संस्कृति से संबंधित होने से नई बातें सामने आती हैं। वैसे यह बात स्पष्ट है कि इस संस्कृति से संबंधित प्रारंभिक काल के लोग हाथ से मिट्टी के बर्तन बनाते थे। ये बर्तन आम बर्तनों की तरह नहीं होते थे और इनका रंग काला होता था। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इनकी तह पर आजकल की चटाई जैसे निशान देखने को मिलते हैं। यदि हम इसको इसी तरह लें तो यह किसी तरह संभव लगता कि ये बैठने के लिए इस्तेमाल किए जाते होंगे। इस तरह के बर्तन पूर्वी चीन के यंज शाव और बिलोचिस्तान के सराय खोला स्थानों में भी मिलते हैं।

इन गड्ढ़ों में रहने वाले लोगों का खान-पान माँस पर ही निर्भर करता था, जो इनमें हड्डियों के बने औजार मिलने से प्रमाणित होता है। ये मछलियाँ पकड़ने के अतिरिक्त कुशल शिल्पी और शिकारी थे। हड्डियों के औजार बनाने में ये

हड्डियों से बने औजार (साभार: भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण)

सिद्धहस्त भी थे। इनके पास मछलियाँ पकड़ने की सुइयाँ, आरी और तीर-कमान भी होते थे। छुरियाँ और बाल काटने की रंबियाँ होती थीं, जो हांगुल के सींग से बने होते थे। हड्डियों के अतिरिक्त यहाँ पत्थरों से बने हथियार भी प्रयोग में लाए जाते थे, जिनमें मूसल भी शामिल है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि इस तरह के बने हथियार चीन में प्राप्त गुफाओं से भी मिले हैं। इस काल का एक मुख्य प्रश्न कि वे मृत शरीर का क्या करते थे? क्या वे इसे दफन करते थे या दाह-संस्कार करते थे? इस संबंध में अभी विद्वान मौन हैं। वैसे इन गड्ढ़ो में अभी तक कोई कब्र नहीं मिली है। यह देखकर अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि ये मृतक का दाह-संस्कार करते थे या गड्ढ़े से निकालकर किसी खुले स्थान में रखते थे। वैसे यह सब अभी अनुमान है और इस पर खोज करने की गुजांइश है।

बुर्जहोम संस्कृति का मध्यकाल इसके प्रारंभिक काल से भिन्न है। इस काल में इंसान गड्ढ़ों में नहीं रहते थे बल्कि गारे और कच्ची ईटों से बनी चौकोरों में रहते थे। सबसे खास बात यह है कि इनका चारों तरफ से लेपन किया गया है जो उन्नतिशील दौर की ओर प्रकाश डालता है। इस काल में रहने के भूमिगत गड्ढ़े नहीं मिले हैं। इस काल में शायद उन गड्ढों को भर दिया गया होगा। इस काल की दूसरी नई बात

उत्खनन में प्राप्त चटाई की छाप वाला मृद्भांड
(साभार: भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण)

उत्खनन में प्राप्त मृद्भांड (साभार: भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण)

यह है कि यहाँ मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े मिले हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि वे कुम्हार के बनाए बर्तन इस्तेमाल करते थे। इसलिए इसे स्वर्ण प्रस्तर काल कहा जाता है क्योंकि यही संस्कृति का वह काल है जब कुम्हार ने बर्तन गढ़ने के लिए चाक का इस्तेमाल किया होगा। एक बर्तन जो प्राप्त हुआ है, वह है एक बडा़ घडा़ जिसे कश्मीरी में 'मन' कहते हैं। इस पर किसी जानवर के सींग का अलंकरण है। ऐसा ही दूसरा लाल रंग का बर्तन भी मिला है जिसमें 650 कैरेट के नग लगे हुए थे। इससे उस समय की जबरदस्त हुनरमंदी का आभास मिलता है।

बुर्जहोम संस्कृति, एक ऐसा युग या दौर रहा है जिससे यह बात सामने आती है कि इस समय मृतकों को दफन किया जाता था। क्योंकि यहाँ एक कब्र प्राप्त हुई है जो इस बात का प्रमाण है कि मृतक के शरीर को दफनाया जाता था। इन कब्रों के आस-पास चूने का लेप भी किया गया है। एक विशेष बात यह भी है कि इन कब्रों में कुछ अस्थि पंजर सजदा करने की सूरत में प्राप्त हुए हैं। अन्य कब्रों में सिर्फ हड्डियों के टुकड़े मिले हैं। कुछ कब्रें ऐसी भी हैं जिनमें न अस्थि पंजर हैं और न ही हड्डियाँ हैं। दूसरी ध्यान देने योग्य बात है कि यहाँ कुछ कब्रों में पशुओं के अस्थि पंजर और हड्डियां पाई गई हैं, जिनमें कुत्ता, रामहुन और भेड़िया उल्लेखनीय हैं। इससे यह बात साफ लगती है कि ये उनके पालतू जानवर रहे होंगे। लगता है कि जानवरों के साथ इंसान का लगाव रहा और यही कारण है कि कब्र में ये इनको भी साथ दफन करते थे।

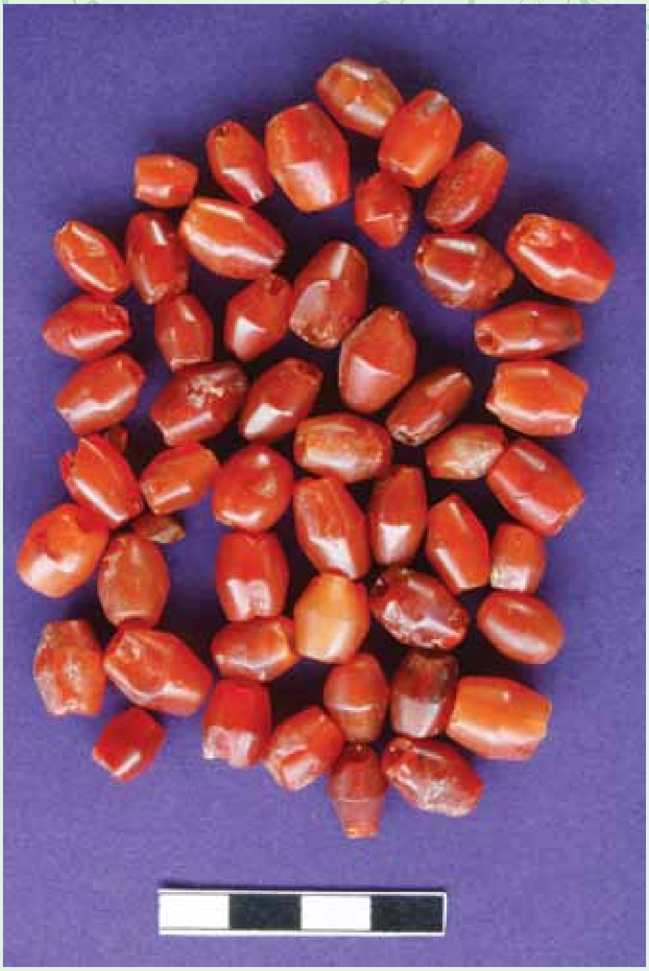

उत्खनन में प्राप्त मनके (साभार: भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण)

बुर्जहोम संस्कृति के इस काल में भी इंसान अपने पेट की आग माँस खाकर ही बुझाता था। मछलियों का शिकार करना इनका खास पेशा था। इसलिए जानवर मारने के हथियार वही हैं जो प्रारंभिक काल में रहे हैं। इनकी बनावट अच्छी है, संख्या भी अच्छी-खासी है। अलबत्ता इस काल में मानव ने अपने बचाव या जानवरों को मारने के लिए कुछ नए हथियार भी बनाए। इन औजारों की खास किस्में दिखाई देती हैं। इस काल की एक खास बात यह है कि हथियारों के अतिरिक्त ये ताँबे के तीर बनाते थे, जो इन गुफाओं में प्राप्त हुए हैं। इनको देखकर प्रश्न उठता है कि ताँबा यहाँ कहाँ से आया? इससे दो बातें सामने आती हैं। पहली बात यह कि उस समय बुर्जहोम संस्कृति का दूसरी संस्कृतियों के साथ एक विशेष आदान-प्रदान रहा हो जिससे किसी खास अंदाज में ताँबे के तीर बनाते रहे हों। दूसरी विशेष बात यह रही होगी कि बुर्जहोम संस्कृति के इस काल के लोग तीरंदाज रहे हों और जानवरों को ये तीरों से ही मारते हों। ऐसा भी हो सकता है कि ये आपस में तीर चलाकर लड़ते-भिड़ते हों।

बुर्जहोम का अंतिम काल पहले दो से अलग और भिन्न रहा है। इस काल में मानव उन्नति के पथ पर अग्रसर लगता है। इस काल की इस संस्कृति को हम शाहपल काल भी कहते हैं। कश्मीरी में 'शाहपल' बड़े-बड़े गोलाकार पत्थरों को कहते हैं जिसे इस काल में इंसान ने सबसे ज्यादा इस्तेमाल किया। अपना आवास इन्हीं पत्थरों का बनाया। इस तरह से पत्थर और इंसान का आपस में गहरा रिश्ता हो गया। किंतु इस काल में भी कुम्हार का अपना स्थान रहा है। इसके बनाए बर्तन भी धड़ल्ले से इस्तेमाल किए जाते थे। इनमें लाल रंग के बर्तन भी हैं। किंतु प्रस्तरकाल होने पर भी पत्थरों का इस्तेमाल आयुध के रूप में कम ही होता था। अलबत्ता इस काल में पत्थर के बने हथियारों के स्थान पर अन्य धातुओं के बने हथियार इस्तेमाल में लाए जाते थे।

वैसे यह बात सही है कि, बुर्जहोम संस्कृति के इस अंतिम काल में सांस्कृतिक गतिविधियाँ पहले के काल से मिलती-जुलती हैं और वह भी किसी हद तक। वैसे यह काल हारवन संस्कृति के आविर्भाव होने से पहले शुरू हो गया था। इसमें भी कहीं-कहीं गारे और मिट्टी की कच्ची ईंटें देखने को मिलती हैं मगर यहाँ इनका होना न होने के बराबर है। इस काल के जो बर्तन मिले हैं, वे खूबसूरत और चिकने हैं।

बुर्जहोम संस्कृति के इस अंतिम काल में इंसान प्रगतिशीलता की ओर बढ़ा। वह प्राकृतिक दृश्य उतारने का शौकीन रहा और इसका ज्वलंत उदाहरण है प्राप्त हुआ बड़ा मृद्‌भांड जिसके संबंध में कहा जाता है कि यह मूलत: मध्य काल का है। यह यहाँ तालाब के पास मिला है। यह चिकना भी है और चपटा भी। इस पर फूल-पत्तियों का अलंकरण भी है। इस पर प्राकृतिक दृश्य भी पाए गए हैं, जो कहीं-कहीं घिस गए हैं। इसका तला टूटा हुआ है, जिससे इस बात का पता नहीं चलता कि इस पर कौन सा प्राकृतिक दृश्य उतारा गया है। किंतु फूल-पत्तियों का अलंकरण साफ दिखाई देता है।

पत्थर के औजार (साभार: भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण)

ऐसा प्रतीत होता है कि बुर्जहोम संस्कृति के इस अंतिम काल में हांगुल का शिकार बे-रोक-टोक होता था। इसका स्पष्ट उदाहरण है वे मृद्भांड के टुकड़े जिन पर हांगुल के शिकार करने का चित्रण किया गया है। हांगुल की पीठ से एक शिकारी नेजा ठोंकता, कोई दूसरा शिकारी तीर चलाता या चलाने की तैयारी करता दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त इन पर कुत्ता और सूर्य का भी अंलकरण है, जिससे दो बातें सामने आती हैं। पहली यह कि शिकारी के साथ कुत्ता हमेशा रहता था, जो आज भी कोई नई बात नहीं है। आजकल भी जब शिकारी शिकार करने निकलता है तो उसके साथ कुत्ता होता है। दूसरी बात यह कि सूर्य का अलंकरण इस बात का द्योतक है कि शिकार करना दिन के समय ही होता था। वस्तुतः किसी रचना को तब तक रूप नहीं मिलता जब तक रचनाकार को आस-पास की जानकारी न हो। वह लिखने, चित्र बनाने या रेखाओं का अंकन ठीक उसी तरह करेगा, जिस तरह वह अपने आस-पास के माहौल को देखे या पहचाने। यह बात तब भी वास्तविक थी और आज भी है। इसीलिए कलाकार को अपने समय का दर्पण कहते हैं।

"बुर्जहोम से प्राप्त आसार और वहाँ की संस्कृति शेष सभी संस्कृतियों से भिन्न है। इसका अपना एक अलग रंग है और ऐसा लगता है कि इसका संबंध यहाँ के बसने वाले आदि मानव नाग जाति की संस्कृति से रहा है।"

बुर्जहोम से प्राप्त आसार और वहाँ की संस्कृति शेष सभी संस्कृतियों से भिन्न है। इसका अपना एक अलग रंग है और ऐसा लगता है कि इसका संबंध यहाँ के बसने वाले आदि मानव नाग जाति की संस्कृति से रहा है। वस्तुतः इस संस्कृति की मुख्य बातें हैं लोगों का जमींदोज़ गढ़ों में रहना, इनमें कब्रें खोदना और उनमें मृतक के साथ जानवरों को दफन करना, मांसाहार करना, जानवरों की हड्डियों और पत्थरों के हथियार बनाना इत्यादि। इसी तरह की संस्कृति मध्य-एशिया में रूस, चीन, ईरान, अफगानिस्तान के क्षेत्रों में देखी गई है। फिर भी हारवन संस्कृति के आसार इनसे भिन्न हैं, अलग हैं।

यह दुर्भाग्य है कि बुर्जहोम संस्कृति के ये आसार जैसे कुम्हार के बनाए बर्तन, हड्डियों और पत्थरों के बने हथियार या और भी ऐसी दुर्लभ चीजें इस समय कोलकाता संग्रहालय में रखी गई हैं। कश्मीर संस्कृति की इस अमूल्य धरोहर को जम्मू या श्रीनगर के संग्रहालयों में रखने की आवश्यकता है ताकि आम लोग इनको देख सकें। इसके अतिरिक्त वह जगह भी सुरक्षित रखने की जरूरत है जहाँ से ये चीज़ें प्राप्त हुई हैं, क्योंकि गत कई वर्षों से समाज विरोधी तत्व इस जगह की या तो खुदाई कर रहे हैं या गड्ढ़ों को भरने में लगे हैं। इसका परिणाम यह होगा कि समय बीतने पर यह पता नहीं चलेगा कि कश्मीर संस्कृति इतनी शानदार रही है।

* डी-255, गली-14/15,
लोअर शिवनगर,
जम्मू - 180001

डॉ. बैकुण्ठ नाथ शर्मा *

कश्मीर की शैव परम्परा

कश्मीर को धरती का स्वर्ग कहा जाता है। इसे भारतीय संस्कृति का मुकुट माना गया है। कश्मीर आदि काल से अपनी नैसर्गिक सुंदरता तथा विचित्र भौगोलिक स्थिति के कारण अध्यात्म का एक प्रमुख केंद्र रहा है। कश्मीर के मूल निवासी अपने को शैव मतावलम्बी मानते रहे हैं। कश्मीर का शैव दर्शन से अटूट संबंध रहा है। कश्मीर में ही बाबा अमरनाथ की पवित्र गुफ़ा है, जहाँ प्रति वर्ष सावन के महीने में बर्फ़ के प्राकृतिक शिवलिंग का निर्माण होता है, जो स्वयं में एक अद्‌भुत चमत्कार है। इसके दर्शन का लाभ प्राप्त करने के लिए देश के कोने-कोने से लाखों की संख्या में श्रद्धालु पूरे भक्ति भाव के साथ अनेक कष्ट झेलते हुए जाते हैं। शिव शक्ति का स्वरूप हैं और यदि वह शक्तिविहीन हो जाए तो शिव से शव रह जाता है, अर्थात् मृत्यु या काल। यही एक मुख्य कारण है कि महान शैवाचार्यों ने शिवलिंग को वैश्विक चेतना का प्रतीक माना है और हमारे धर्म शास्त्रों में उसकी उपासना का प्रावधान रखा गया है ताकि इस संसार में जीवन की गति बनी रहे और उसमें किसी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न न हो।

यदि हम संस्कृत में लिपिबद्ध अपने धर्म ग्रंथों का गहराई से अध्ययन करें, तो हमें आभास होगा कि लिंगम् शब्द का प्रयोग वास्तव में मस्तिष्क की उस अवस्था के लिए किया गया है, जो अदृश्य और अगोचर होने पर भी निश्चित रूप से अस्तित्वमान है। इस कथन को चिंतक एवं विचारक बहुत ही सहज रूप से समझ सकते हैं कि इसमें किस प्रकार की भावना की अभिव्यक्ति की गई है। कोई व्यक्ति, अपने संवेग, हताशा, सुख-दुख तथा आनंद को नहीं देख सकता। ये भाव अदृश्य तो होते हैं लेकिन उनकी अनुभूति भली-भांति की जा सकती है, जो हाव-भाव से परिलक्षित होते हैं। इसी प्रकार चेतना अमूर्त होती है, उसका कोई रूप-रंग नहीं होता, वह बोधगम्य नहीं होती, उसे किसी प्रतीक द्वारा ही बोधगम्य बनाया जा सकता है। अतः इसे शिवलिंग द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की गई है जो शैवदर्शन का मुख्य आधार है।

शिव का अर्थ है निरपेक्ष, अमूर्त व कल्याणकारी सत्ता जो इस संसार की पालनहार है और शिवलिंग उस सत्ता का प्रतिनिधि है। सांसारिक दृष्टि से जीवन के प्रतीक के रूप में शिवलिंग को स्थूल, आकार दिया गया है ताकि जिज्ञासु इसकी महिमा को भलीभांति समझ सकें।

पांड्रेठन शिव मंदिर, श्रीनगर-छायांकन: बी.के. बहल
साभार-इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र

हमारे देश में कश्मीरी पंडितों के अलावा एक बहुत बड़ा वर्ग शिवलिंग की पूजा-अर्चना करता है। कुछ ऐसे सम्प्रदाय भी हैं जिनमें केवल लिंग की पूजा करने का चलन है और वे निर्वस्त्र रहते हैं तथा तंत्र विद्या की साधना करते हैं। इस सम्प्रदाय के एक वर्ग विशेष की मान्यता के अनुसार लिंग ही उत्पत्ति का कारक है, जो बीजारोपण करके जीवन को गति प्रदान करता है। अत: वह वंदनीय और पूज्यनीय है। वास्तव में, हम जिसकी पूजा-अर्जना करते हैं, वह समागम का प्रतीक स्वरूप है। इसे सृष्टि का रचयिता माना गया है। इस वर्ग विशेष के कुछ अनुष्ठान होते हैं, जिनके द्वारा वे तंत्र साधना करते हैं। नागा साधु इसी सम्प्रदाय का एक वर्ग है। कामाख्या देवी के कुछ उपासक अपनी तंत्र साधना में दैविक शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से कुछ इसी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, जिनमें लिंग को शक्ति का प्रतीक मानकर उसकी उपासना की जाती है और नियंत्रित रति क्रिया द्वारा कुंडलिनी को जागृत किया जाता है। इस प्रकार के मतावलम्बियों की संख्या बहुत कम है। मध्ययुगीन अनेक सभ्यताओं में शिवलिंग की पूजा के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं। दक्षिण अमरीका की कोलम्बियन सभ्यता, रेड इंडियानो की अजतीज, अरब की प्राचीन सभ्यता तथा अनेक जनजातियों में शिवलिंग उपासना के पर्याप्त साक्ष्य उत्खनन में प्राप्त हुए हैं।

शैवमतावलम्बियों तथा शैवाचार्यों के अनुसार वास्तविक शिवलिंग स्थूल दृष्टि से स्फटिक अर्थात् अपने आप प्रकट होने वाले ही होते हैं। जहाँ वे प्राप्त होते हैं उनको वहाँ से किसी अन्य स्थान पर नहीं ले जाया जाता, अपितु उनको वहीं पर स्थापित कर मंदिर का निर्माण कराकर उनकी उपासना की जाती है। हम भाग्यशाली रहे कि अनेक विदेशी क्रूर आतंकियों के विनाशकारी आक्रमणों के पश्चात भी हमारे देश में स्फटिक शिवलिंग पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे और उनमें किसी प्रकार की क्षति पहुंचाने में विदेशी आक्रांता सफ़ल नहीं हो सके। आज के वैज्ञानिक युग में स्फटिक शिवलिंग का महत्व प्रयोगों द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है। स्फटिक शिवलिंग में मानवीय काया तथा मन-मस्तिष्क को प्रभावित करने वाले अनेक गुण होते हैं क्योंकि यह सभी प्रकार की ध्वनि तरंगों तथा मानवीय संवेदनाओं को बहुत ही सहज भाव से ग्रहण कर लेता है। यही एक मूल कारण है कि तंत्र परम्परा के साधक शैवमतावलम्बी अपनी साधना के अंतर्गत स्फटिक शिवलिंग की मालाओं का अधिक उपयोग करते हैं।

> **"यदि हम संस्कृत में लिपिबद्ध अपने धर्म ग्रंथों का गहराई से अध्ययन करें, तो हमें आभास होगा कि लिंगम् शब्द का प्रयोग वास्तव में मस्तिष्क की उस अवस्था के लिए किया गया है, जो अदृश्य और अगोचर होने पर भी निश्चित रूप से अस्तित्वमान है।"**

शिव मंदिर, गुलमर्ग-छायांकन: श्रीमती नीलमणि शर्मा

संपूर्ण भारत में अनेक शिव मंदिर और शिवालय हैं जिनमें विभिन्न आकार-प्रकार के शिवलिंग स्थापित हैं। श्रद्धालु भक्ति भाव से इनकी पूजा-अर्चना करते हैं। किंतु इनमें से केवल 12 को विशेष महत्व प्राप्त है, जिनको ज्योतिर्लिंग कहा जाता है। ज्योतिर्लिंग का अर्थ है प्रकाशमान शिवलिंग। ये स्फटिक शिवलिंग जिनमें से 11 भारत में और एक नेपाल में पशुपतिनाथ के नाम से काठमांडू में स्थापित है। भारत में स्थापित ज्योतिर्लिंग हैं-केदारेश्वर, महाकालेश्वर, त्रयम्बकेश्वर, सोमनाथेश्वर, मल्लिकाअर्जुन, ओंकारेश्वर, वैद्यनाथेश्वर, भीमशंकर, विश्वेश्वर, बद्रीनाथेश्वर तथा रामेश्वरम्।

शिवलिंग शिव- शक्ति के मिलन का परिचायक, आध्यात्मिक शक्ति का केंद्र बिंदु और मानव चेतना का आधार है। स्फटिक शिवलिंग के सामने आते ही मानव के मन मस्तिष्क में कुछ विशेष घटित होने लगता है। हमारे पूर्वजों ने जब आदिकालीन स्फटिक शिवलिंग को स्पर्श किया था

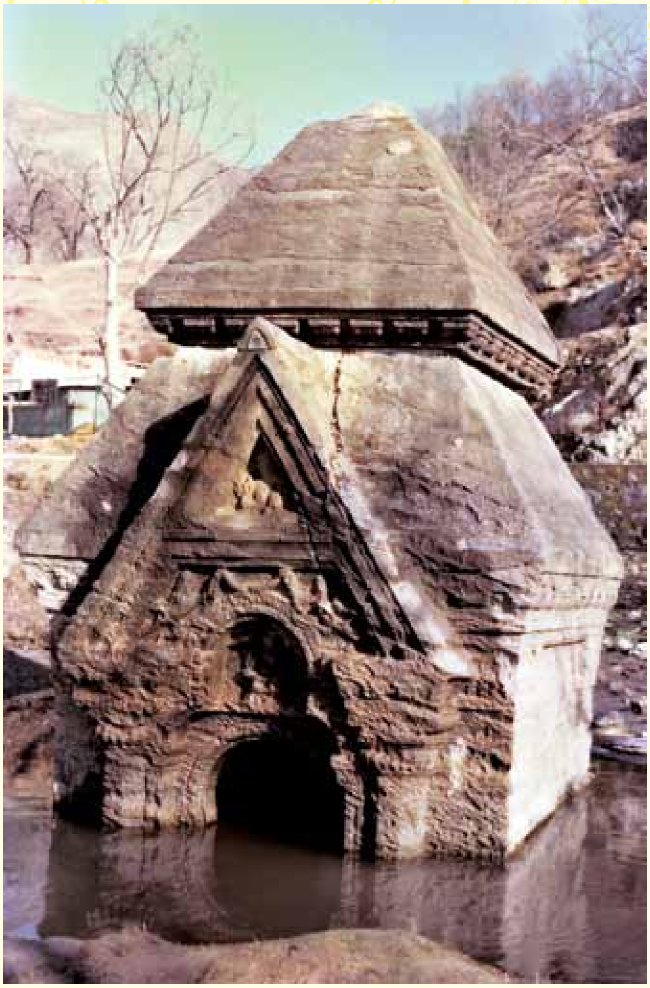

शिव मंदिर, मानस बल-डॉ. वीरेन्द्र बांगरू

तो उनकी चेतना में विस्फोट हुआ जिसके कारण वे अपने भीतर इन्द्रीयतीत बिम्ब देखने लगे और उनकी चेतना में वैश्विक चेतना जागृत हुई। ऐसा होते ही वे पशु से मानव बन गए। यहीं से मनुष्य की सभ्यता का विकास प्रारम्भ हुआ। इसीलिए शिवलिंग की उपासना को विशेष महत्व दिया गया है। इस प्रक्रिया से मानवीय चेतना के भीतर वैश्विक चेतना का विस्फोट होता है, जहाँ अनंत ज्ञान का भंडार छुपा है और जहाँ मानवीय विकास की असीम संभावनाएं भी दबी हुई हैं। बड़े-बड़े शैवाचार्यों के मतानुसार मनुष्य जो आज अनुभव कर रहा है, वह चरम अवस्था नहीं है। यह केवल आरंभ है।

शिवलिंग की उपासना से हमारे आंतरिक शिवलिंग का जागरण होता है। तंत्र शास्त्र के अंतर्गत कुंडलिनी विज्ञान में वर्णित है कि मानव शरीर में 12 ऐसे स्थल हैं जहाँ शिवलिंग स्थापित है। इनमें तीन का विशेष महत्व है पहला मूलाधार चक्र पर, दूसरा आज्ञा चक्र पर और तीसरा सहस्त्राकार चक्र पर। ऐसी मान्यता है कि सहस्त्राकार चक्र पर सूक्ष्मतम चेतना ज्योर्तिमय शिवलिंग के रूप में वास करती है।

कश्मीर के शैव दर्शन का अपना अलग महत्व है। कश्मीर में शैवाचार्यों की एक लम्बी परम्परा रही है जिन्होंने समय-समय पर शैव दर्शन की सविस्तार व्याख्या की हैं। वासुगुप्त को इस परंपरा का मेरुदंड माना जाता है। अभिनवगुप्त (960-1020) ने बिल्कुल नए परिप्रेक्ष्य में इसको परिभाषित किया। उनके पूर्वज मूल रूप से उत्तर प्रदेश के कन्नौज जिले के ब्राह्मण थे, जो शैव सूत्र में पारंगत थे। उनके पूर्वज अत्रिगुप्त को कन्नौज के राजा यशोवर्मन का पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। जब कश्मीर के महान शासक ललितादित्य (725-762) ने 740 ई. में कन्नौज पर विजय प्राप्त की तो वह शैवाचार्य अत्रिगुप्त को अपने साथ कश्मीर ले गया। ललितादित्य स्वयं शिव का भक्त था अत: वह कन्नौज से विद्वान और शैव दर्शन में पारंगत ब्राह्मणों को कश्मीर ले गया। अत्रिगुप्त ने कश्मीर पहुँचने के पश्चात झेलम नदी के तट पर एक शिव मंदिर का निर्माण कराया जहाँ साधना की जा सके और शिव शास्त्र का गहराई के साथ अध्ययन किया जा सके।

वासुगुप्त ने 8वीं शताब्दी में सर्वप्रथम अद्वैतवाद की व्याख्या की जिसको कश्मीर का शैवमत कहा जाता है। उसके स्थानीय शिष्य नारायण भट्ट ने संस्कृत में 120 छंदों की एक शिवस्तुति लिखी, जिसमें शिव और शक्ति के समागम को प्रकाश और विमर्श के प्रतीक स्वरूप परिभाषित किया गया। वासुगुप्त के वंशज शंकरवर्मन के शासन काल में बरहगुप्त एक विद्वान शैव तंत्र के ज्ञाता थे, जिनके दो पुत्र क्रमश: नरसिंहगुप्त और वमनगुप्त थे। ये दोनों भी शैव सूत्र और शैव शास्त्रों में पारंगत थे। नरसिंह गुप्त का विवाह एक स्थानीय कश्मीरी पंडित कन्या विमलाकला के

"मध्ययुगीन अनेक सभ्यताओं में शिवलिंग की पूजा के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं। दक्षिण अमरीका की कोलम्बियन सभ्यता, रेड इंडियानो की अजतीज, अरब की प्राचीन सभ्यता तथा अनेक जनजातियों में शिवलिंग उपासना के पर्याप्त साक्ष्य उत्खनन में प्राप्त हुए हैं।"

शिव मंदिर, तंग मार्ग-छायांकन: डॉ. वीरेन्द्र बांगरू

साथ हुआ था। अभिनवगुप्त उनकी संतान थे जिनका जन्म 950-960 के मध्य हुआ था।

अभिनवगुप्त एक विलक्षण बुद्धि के स्वामी थे। उनका आरम्भिक जीवन काफ़ी उतार-चढ़ाव का रहा। माँ का स्वर्गवास हो जाने के कारण वे उनके स्नेह से वंचित रहे। संस्कृत व्याकरण का ज्ञान उनको अपने पिता नरसिंहगुप्त से प्राप्त हुआ जो बाद में स्वयं एक सन्यासी हो गए। अभिनवगुप्त के सबसे प्रिय गुरू आचार्य लक्ष्मणगुप्त थे जिन्होंने उन्हें शिवसूत्र, शिव शास्त्र, त्रिक दर्शन, कर्मकांड तथा कुल शास्त्र की शिक्षा दी। अभिनवगुप्त ने अपने चाचा वमनगुप्त जो एक विद्वान शैवाचार्य थे, से भी शिक्षा ग्रहण की और तंत्र लोक का गहराई के साथ अध्ययन किया। उनके अन्य शिक्षक इंद्रराज भट्ट और ताऊत भट्ट थे जिन्होंने उनको शिव सूत्र की महिमा की सविस्तार जानकारी दी तथा नाट्य शास्त्र के सिद्धांतों से अवगत कराया।

अभिनवगुप्त ने काफ़ी अध्ययन के पश्चात कश्मीर के शैवमत को परिभाषित किया जिसका आधार त्रिक दर्शन था, जो शक्ति के तीन रूपों पर केंद्रित है। इसमें साधक को शिव की परम शक्ति की चेतना का अनुभव होता है। जब साधक को यह ज्ञान प्राप्त होता है कि उसमें अपनी शक्ति के साथ परम शक्ति अर्थात् शिव शक्ति का भी अंश है, तो साधक को स्वयं में शिव शक्ति का आभास होता है। यही कश्मीर के शैव दर्शन का आधार है। इस शैवमत या शैव दर्शन के अनुसार संसार के हर जीव में शिव तत्व विद्यमान है और उसमें शिव की शक्ति विराजमान है। शिव के बिना संसार की कल्पना करना निरर्थक है। कठिन साधना और तपस्या द्वारा अपने भीतर विद्यमान शिव शक्ति को जागृत किया जा सकता है। उस परमशक्ति के साथ मिलन ही अंतिम सत्य को प्राप्त करना है और इसी अंतिम सत्य को प्राप्त करना आध्यात्म का चरमबिंदु माना गया है।

कश्मीर का शैवमत स्वयं की शक्ति का शिव शक्ति में एकीकरण कर देने की अवस्था का परिचायक है जहाँ दोनों में भेद समाप्त हो जाता है और इस नाते विभिन्न आध्यात्म मार्गों में कश्मीर के शैव दर्शन का अपना अलग स्थान है। इमसें मानव, प्रकृति और परम शक्ति के मध्य एक अद्भुत समन्वय स्थापित होता है। इसमें उस परम शक्ति का ज्ञान होता है, जिसने सारे संसार की रचना की। आचार्य अभिनवगुप्त को ही विश्वव्यापी कश्मीर के शैव दर्शन का जनक माना जाता है। अभिनवगुप्त के पद चिन्हों पर चलते हुए उनके परम शिष्य आचार्य क्षेमेन्द्र ने कश्मीर की इस शैव परम्परा को एक

श्रीनगर स्थित मंदिर में प्रतिष्ठित शिवलिंग
छायांकन: डॉ. वीरेन्द्र बांगरू

नया आयाम दिया। विभिन्न विद्वान आचार्यों ने अपनी टीका-टिप्पणी द्वारा इसको और अधिक सारगर्भित किया जिनमें क्षेमराज, जयरथ, योगराज, मधुराज, तथा वृद्धराज के नाम प्रमुख हैं। 14वीं सदी में लल्लेश्वरी तथा फिर अलखेश्वरी रूप भवानी ने शिव की महिमा का अपने वाख़ों में गुणगान करके कश्मीर के शैव मत की परंपरा को जनमानस के चिंतन का एक मुख्य अंग बना दिया और शिवभक्ति के रस का पान करके एक अनोखा आनंद प्राप्त किया।

''कश्मीर का शैवमत स्वयं की शक्ति का शिव शक्ति में एकीकरण कर देने की अवस्था का परिचायक है जहाँ दोनों में भेद समाप्त हो जाता है और इस नाते विभिन्न आध्यात्म मार्गों में कश्मीर के शैव दर्शन का अपना अलग स्थान है।''

18वीं सदी में शिवोपाध्याय ने इस क्रम को जारी रखा। 19वीं सदी में कश्मीर में ईश्वर जू शायर, लाल जू कोकुर और मनकाक मोंगा जैसे शिव साधक हुए जिन्होंने अनेकों शिष्यों को आध्यात्म की ओर अग्रसर कर उनमें शिव तत्व के बोध का ज्ञान कराया और कश्मीर के अद्वैतवाद से उनका परिचय हुआ। इसी कड़ी में 20वीं सदी में स्वामी राम जी महाराज जैसे महामहेश्वराचार्य जैसे विद्वान हुए जिन्होंने पंडित मन काक मोंगा से शैव मत की शिक्षा-दीक्षा लेकर कश्मीर के शैव दर्शन को अपनी साधना द्वारा जीवित रखा। उनका जन्म 1854 में श्रीनगर के चिंकराला मोहल्ले में हुआ था। उन्होंने त्रिक दर्शन पर काफ़ी कार्य किया और स्वामी महताब काक, स्वामी विद्याधर, स्वामी गोविन्द कौल जलाली जैसे तपस्वी शिष्यों की एक नई कतार खड़ी की। स्वामी विवेकानन्द 1897-98 में अपनी कश्मीर यात्रा के दौरान स्वामी राम जी जैसे साधक और शिव के उपासक के दर्शन कर उनका आर्शीवाद प्राप्त करने के लिए उनके आश्रम गए थे।

स्वामी राम जी के परम भक्त और शिष्य पंडित नारायण दास थे। उन्हें 9 मई 1907 को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई तो स्वामी राम जी ने उसका नाम लक्ष्मण रख दिया। स्वामी राम जी ने लक्ष्मण को शिवभक्ति और शिव साधना के मार्ग पर अग्रसर किया जो आगे चलकर एक विद्वान शैवाचार्य लक्ष्मण जू बने। उन्होंने 27 सितम्बर 1991 को निर्वाण प्राप्त किया।

कश्मीर के शैव मत पर शोध कार्य के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अंतर्गत अभिनवगुप्त शोध संस्थान की स्थापना की गई जिसमें देश के विभिन्न अंचलों से कश्मीर के अद्वैतवाद पर आधारित शैव दर्शन पर शोध कार्य करने के लिए विद्यार्थी आते हैं। कश्मीर में शैवाचार्यों की एक लम्बी परंपरा रही है जिन्होंने समय-समय पर अपनी योग साधना द्वारा शिव सूत्र और त्रिकदर्शन के महत्व को न केवल अपने जीवन में आत्मसात किया अपितु उसकी सविस्तार व्याख्या करके एक नव चेतना का सूत्रपात किया।

* मनोहर निवास,
कश्मीरी मोहल्ला,
लखनऊ-226003

शंकर गौरीश्वर मंदिर, पाटन, कश्मीर-छायांकन बिनय के. बहल-साभार: इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र

महाराज कृष्ण काव*

कश्मीर का शैवमत

भारतवर्ष में सहस्रों वर्षों से शिव की आराधना प्रचलित रही है पर शैवमत भी भिन्न-भिन्न स्थानों में पृथक् रूप धारण करता है। कश्मीर का शैवमत अपने आप में कुछ विलक्षण पहलुओं को उजागर करता है, जिन्हें समझना और आत्मसात करना अत्यावश्यक है।

सतयुग के आरम्भ में शिवजी ने स्वच्छंद नाथ का रूप धारण कर लिया और तंत्रों की रचना की। इनमें कुछ तंत्र शिव तंत्र कहलाए परंतु यह अद्वैतवादी थे। कुछ रुद्र तंत्र कहलाए और यह भेदाभेद अवधारणा के प्रतिपादक थे। केवल कुछ भैरव तंत्र ही अभेद, अद्वैत मत से ओत-प्रोत रहे। भैरव तंत्रों की संख्या 64 तक पहुँची। कलयुग में भैरव तंत्र लुप्त हो गए और भगवान शिव ने कैलाश पर्वत पर श्रीकंठनाथ के रूप में इनका पुन: प्रतिपादन किया। ये तंत्र पहले दुर्वासा ऋषि को सिखाए गए और फिर उनके माध्यम से उनके मानस पुत्रों और मानस पुत्री तक पहुँचाए गए।

भगवान शिव

ललितादित्य के शासनकाल में कश्मीर उसकी राजधानी बनी। ललितादित्य ने मध्य प्रदेश में स्थित अंतर्वेदी स्थान पर अत्रिगुप्त को ढूंढ लिया और उनको सादर अपने साथ कश्मीर ले आए। इन्हीं की परम्परा में उत्पलदेव और अभिनवगुप्त का आविर्भाव हुआ और कश्मीर के विशिष्ट प्रत्यभिज्ञ दर्शन की नींव रखी गई। कालांतर में स्वामी राम हुए। उनके शिष्य स्वामी महताब काक थे और उनके शिष्य स्वामी लक्ष्मणजू हुए। स्वामी लक्ष्मणजू बीसवीं शताब्दी में कश्मीर शैवमत के अग्रणी प्रतिपादक के रूप में प्रख्यात हुए। उन्होंने कश्मीर शैवमत को आधुनिक भाषा और परिवेश में स्पष्टीकरण दिया, जिसके फलस्वरूप इसके मतावलंबियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई।

प्रत्यभिज्ञ दर्शन

कश्मीर के प्रत्यभिज्ञ दर्शन को यदि सुगमता से समझना हो तो रामकृष्ण परमहंस की एक कहानी से सीख लेना आवश्यक है। एक जंगल में एक शेरनी ने बकरियों के झुंड पर हमला किया। आक्रमण के दौरान उसने एक बच्चे को जन्म दिया और स्वयं मर गई। वह शेर का बच्चा रेवड़ में शामिल हो गया। कई वर्ष तक वह इस गलत धारणा को मानकर चला कि वह भी एक बकरी है। वह अन्य बकरियों की तरह घास खाता, मिमियाता और किसी हिंसक पशु के आक्रमण से भयभीत हो जाता। जब वह बड़ा हुआ तो एक दिन उसके रेवड़ पर एक और शेर ने हमला किया। उस शेर के आश्चर्य की सीमा न रही जब उसने देखा कि एक शेर का बच्चा बकरियों

के झुंड में बाकी बकरियों के साथ भाग रहा है। उसने उस शेर के बच्चे को पकड़ लिया। वह बच्चा रोया, गिड़गिड़ाया, मिमियाया, अपनी जान बख्शने के लिए अनुनय विनय किया, परंतु सब बेकार। शेर उसको घसीटकर एक तालाब के किनारे ले गया। उसने पानी के अंदर अपने चेहरे के प्रतिबिम्ब और शेर के बच्चे के चेहरे के प्रतिबिम्ब की समानता प्रत्यक्ष रूप से दिखाई। जब शेर के बच्चे को अहसास हुआ कि वह बकरी नहीं शेर है, उसने जोर से एक दहाड़ लगाई, जिससे जंगल के सभी प्राणियों के दिल दहल उठे।

कश्मीर का शैवमत हमें सिखाता है कि शेर बनने के लिए हमें कहीं जाने की अथवा कुछ करने की जरूरत नहीं है। हम पहले से ही शेर हैं। हमको सिर्फ यह अहसास जगाना है, तो हम तुरंत ही यथार्थ को समझेंगे और अपनी असलियत को पहचान जाएंगे।

आध्यात्म की बात इतनी सी है कि जब तक हम अपने को शरीर से परिभाषित करते हैं, तब तक शरीर की कमजोरियाँ, बीमारियाँ और अंततः मृत्यु हमारे साथ चलते हैं। जब हम अपने शुद्ध स्वरूप आत्मा के साथ एकीकृत होते हैं, तो उसकी निष्पापता, उसका सूक्ष्म निराकार स्वरूप और उसका अमरत्व भी हमारे हो जाते हैं।

''सतयुग के आरम्भ में शिवजी ने स्वच्छंद नाथ का रूप धारण कर लिया और तंत्रों की रचना की। इनमें कुछ तंत्र शिव तंत्र कहलाए परंतु यह अद्‌वैतवादी थे। कुछ रुद्र तंत्र कहलाए और यह भेदाभेद अवधारणा के प्रतिपादक थे।''

कश्मीरी शैवमत और वेदांत में अंतर

कश्मीरी शैवमत और वेदांत में कुछ आधारभूत भिन्नताएं हैं। सबसे बड़ा फर्क यह है कि वेदांत केवल ब्रह्म को

श्रीनगर स्थित पंचमुखी हनुमान मंदिर में प्रतिष्ठित शिवलिंग

सत्य मानता है, उसके लिए जगत मिथ्या है। जगत को माया अथवा मिथ्या कहने से जनसाधारण में यह आस्था फैल गई कि जगत असत्य है और उसको गंभीरता से नहीं लेना चाहिए। हमारे जीवन का लक्ष्य यह बन जाता है कि दैनिक जीवन से विमुख होकर आध्यात्म की तरफ जाएं।

वेदांत का एक सीधा प्रभाव हमारे देश की मानसिकता पर पड़ा। देश का प्रबुद्‌ध वर्ग जीवन से संघर्ष करने की बजाय पलायनवाद के मार्ग पर चल पड़ा। जिस देश में उपनिषदों के ऋषि सबके सब गृहस्थ थे, वहाँ सन्यासी को श्रेष्ठतम स्थान दिया जाने लगा। कुछ लोगों का मानना है कि भारत का विदेशी आक्रमणकारियों के सम्मुख झुकने का एक प्रमुख कारण यह मानसिकता ही थी।

वेदांत के ठीक विपरीत कश्मीर शैवमत का यह कहना है कि ब्रह्म ही साकार होकर जगत में परिवर्तित हुआ है। जगत ब्रह्म से भिन्न नहीं, उसी का एक रूप है। अतः यदि ब्रह्म सत्य है तो जगत मिथ्या और असत हो ही नहीं सकता। इस बारे में जगद्‌गुरू शंकराचार्य के जीवन की एक प्यारी घटना है। वह सही है या नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। उसके अर्थ को समझना जरूरी है। कहते हैं कि आदिगुरू जब श्रीनगर गए तो जगह-जगह कहने लगे कि शिव ही महत्वपूर्ण है, शक्ति का कोई विशेष स्थान नहीं।

एक दिन कश्मीरी महिला वर्ग ने ठान लिया कि आदिगुरू से टक्कर ली जाए। उन्होंने आदिगुरू को खाना खिलाना बंद कर दिया। कुछ ही दिनों में शंकराचार्य दुर्बल हो गए। एक दिन पानी के एक झरने पर महिलाएं कपड़े धो रही थीं, उधर से शंकराचार्य गुजरे। वह झरने को पार करने का प्रयत्न करने लगे, परंतु बीच रास्ते में ही गिर गए। महिलाओं ने उन्हें उठाया और किनारे पर ले आईं। जब उनसे पूछा गया कि क्या बात थी, तो बोले, पता नहीं, पैरों में शक्ति नहीं थी। महिलाएं हंस पड़ी। महात्मा जी, आप तो, कहते फिरते हो कि शक्ति का कोई वजूद नहीं, केवल शिव ही शिव है। तो फिर आज शक्ति कहाँ से टपक पड़ी? शंकराचार्य के पास उत्तर नहीं था। लेकिन कश्मीर में ही उन्होंने 'सौंदर्य लहरी' नाम से देवी की स्तुति लिखी।

वैरी नाग के निकट स्थित शिव मंदिर

कई शताब्दियाँ गुजर गईं। एक दिन रामकृष्ण परमहंस भक्तों के साथ वार्तालाप कर रहे थे। एक भक्त ने पूछा, 'भगवन्! वेदों में तो लिखा है कि केवल ब्रह्म ही सत्य है, और जगत मिथ्या है, इसका क्या तात्पर्य है? क्या जगत असत्य है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है?' परमहंस ने समझाया, 'नहीं वत्स! मिथ्या का मतलब असत्य नहीं है। मिथ्या का मतलब है कि वह अस्थाई है, क्षणभंगुर है, सदा के लिए नहीं है, परिवर्तनशील है।' यह उत्तर वेदांत से नहीं, कश्मीर शैवमत से प्रेरित था। इसी उत्तर को स्वामी विवेकानंद ने समझा और प्रचारित किया। यही स्पष्टीकरण देश की मुख्य विचारधारा बन गया। इसी के फलस्वरूप अरविंद घोष ने समन्वित योग का प्रतिपादन किया। इसी से गाँधी का अहिंसात्मक सत्याग्रह आंदोलन अभिप्रेरित हुआ। इसी से भारत को आजादी मिली और यही विचारधारा अब भारत को विश्व के एक अग्रणी देश के रूप में पुनर्स्थापित करेगी।

दूसरा बुनियादी अंतर यह है कि वेदांत में कर्मयोग से तात्पर्य है फल की इच्छा किए बगैर कर्म किए जाना। कश्मीर शैवमत में कर्मयोग का मतलब वह स्थिति है जिसमें मनुष्य अपने कर्म करते हुए ईश्वर का चिंतन करे। यह पाया गया है कि ऐसा ध्यान जो चलते-चलते, खाना खाते हुए, या अन्य कोई कर्म करते हुए किया जाए, उसका फल अत्यधिक होता है। इस प्रकार का चलता-फिरता ध्यान, पंद्रह मिनट किया जाए, तो उतना ही फल देता है जितना आँख मूँदकर एक जगह बैठकर किया गया ध्यान दो वर्ष में नहीं दे सकता।

"वेदांत में कर्मयोग से तात्पर्य है फल की इच्छा किए बगैर कर्म किए जाना। कश्मीर शैवमत में कर्मयोग का मतलब वह स्थिति है जिसमें मनुष्य अपने कर्म करते हुए ईश्वर का चिंतन करे।"

तीसरा अंतर यह है कि वेदांत में कुंडलिनी योग की अधिक महत्ता नहीं होना है, जबकि कश्मीर शैवमत में कुंडलिनी योग प्रमुख है। चौथा अंतर यह है कि वेदांत सबके पढ़ने समझाने के लिए नहीं है। उसे केवल गुणी ब्राह्मणों तक ही सीमित रहना चाहिए। शंकराचार्य का यहाँ तक मानना है कि वेदांत केवल सन्यासियों के लिए है, किसी और के लिए नहीं। महिलाओं के लिए और ब्राह्मणों के अलावा दूसरे वर्णों के सदस्यों के लिए वेदांत नहीं है। कश्मीर शैवमत कहता है कि इस मत को कोई भी व्यक्ति व्यवहार में ला सकता है, चाहे वह किसी धर्म, जाति, वर्ण, रंग, लिंग आदि का हो। इस प्रकार कश्मीर शैवमत सबके लिए है और सबको लाभान्वित कर सकता है। इसमें कहीं कोई संकीर्णता नहीं है।

कश्मीरी शैवमत को संत लल्लेश्वरी (ललद्यद) ने जनसाधारण तक पहुँचाया। उन्होंने इसके मूल सिद्धांतों को पद्य में प्रचलित किया। उनके वाख (वाक्य) आज तक कश्मीर के जन-जन की जुबान पर हैं। वह हिंदू और मुसलमान में कोई भेद नहीं रखती थीं। उनका एक प्रसिद्ध वाख है:

'गोरन दोपनम कुनिय वचुखन
न्यबरय दोपनम अंदर अचुखन
सुयि म्य गव वाख त वचुखन
तवय ह्योतुम नंगय नचुखन'

अर्थात 'गुरू ने मुझको एक ही सीख दी। मुझे समझाया कि बाहरी संसार से विमुख होकर मैं अपने आतंरिक संसार को निहारूं। यही मेरे लिए मूल मंत्र बन गया। मैंने इसी उपदेश का अनुपालन किया। फिर मुझे वह नशा चढ़ा कि मैं नंगी ही नाचने लगी अर्थात् आत्मविभोर हो गई।'

आध्यात्म पथ का इतना सीधा और सुगम विवेचन शायद पूरे विश्व के इतिहास में अनूठा है। जब हम बाहर के आडंबर से विरक्ति पाकर अपने आतंरिक जगत के वासी बन जाते हैं, उसी पल हमारी आध्यात्मिक साधना का सूत्रपात हो जाता है।

* डी-31, पाम्पोश एनक्लेव,
नई दिल्ली-110048

प्रो. जिया लाल हंडू*

कश्मीर में सूफीमत का प्रवेश एवं भावलोक

भारत के मध्ययुग के निर्गुणवादी सूफी-संतों ने ईश्वर को प्रेम-प्राप्य कहकर अविच्छिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक भावनाओं का पुनरुत्थान ही नहीं किया अपितु हिंदू-मुसलमानों के बीच भेदभाव की खाई पाटने का भी प्रयत्न किया। इन्हें एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास करते हुए इन्होंने उनके हृदयों के बीच समाहित अजनबीपन को भी मनोवैज्ञानिक ढंग से दूर करके खंडनात्मकता के स्थान पर दोनों संस्कृतियों का सुंदर सामंजस्य प्रस्तुत किया।

मुस्लिम संत या फकीर ही सूफी कहलाए। सूफी शब्द मूलत: अरब और ईराक के उन सूफियों को सूचित करता है जो सूफ (मोटे ऊनी वस्त्र) पहना करते थे, जो एक प्रकार का चोगा होता था। इनका विरक्तों या संन्यासियों जैसा साधनापूर्ण जीवन था और संभवत: इसी कारण ये लोग मुसलमानों की अग्रिम पंक्ति (सफ) में ठहराने के अधिकारी थे। एक अन्य दल सूफी शब्द को सोफिया (ज्ञान) का रूपांतर मानता है। इसी ज्ञान के कारण इन्हें 'सूफी' कहा जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि मुहम्मद साहब के समय में ही

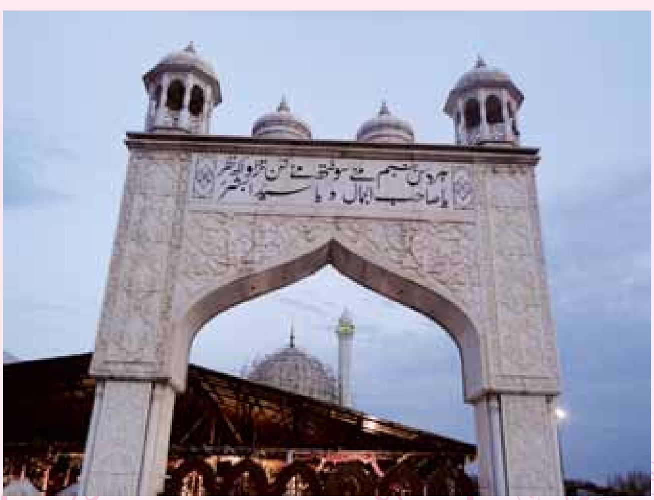

हज़रतबल दरगाह का प्रवेश द्वार, छायांकन: श्रीमती नीलमणि शर्मा

लगभग 45 व्यक्तियों ने मक्का में अपने जीवन-ध्यान को सब कुछ समझ लिया था। अबुलफ़िदा नामक इतिहासकार का कहना है कि ये महान् आत्माएं 'अशावी सफा' धर्मस्थान के चबूतरा साहब के निधन के दो सौ वर्ष पश्चात् उन्हें सूफी नाम से पुकारा गया। इनके द्वारा प्रवर्तित सूफीमत (इस्लामी रहस्यवाद) को तसव्वुफ़ कहा गया है।

सूफ़ी मत का उदय तत्कालीन वातावरण की प्रतिक्रिया में हुआ जब कुरान शरीफ़ एवं हदीस के आधार पर अनेक भाष्यों एवं विवृत्तियों की रचना होने लगी। तभी सातवीं शताब्दी का अंत होते-होते सूफीमत का जन्म हुआ। आरम्भ में सूफीमत में दर्शन का प्रवेश नहीं था। इस्लाम एक प्रवृत्तिमूलक धर्म था। पहली बार इसमें कतिपय ऐसे व्यक्ति सामने आए जिनमें भक्ति का सन्निवेश हुआ। आत्मा का शुद्धिकरण प्रारम्भ हुआ। उन्होंने कुरान में अपनी किसी बात का समर्थन न पाने पर हदीसों का हवाला दिया। ईरान की सूफी कवयित्री राबिया ने सूफी मत में माधुर्य भाव की स्थापना करके कहा- 'खुदा के प्रेम ने मुझे इतना अभिभूत किया है कि मेरे हृदय में अन्य किसी के प्रति न तो प्रेम शेष रहा, न घृणा शेष रही।'

सूफीमत के प्रथमावस्था वाले इस प्रासाद की नींव में प्रेम की भावना निवासित थी, तापसी जीवन का माहात्म्य था। प्रेम पर इतना व्यापक एवं गहरा अधिकार था कि लोग प्रेम को ही सूफीमत का पर्याय समझने लगे।

"भारत के मध्ययुग के निर्गुणवादी सूफी-संतों ने ईश्वर को प्रेम-प्राप्य कहकर अविच्छिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक भावनाओं का पुनरुत्थान ही नहीं किया अपितु हिंदू-मुसलमानों के बीच भेदभाव की खाई पाटने का भी प्रयत्न किया।"

जहाद (धार्मिक युद्ध) का अर्थ इन्होंने यही लगाया कि पतनोन्मुख प्रवृत्तियों से लड़ना ही जहाद है, इस समय तक प्रकृति की ऐकांतिक गोद में ही सूफीमत का विकास होता रहा।

दूसरी अवस्था के समय तक भारतीय संस्कृति, दर्शन, धर्म, साहित्य, इतिहास, कला एवं विचारधारा का प्रचार बढ़ने के साथ-साथ सूफियों की मनोवृत्ति में परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। यूनानी दार्शनिकों के प्रसिद्ध एवं प्रमुख ग्रंथों का अनुवाद कार्य प्रारम्भ हुआ। वेदांत, दर्शन और बौद्ध दर्शन के अनुशीलन एवं अध्ययन किए जाने के कारण इस्लाम धर्म के क्षेत्रों में नितांत नए विचार स्रोतों का प्रवेश हुआ। इस समय ईरानी संस्कृति, ईसाईयों का भाव योग तथा प्लेटिनम का नवअफलातूनी मतवाद भी अपना-अपना प्रभाव डालते दृष्टिगोचर हो रहे थे। इन सबके सम्मिश्रण एवं समन्वय द्वारा एक ऐसी विचारधारा की सृष्टि होती जा रही थी जो इस्लाम के भीतर एक प्रकार की क्रांति ला देने की अभिव्यंजिका थी। तभी सूफी साधकों का एक पृथक् मत सूफ़ी मत के नाम से विकसित हो चला। इस समय के प्रसिद्ध सूफ़ी जूलनून मिश्री, वायजीद अल् वस्तामी, जुनैद, शिवली तथा मंसूर वा हल्लाज हैं। जुनैद (मृत्यु सन् 889) ने कहा है कि 'तसव्वुफ़ ईश्वर द्वारा यूसुफ़ में व्यक्तित्व की समाहिति और ईश्वर तत्व की उद्बुद्धि का नाम है। मंसूर (मृत्यु सन् 922 ई.) ने अपने सर्वात्मवाद के प्रति आस्था दिखाकर भारतीय वेदांत दर्शन के अद्वैत सिद्धांत की ओर भी ध्यान आकर्षित किया।

सूफीमत के प्रचार में फारसी के कतिपय प्रमुख कवियों जैसे उमर खय्याम (मृत्यु सन् 1123 ई.), सनाई (मृत्यु सन् 1132) तथा सादी (मृत्यु सन् 1261 ई.) के नाम अग्रगण्य हैं। इन प्रतिभाशाली कवियों ने फारसी में मसनवियों तथा ग़ज़लों की रचना की। इन कवियों के द्वारा फारसी साहित्य की अभिवृद्धि हुई तथा साथ ही सूफीमत का भी प्रचार हुआ। कश्मीरी तथा भारतीय दोनों प्रकार के सूफी कवियों ने उनके ही आदर्शों से प्रभावित होकर प्रेमाख्यान परंपरा में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया।

"डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय का कथन है कि भारत में सूफीमत का प्रवेश हुज्वेरी (12वीं शताब्दी) से हुआ जो ग़ज़्नी का रहने वाला था। अंत में मुग़ल साम्राज्य के साथ ही 16वीं शताब्दी में इसका ह्रास हो गया।"

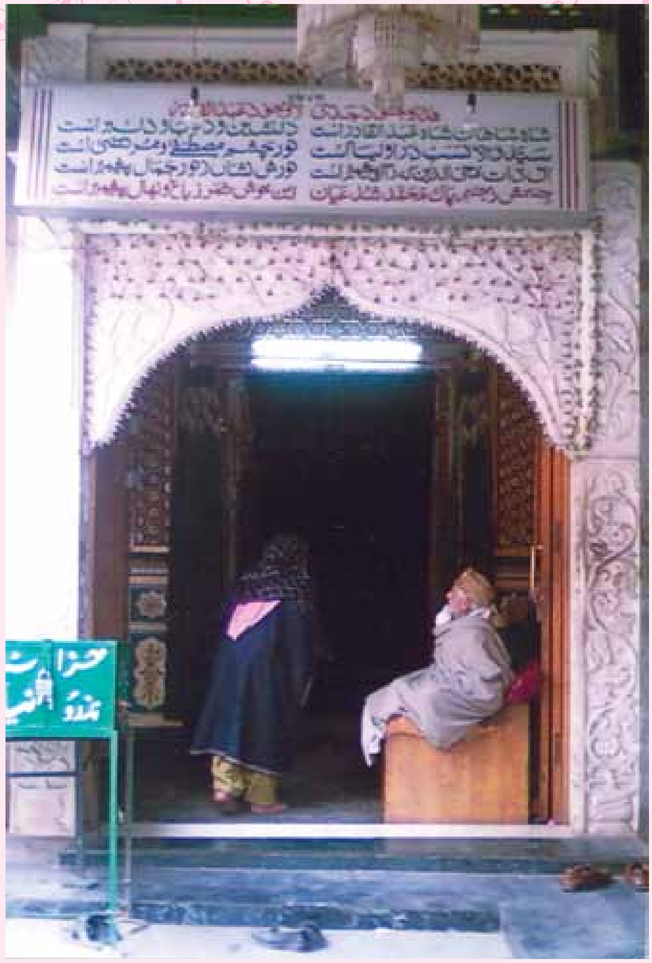

दस्तगीर साहिब दरगाह का प्रवेश द्वार-छायांकन: डॉ. मजहर खान

डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय का कथन है कि भारत में सूफीमत का प्रवेश हुज्वेरी (12वीं शताब्दी) से हुआ जो ग़ज़्नी का रहने वाला था। अंत में मुग़ल साम्राज्य के साथ ही 16वीं शताब्दी में इसका ह्रास हो गया। यह एक मनोरंजक तथ्य है कि जब भारत में प्रबंध (14वीं-18वीं शताब्दी) का प्रवाह क्षीण हो रहा था, कश्मीर में सूफी प्रबंध (18वीं शताब्दी से अब तक) उसी समय जन्म ले रहा था। कश्मीर में इस्लाम का प्रभाव मुसलमान राज्य के प्रतिष्ठापित होने से पूर्व अपना ज़ोर पकड़ता जा रहा था। मुस्लिम संतों ने जब अपना प्रथम चरण कश्मीर की धरती पर रखा उनका स्वागत मित्रभाव से हुआ। मुसलमान संतों ने हिंदू योगियों का संसर्ग प्राप्त किया तथा पारस्परिक शास्त्रार्थ चलते रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि 13वीं शताब्दी के अंत तक कश्मीर मुसलमानों

का उपनिवेश बन गया था। नए धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए सौभाग्यवश यह भूमि अत्यधिक उर्वरा सिद्ध हुई।

कश्मीर में इस्लाम के प्रचार एवं प्रसार से पूर्व शैवमत एवं वैष्णव धर्म का अत्यधिक प्रचार था। इसके विरोध में जो आंदोलन उठ खड़े हुए वे इनकी दार्शनिकता तथा विधि-विधानों के प्रतिपक्षी थे। किसी सीमा तक ये आंदोलन मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन एवं बाह्याडंबरों के खंडन मात्र और केवल हृदय की स्वच्छता, प्रभु-प्रेम तथा उसके अनुग्रह पर अधिक बल देते थे। ऊँच-नीच के भेद-भाव को दूर करने के लिए भी ये आंदोलन प्रयत्नशील रहे।

इस्लाम को अपने प्रारम्भिक काल में बौद्धमत की अपेक्षा शैवमत से संघर्ष करना पड़ा। इस समय शैवमत अपनी प्रौढावस्था को प्राप्त हो चुका था जिसका प्रभाव लोगों के हृदयों पर गहरा पड़ा था। इस समय तक बौद्ध मत का पूर्णरूपेण ह्रास हो चुका था। शैवमत के सिद्धांत, विधि-विधानों तथा क्रिया पद्धति के कारण अपनी नींवदृढ बना चुके थे। कालांतर में शैवमत भ्रांतियों तथा विधि-विधानों का दर्शन मात्र बनकर रह गया। योग एवं ज्ञान की क्रियाएं जनसाधारण के लिए एक गोरखधंधा बन रही थीं। यही कारण है कि इस्लाम के सिद्धांतों का यहाँ सूफियों के द्वारा प्रचार हुआ, जिसके लिए जनता पहले से ही तैयार थी।

''मुसलमानों के एकेश्वरवाद एवं उदार भ्रातृ भाव से हिंदू बहुत कुछ प्रभावित हुए और देश के संतों के एक नए दल का प्रादुर्भाव हुआ। इसी कारण जातीय, सांस्कृतिक अथवा धार्मिक संघर्ष अथवा मतभेद की सम्भावना भी बहुत कम रह गई थी।''

भारत में मुसलमानों के आक्रमणों के समय ब्राह्मणों में शैव एवं शक्ति दो विभेद हो चले थे। जोगी पश्चिमी भागों में रमते चले आ रहे थे। शंकराचार्य (सन् 788-820 ई.) के प्रबल प्रहारों से बौद्ध धर्म को अत्यधिक प्रहार पहुँच रहे थे। वह केवल तंत्र, मंत्र एवं यंत्र की सिद्धियों के ही चक्र में पड़कर रह गया था। फलतः एक महान् धार्मिक आंदोलन उठ खड़ा हुआ, जिसका प्रभाव देश के कोने-कोने में पड़ा।

ललद्यद (लल्लेश्वरी)

राज्य स्थापना के पश्चात् मुसलमानों तथा हिंदुओं के परस्पर भावों एवं विचारों का आदान-प्रदान प्रारंभ हो गया। मुसलमानों के एकेश्वरवाद एवं उदार भ्रातृ भाव से हिंदू बहुत कुछ प्रभावित हुए और देश के संतों के एक नए दल का प्रादुर्भाव हुआ। इसी कारण जातीय, सांस्कृतिक अथवा धार्मिक संघर्ष अथवा मतभेद की सम्भावना भी बहुत कम रह गई थी। इन संतों ने योग आदि क्रियाओं का भी अपने संप्रदाय में प्रचार किया, परंतु सामान्य जनता ने इनकी सरल शिक्षा एवं उदार वृत्ति को ही अधिक ग्रहण किया। सूफियों ने भारतीय तथा प्रेम स्वरूप ईश्वर को ही ग्रहण किया।

सूफी कवि उदार हृदय थे, अतः उनके प्रेमाख्यानों में कट्टरता के कम दर्शन होते हैं। तत्कालीन प्रचलित धार्मिक संप्रदायों का प्रभाव उन पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। भारत में जायसी प्रेम तत्व का प्रचार करते रहे। कश्मीर में वही कार्य ललद्यद (लल्लेश्वरी) एवं नुंद-ऋषि ने किया। अमीर खुसरो (12वीं शताब्दी) ने भी उसी पारस्परिक मेल-जोल का सूत्रपात किया था। ऐतिहासिक आधार पर कश्मीर में सर्वप्रथम आने वाला सूफी संत बुलबुलशाह था। उसके पश्चात् प्रौढ सूफी संत अमीर कबीर सैय्यद अली हमदानी को विशेष स्थान प्राप्त है। उनका जन्म ईरान के हमदान

नामक स्थान पर 324 ई. में हुआ था। उन्होंने अपने मामा सैयद अलाउद्दीन सिमनानी से इस्लाम धर्म एवं तसव्वुफ के संबंध में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। वे कुब्रवी संप्रदाय से संबंधित थे। उन्हें शाह हमदान की पदवी से विभूषित किया गया था। यहाँ उनके संपर्क में शैव मतानुयायी ललद्यद तथा सूफी नुंद ऋषि आए। अस्लामी तसव्वुफ एवं योग का सम्मिश्रण हुआ। विचारों का आदान-प्रदान भी हुआ। शैवमत प्रभावित तसव्वुफ का ज्यों-ज्यों विकास होता गया, त्यों-त्यों रहस्यवादी प्रवृत्तियों का समावेश होता गया।

सूफी साहित्य का भावलोक अत्यंत उदात्त, सांस्कृतिक एवं नियोजित परिलक्षित होता है। उसकी एक कहावत है-'अल् मजा़जी कजंरतुल हकीकी' अर्थात् मजा़ज हकीकत का पुल है। इस बात की पुष्टि अधिकतर फारसी साहित्य में होती है, जहाँ यह कहा गया है कि सांसारिक मार्ग पर चलकर ही ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त किया जा सकता है।

मौलाना रूमी ने एक स्थान पर कहा कि वह निर्माता ईश्वरीय किरण है। वह सांसारिक प्रेमिका नहीं है और न ही निर्मिता, वह तो स्वयं निर्माता है। इसका तात्पर्य यह है कि इश्क मजा़जी एवं इश्क हकीकी में कोई अंतर नहीं है। अब्दुल अरबी (मृत्यु सन् 1240 ई.) ने स्त्री प्रेम को ईश्वरीय प्रेम बताया है। उसके अनुसार लौकिक प्रेम भी ईश्वरीय प्रेम की भांति है। इस प्रेम का उदय जब साधक के हृदय में होता है तो उस समय विरह के कारण सम्पूर्ण सांसारिक वस्तुएं तुच्छ हो जाती हैं। वह केवल प्रेमी के ही नियमों का पालन करके परमात्मा का ही पूर्ण परिचय प्राप्त करता है। वह बाह्याचार (नमाज़, हज, रोज़ा, ज़कात आदि) पर बल डालने की अपेक्षा आंतरिक पवित्रता को ही प्रमुखता देता है। परमात्मा एवं मनुष्य के बीच रागात्मक संबंध सूफीमत की विशेषता है।

"सूफी साहित्य का भावलोक अत्यंत उदात्त, सांस्कृतिक एवं नियोजित परिलक्षित होता है। उसकी एक कहावत है-'अल् मजा़जी कजंरतुल हकीकी' अर्थात् मजा़ज हकीकत का पुल है।"

साधक परमेश्वर के समक्ष पहुँचते-पहुँचते अपने सभी भौतिक एवं एंद्रिय गुणों से रहित हो जाता है। उसके मार्ग की अंतिम मंज़िल प्रेम एवं मारिफ़ (ज्ञान) हैं जिनके द्वारा साधक परमात्मा के दर्शन करने एवं एकमेव होने में सफलता प्राप्त करता है।

सूफियों ने आध्यात्मिक जीवन को एक यात्रा माना है। उसे सप्त सोपानों-आत्मसंयम, वैराग्य, दरिद्रता, धैर्य, अनुताप, ईश्वर में विश्वास एवं संतोष की ओर अग्रसर होना पड़ता है, जो केवल प्राथमिक दशा को ही सूचित करता है। जब सालिक (साधक) अपने सप्तम् सोपान पर पहुँचता है, तो वह शांति भाव को प्राप्त होकर ज्ञान का अधिकारी बन जाता है। सात सोपानों के अतिक्रमण के पश्चात् साधक साधना करते हुए चतुर्विध सोपानों-मारिफ़त, प्रेम, वज्द (उन्मादना) तथा वस्ल (ईश्वर मिलन) को प्राप्त होता है। मारिफत में गहरी अनुभूति का अंश धारण करके साधक को आवेश अवस्था में ही वास्तविक 'प्रेम' की अभिव्यंजना होती है। साधना की चार अवस्थाओं को हाल (ईश्वर में तन्मयता) कहा जाता है।

पहली अवस्था 'नासूत' है, जिसका संबंध मनुष्य की प्रकृत अवस्था से है। इसमें साधक 'शरीयत' (इस्लामी धर्म शास्त्रों का अनुसरण) करता है। दूसरी अवस्था 'मलकूत' है जिसमें वह पवित्रता का सहारा लेकर 'तरीकत' अथवा उपासना की ओर प्रवृत्त होता है। तीसरी अवस्था 'जबरुत' है, जिसमें साधक आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करता है तथा सालिक (साधक) से मारिफ़ बनता है। यही मंज़िल 'मारिफ़त' की है। अंत में साधक 'लाहूत' की दशा तक पहुँचता है, जहाँ वह आत्मज्ञाननिष्ठ हो जाता है। उसे 'हकीकत' एवं

मखदूम साहिब की दरगाह का प्रवेश द्वार-
छायांकन: डॉ. मजहर खान

सत्य की उपलब्धि होती है। कतिपय लोगों ने इन दशाओं को क्रमश: नरलोक, देवलोक, ऐश्वर्यलोक एवं माधुर्यलोक के रूपों में भी स्वीकार किया है। कुछ लोग अंतिम अवस्था 'बका' (अवस्थिति) मानते हैं जो 'फ़ना' (निर्वाण) के पश्चात् प्राप्त होती है।

"सभी सूफी दर्शनों का मूल उद्देश्य त्रिविध तापों से मुक्त होकर आनंद प्राप्त करना भी रहा है। सूफियों को भी भारतीय दर्शन, विशेषत: ईश्वरीय प्रेम एवं मानवता के आदर्श ने ही अत्यधिक प्रभावित किया है।"

सभी सूफी दर्शनों का मूल उद्देश्य त्रिविध तापों से मुक्त होकर आनंद प्राप्त करना भी रहा है। सूफियों को भी भारतीय दर्शन, विशेषत: ईश्वरीय प्रेम एवं मानवता के आदर्श ने ही अत्यधिक प्रभावित किया है। दार्शनिक दृष्टि से उन दोनों में कोई विशेष अंतर प्रतीत नहीं होता। ईश्वर के विषय में वे सर्वात्मावाद के पक्षधर रहे हैं। जीव के विषय में भी उन्होंने अद्वैत को अपनाया है। वे मानते हैं कि जीव एवं ब्रह्म में वस्तुत: कोई भेद नहीं है। मानव में ईश्वर का पूर्ण प्रतिबिंब है। वही संपूर्ण सृष्टि का सृष्टा है। यह सृष्टि परमात्मासत्ता की अभिव्यक्ति और ईश्वर के स्वत: संपूर्ण आनंद की एक मूर्त विकासकृति है। उनके एक शब्द 'कुन्' (प्रकाश) से ही यह सृष्टि रचित हुई है।

दार्शनिकों के सम्मुख सदैव प्रश्न रहे हैं कि नामरूपात्मक जगत् सत्य है अथवा मिथ्या, नित्य है अथवा अनित्य। बौद्ध दर्शन की दृष्टि में सब-कुछ अनित्य है और उसी की परिस्थिति शून्यवाद में हुई। शैव दर्शन के अनुसार यह सृष्टि उसी प्रकार नित्य है जैसे सृष्टा तथा शक्ति। वेदांत रूपात्मक सत्ता को जहाँ मिथ्या मानता है, वहीं शैवमत इसे नित्य रूप में ग्रहण करता है।

सूफी कवियों की विचारधारा सृष्टि के सत्य अथवा मिथ्या होने के विषय में दो रूपों में विराजमान है। बिना इस आधार सत्ता के सृष्टि की उत्पति असम्भव है। वह एक सत्ता ही संसार का उत्पादन एवं निमित्त कारण है। अत: इसके बाहर और कोई सत्ता नहीं। जामी का कथन है कि 'इस सृष्टि का प्रसार उसी से हुआ है और अंत में यह उसी में समा जाएगी।' सूफियों को माया का सत्य स्वरूप स्वीकार नहीं है। उन्होंने जहाँ कहीं भी माया का वर्णन किया है, वहाँ उन्होंने केवल इंद्रियगत विषयों के आकर्षण तथा उनके दुष्प्रभाव का ही वर्णन किया है। उनका विचार है कि माया के प्रलोभन में पड़कर ही मानव भोग की कामना में योग का त्याग कर देता है।

माया की कल्पना दो रूपों में हुई है। प्रथम काया या शरीर के अंतर्गत वर्तमान 'नफ्स' (वासनापूर्ण आत्मपक्ष) तथा द्वितीय बाह्य जगत का आकर्षण। इन दोनों के प्रति आकर्षण न होकर ही मानव अपने परम लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। इन साधकों ने सृष्टि की नश्वरता का वर्णन इसलिए किया है कि इसके प्रति विरक्ति उत्पन्न हो तथा परमार्थ चिंतन में ध्यान लग जाए।

सूफियों की यह मान्यता है कि जीवन का परम लक्ष्य मानव की पूर्णता है। पूर्ण मानव (अल् इंसानुल कामिल) के प्रश्न को सर्वप्रथम सूफी कवि इब्न अरबी ने महत्व दिया था। उनका कथन है कि 'पूर्ण मानव, सृष्टि का चरमोत्कर्ष है, उसी में ईश्वर के स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है।' मानव शरीर में अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी के अतिरिक्त 'नफ्स' (वासनापूर्ण आत्मपक्ष) एवं अहं का भी समाहार है। आकाश तत्व का अभाव है। कुरान में चार तत्व ही मान्य है। उनकी दृष्टि में पूर्ण मानव वही है जो सांसारिक सुख, वैभव, संपत्ति एवं ऐश्वर्य का परित्याग करके 'हक' (ब्रह्म ज्ञान) से मिलने का प्रयत्न करे। 'नफ्स' (वासना पूर्ण आत्मपक्ष) के प्रति आकर्षण रहित हो। वे ऐसे मानव को 'पीर' अथवा 'वली' मानते है।

दृश्यमान जगत् से परे परम सत्य की खोज ही सूफी कवियों का परम लक्ष्य रहा है। उन्होंने वस्तुत: आत्मा एवं ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना है। संसार ईश्वर का अचिंत पक्ष है एवं जीवात्मा उसका चितपक्ष बंधन है। अत: जीव का संसार से तात्विक संबंध नहीं है। सूफियों का विश्वास है कि वास्तव में 'अहंत्व' का विलयन ही 'फना' (निर्वाण) तथा परमात्मा के चिंतन में मन लगाना ही 'बका' (परमात्मा स्वरूप) है। सूफियों की यह दार्शनिकता एवं विचारधारा है कि भ्रम ही बंधन है। इस भ्रम का निवारण होने पर ही जीवात्मा शरीर-बंधन से मुक्त होकर मृत्यु को पार करती है।

भारत में सूफीमत की स्वतंत्र उत्पत्ति नहीं हुई थी। सूफी संत ही इसे पश्चिमी इस्लामी प्रांतों से यहाँ ले आए।

जैनुद्दीन वली की ज़ियारतगाह-छायांकनः श्रीमती नीलमणि शर्मा

मुसलमानों की राजनीतिक विजय के साथ-साथ धार्मिक विजय भी होती रही। तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी में ये प्रचारक कश्मीर, दक्षिण भारत एवं बंगाल आदि प्रदेशों तक फैल गए। सूफीमत की यात्रा में मुख्य प्रस्थान-त्रय माने जाते हैं- अरब, ईरान और भारत। इस मत ने अरब में ज्ञान मार्ग, ईरान में आध्यात्मिक प्रेम एवं भक्ति-भावना तथा भारत (कश्मीर) में ज्ञान एवं भक्ति के आधार पर कर्म मार्ग की प्रेरणा पाई।

सूफी साहित्य प्रबंध काव्य एवं मुक्तक काव्य दोनों में उपलब्ध है। कश्मीरी में लिखित प्रबंध काव्य हैं-लैला-मजनूं, शीरी-खुसरो, यूसुफ-जुलेखा, हियमाल, वामीक-अज़्रा, गुलरेज़, जैवा-निगार, सोहनी-महीवाल, चन्द्रवदन, मुमताज़-बेनज़ीर और रैणा व ज़ेबा। भारत के अन्य प्रसिद्ध सूफी प्रबंध काव्य हैं-चंदायन, मृगावती, मधुमालती, पद्मावत, चित्रावली, ज्ञानीप, पुहुपावती, हंसजवाहर, इंद्रावती, अनुराग बाँसुरी और प्रेम चिंगारी।

जिस प्रकार की कथाएं कश्मीरी तथा भारत के अन्य सूफी साहित्य में समान रूप से प्रभावित रहीं, उन्हें मौटे तौर पर चार श्रेणियों में रखा जा सकता है-ऐतिहासिक या पैराणिक कथाएं, फारसी की कहानियाँ, प्रचलित लोक कथाएं और कल्पना प्रसूत कथाएं।

कश्मीरी के अधिकतर प्रबंध काव्य फ़ारसी या लोक कथाओं की घटनाओं पर आधारित हैं लेकिन इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि भारत के साथ घनिष्ठ संबंधों के कारण किसी ने पंजाब की लोककथा 'सोहनी-महीवाल' तथा किसी ने दक्षिण की कथा 'चंद्रवदन' को भी अपनाया है। पीर अज़ीज अल्लाह हक्कानी ने भारत के इतिहासकारों द्वारा वर्णित किसी ऐतिहासिक घटना को अपनाकर उसे कल्पना का पुट देकर सूफी सिद्धांतों से समन्वित किया। फारसी की प्रधानता के कारण ही कश्मीर में सर्वप्रथम फारसी सूफी काव्य की रचना हुई और उसके पश्चात् ही कश्मीरी में प्रबंध काव्य लिखे जाने लगे। वस्तुतः कश्मीर के ये प्रबंध सूफी-काव्य मसनवी शैली का अनुसरण करते हैं। सूफी प्रबंध काव्य भी सर्गबद्ध शैली में न होकर फारसी मसनवी के ढंग पर ही रचे गए हैं। अधिकतर कश्मीरी प्रबंधकारों ने न गुरु का उल्लेख किया है और न शाहे वक्त की प्रशंसा की है। भारत के सूफी काव्यों की अपेक्षा इनके काव्य में प्रेम की अभिव्यंजना अधिक है।

"दृश्यमान जगत् से परे परम सत्य की खोज ही सूफी कवियों का परम लक्ष्य रहा है। उन्होंने वस्तुतः आत्मा एवं ब्रह्म में कोई भेद नहीं माना है। संसार ईश्वर का अचिंत पक्ष है एवं जीवात्मा उसका चितपक्ष बंधन है।"

कश्मीरी कवियों ने यद्यपि षट्ऋतु तथा बारहमासे का वर्णन नहीं किया है फिर भी इनमें साम्य उपलब्ध है। हिंदी सूफ़ी प्रबंध काव्य 'चंदायन' की कुछ एक घटनाओं का साम्य कश्मीरी सूफी प्रबंध काव्य 'रैण व जेबा' से है। इसमें चंदायन को चाँद की भांति ही नायिका ज़ेबा अपने प्रेमी को मार्गदर्शन के लिए प्रेरित करती है। 'मधुमालती' की कथा का अधिकांश भाग 'गुलरेज़' से साम्य रखता है। इसमें मुख्य एवं प्रासंगिक कथा एक साथ चलती है। 'गुलरेज़' एवं 'मधुमालती' की कथाओं में इतना साम्य है कि संभवतः दोनों काव्यों का स्रोत कोई अन्य रचना रही होगी अथवा 'मधुमालती' का प्रभाव किसी न किसी रूप में 'गुलरेज़' पर पड़ा होगा। कश्मीरी प्रबंध काव्यों के अंत में भारत के प्रबंध काव्यों की भांति उनके रूपक, समासोक्ति अथवा अन्योक्ति आदि का कोई संकेत नहीं मिलता।

प्रायः सभी सूफी संप्रदाय कादिरिया, सुहरवर्दिया, कुब्रविया, नक्शबंदिया, चिश्तिया, नूरबख्शिया एक जैसे रहे, किंतु कश्मीर में 'ऋषि संप्रदाय' अत्यंत प्रमुख रहा। वह मौलिक रूप में भारतीय रहा और इस संप्रदाय के कवि मूलतः हिंदू धर्म के उदात्ततम आदर्श मानवतावाद के समर्थक रहे। प्रेम एवं विश्वबंधुत्व की मधुर रागिनी का राग ही उन्होंने अलापा है। इस संप्रदाय

में हिंदुओं का व्यावहारिक बाह्याचार एवं जीवन पद्धति सुरक्षित रही। हिंदू-मुस्लिम ऐक्य की प्रतिष्ठा हुई।

मुक्तक काव्यों की परम्परा सन् 1334 ई. से मानी जाती है। सर्वप्रथम कवयित्री ललद्यद चौदहवीं शताब्दी में अमीर कबीर सैयद अली हमदानी की समकालीन थी। कश्मीर में उसके पदार्पण से पहले ही उसने बाह्याडम्बर एवं पाखंड पर चोटें की थीं। उसके वाक्यों या वाखों में सूफी साहित्य के मुक्त तीव्र रूप का बीज निहित है। परिष्कृत छंद-विधान की अपेक्षा उसके वाक्यों में लय का मनोरम संगीत समाया हुआ है।

लल्लेश्वरी के तीस वर्ष बाद आध्यात्मिक समन्वय का सहारा लेकर शेख नूरुद्दीन (सन् 1377-1488 ई.) मानवता का प्यार भरा संदेश सुनाने के लिए अग्रसर हुए। उनकी रचना 'ऋषिनामा' में संकलित श्रुकों (श्लोकों) पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव परिलक्षित होता है। मुसलमान होते हुए भी वे शैव दर्शन से प्रभावित थे नफ़्स, काम-क्रोधादि का नाश, ज़िक्र-फ़िक्र की महिमा, गुरु की प्रधानता तथा परमात्मा संबंधी विचारों का जिस रूप में इन इस्लामी ऋषियों ने वर्णन किया है, उसी ऋषित्व को दूरवर्ती सूफी कवियों ने अपनाया। अठाहरवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्वच्छ क्राल शाह गफ़ूर तथा महमूद गामी ने मुक्तक काव्य की रचना करके सूफी साहित्य में अभिवृद्धि की। तदनंतर मुक्तक कवियों की अजस्र धारा प्रवाहित हुई जिनमें से रहमान डार, बहाब खार, शम्स फ़कीर, अहमद बटवारी, असद परे, वाज़्द महमूद तथा अहमद राही विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अंशी-अंश का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए शम्स फकीर ने कहा है-

'दरियावह मंजह कतरअ द्राव, कतरस मंज़ दरियाव च़ाव।'

अर्थात् दरिया से बूंद का जन्म हुआ और बूंद के भीतर ही दरिया समा गया अर्थात् अंशी (ईश्वर) से अंश (आत्मा) का प्रादुर्भाव हुआ। आत्मा ने ही परमात्मा का स्वरूप ग्रहण कर लिया। शम्स फकीर ने इसमें 'सोऽहं' के अद्वैतवादी सिद्धांत के साथ 'अनलहक' के सिद्धांत को प्रस्तुत किया है। सूफी काव्य की मौसिकी (संगीत) का आनंद संतूर (शततार) नामक वाद्ययंत्र द्वारा लिया जा सकता है जिसे ताल-लय सहित प्रस्तुत किया जाता है।

* 160, सैक्टर 15-ए
चंडीगढ़- 160015

बाबा रेशी की दरगाह-छायांकन: श्रीमती नीलमणि शर्मा

डॉ. शिबन कृष्ण रैणा *

कश्मीरी की लोकप्रिय रामायण : रामावतार चरित

कश्मीरी भाषा-साहित्य में रामकथा-काव्य रचने की सुस्पष्ट परंपरा उन्नीसवीं शताब्दी के आस-पास से देखने को मिलती है। कुल मिलाकर सात रामायण लिखी गईं। रचनाकाल क्रमानुसार उनके नाम हैं- रामावतार चरित (1847), शंकर रामायण (1870), आनंदरामावतार चरित (1888), विष्णु प्रताप रामायण (1904-14), रामायण-इ-शर्मा (1919-26), ताराचंद रामायण (1926-27) तथा अमर रामायण (1950)। इनमें से कश्मीरी की प्रथम रामायण रामावतार चरित सर्वाधिक लोकप्रिय है, जो प्रकाशित हो चुकी है। शेष रामायण अप्रकाशित हैं अथवा उनका उल्लेख मात्र मिलता है। विष्णु प्रताप रामायण (पंडित विष्णु कौल) की हस्तलिखित पांडुलिपि उपलब्ध है और 'विष्णुप्रताप रामायण का आलोचनात्मक अध्ययन' शीर्षक से इस रामायण पर कश्मीर विश्वविद्यालय में 1976 में शोधकार्य भी हुआ है।

भगवान राम का राजतिलक (राष्ट्रीय संग्रहालय)

उपलब्ध और अनुपलब्ध कश्मीरी रामायणों में से रामावतार चरित का विशिष्ट स्थान है। इसमें भक्ति रस से ओत-प्रोत रामकथा गाई गई है। रामावतार चरित के रचयिता कुरिगाम (कुर्यग्राम), कश्मीर निवासी पंडित प्रकाशराम हैं। ऐसा माना जाता है कि वे सन् 1888 ई. तक जीवित रहे। ग्रियर्सन ने इनका कविता काल कश्मीर के गवर्नर सुखजीवन (1754-1762 ई.) का समय बताया है जो सही नहीं बैठता। प्रकाशराम ने 28 वर्ष की आयु में संवत् 1904 तदनुसार 1847 ई. में अपनी प्रसिद्ध काव्यकृति रामावतार चरित की रचना की थी। इस कृति की एक हस्तलिखित प्रति पर संवत् 1904 स्पष्टतया अंकित है। इस आधार पर प्रकाशराम का जन्मकाल सन् 1819 ई. बैठता है।

प्रकाशराम भगवती त्रिपुर सुंदरी के अनन्य भक्त थे। उन्हीं की कृपा से उन्हें वाक्-शक्ति का अपूर्व वरदान प्राप्त हुआ था। कहते हैं कि वे नित्य देवी की पूजा-अर्चना किया करते थे तथा उनकी आराधना में घंटों बिताते थे। एक दिन खूब वर्षा हो रही थी, अंधेरा घिर आया था। प्रकाशराम को दूर से एक डोली अपनी ओर आती हुई दिखाई दी। कहारों ने प्रकाशराम को आवाज़ दी। प्रकाशराम जब डोली के निकट पहुंचे तो डोली का पर्दा ऊपर उठा। डोली में साक्षात् त्रिपुरसुंदरी विराजमान थीं। प्रकाशराम के नेत्र प्रफुल्लित हो उठे। कुछ ही क्षणों बाद भगवती डोली सहित अंतर्ध्यान हो गईं। भगवद्भक्ति का अनूठा प्रसाद पाकर प्रकाशराम का तन-मन झूम-झूमकर ईश-स्तुति में रम गया।

प्रकाशराम की पाँच रचनाओं- रामावतार चरित, लवकुश चरित, कृष्णावतार, अकनन्दुन और शिवलग्न का उल्लेख मिलता है। इनमें से केवल रामावतार चरित तथा लवकुश चरित ही प्रकाशित हुई हैं। लवकुश चरित को रामावतार चरित के अंत में छाप दिया गया है।

"उपलब्ध और अनुपलब्ध कश्मीरी रामायणों में से रामावतार चरित का विशिष्ट स्थान है। इसमें भक्ति रस से ओत-प्रोत रामकथा गाई गई है। रामावतार चरित के रचयिता कुरिगाम (कुर्यग्राम), कश्मीर निवासी पंडित प्रकाशराम हैं।"

प्रकाशराम के रामावतार चरित का मूल आधार वाल्मीकिकृत रामायण तथा आध्यात्म रामायण है। संपूर्ण कथानक सात कांडों में विभक्त है। कवि ने मुख्य रूप से दो प्रकार की काव्य शैलियों का प्रयोग किया है- इतिवृत्तात्मक शैली और गीति शैली। इतिवृत्तात्मक शैली में मुख्य कथा-प्रसंग वर्णित हुए हैं तथा गीति शैली में वंदना-स्तुति संबंधी तथा अन्य भक्ति-गीत कहे गए हैं। इन गीतों में कवि का भक्त-हृदय इतना विह्वल हो उठा है कि कहीं-कहीं पर मूल कथा-प्रसंग उत्कृष्ट भक्ति-भावना के वेग तले दब-से गए हैं।

कश्मीरी की लोकप्रिय रामायण रामावतार चरित के काव्य-वैभव एवं उसमें वर्णित विलक्षण, मौलिक और अद्भुत रामकथा विषयक कथा प्रसंगों को उजागर करने से पूर्व, इस प्रश्न पर संक्षेप में विचार करना उचित होगा कि विद्या-बुद्धि, धर्म-दर्शन एवं साहित्य-कला की क्रीड़ा-स्थली कही जाने वाली कश्मीर-भूमि में रामकथा पर आधारित काव्य रचना करने में कश्मीरी कवियों का मन देर से क्यों रमा? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें कश्मीरी सहित्य के इतिहास पर नज़र दौड़ानी होगी। कश्मीरी का आदिकालीन साहित्य (1250 ई. से 1550 ई.) निर्गुण महिमा वर्णन अथवा संतवाणी से आप्लावित रहा। संत कवयित्री ललद्यद 'लल्लेश्वरी या ललारिफा' (1335 ई.-1373/89 ई.) तथा शेख़ नुरुद्दीन वली 'नुंद ऋषि' (जन्म 1376 ई.) इस दौर के प्रतिनिधि कवि हैं। कबीर की तरह ही इन दोनों कवियों ने मन की शुद्धता, सत्यान्वेषण, गुरु महिमा, धार्मिक सहिष्णुता, एकेश्वरवाद, सदाचार आदि को अपनी कविता (वाक् एवं श्रुक) में निरूपित किया। आगे चलकर कश्मीर के सर्वप्रसिद्ध विद्या प्रेमी व प्रजावत्सल शासक शाहमीरी वंश के अंतिम उल्लेखनीय सुलतान ज़ैन-उल-आबदीन 'बड़शाह' (1420-1470) का शासनकाल कश्मीरी भाषा-साहित्य, कला, शिल्प आदि के लिए नई आशाओं एवं उपलब्धियों का संदेश लेकर आया। कश्मीरी भाषा को पहली बार राजकीय प्रश्रय मिला। इस काल में संगीत, नृत्य, नाट्य तथा सहित्य के क्षेत्रों में सर्वांगीण उन्नति हुई। यह काल, वास्तव में, कश्मीरी भाषा, साहित्य और कला के लिए स्वर्ण-काल था। भट्टावतार कृत वाणासुर वध, सोम पंडित कृत जैन चरित आदि प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ इसी काल की रचनाएं हैं। इसके बाद हब्बाखातून व अरणिमाल ने अपने प्रेम गीतों द्वारा कश्मीरी कविता को अनुरंजित किया। कश्मीरी कविता ने पहली बार धर्म-दर्शन की विचार भूमि से निकलकर ऐहिक धरातल पर प्रेम-यौवन की विभिन्न भाव-स्थितियों से

हनुमान जी, भगवान राम को सीता के वस्त्राभूषण दिखाते हुए- (राष्ट्रीय संग्रहालय)

सामंजस्य स्थापित किया। सृजन का यह क्रम 1550 ई. से 1750 ई. तक चला। 1750 ई. से 1900 ई. तक रचे गए कश्मीरी साहित्य में प्रमुखत: दो प्रकार की धाराएं देखने को मिलती हैं। प्रथम फारसी मसनवियों के आधार पर कश्मीरी में रचित अथवा अनुवादित प्रेमकाव्य और दूसरी राम एवं कृष्ण-भक्ति काव्य। इस काल में रचित काव्य कृतियों में गुलरेज़, यूसुफ-जुलेखा, रामावतार चरित, राधा स्वयंवर, सुदामा चरित आदि उल्लेखनीय हैं।

कश्मीरी काव्य में वैष्णव-भक्ति का निरूपण उन्नीसवीं शताब्दी के आस-पास से देखने को मिलता है। कश्मीर में राम भक्ति का विकास एक सशक्त संप्रदाय के रूप में नहीं हो पाया, इसका प्रमुख कारण है कि कश्मीर मंडल शताब्दियों तक शैव मत का प्रधान केंद्र रहा। यहाँ के भक्त कवि एवं धर्म पारायण प्रबुद्धजन इसी मत के सैद्धांतिक चिंतन-मनन तक सीमित रहे। भौगोलिक सीमाओं के कारण भी यह प्रदेश मध्य भारत के वैष्णव भक्ति आंदोलन से सीधे जुड़ न सका। कालांतर में वैष्णव भक्ति की सशक्त स्रोतस्विनी जब समूचे देश में प्रवाहित होने लगी तब कश्मीर मंडल भी इससे अछूता न रह सका। वास्तव में, कश्मीर में वैष्णव-भक्ति के प्रचार-प्रसार का श्रेय उन घुमक्कड़ साधुओं, संतों एवं वैष्णव भक्तजनों को जाता है जो उन्नीसवीं शताब्दी में मध्य भारत से इस प्रदेश में आए और राम-कृष्ण भक्ति का सूत्रपात किया। यहाँ पर यह रेखांकित करना अनुचित न होगा कि कश्मीर में शैव-सम्प्रदाय के समानांतर सगुण भक्ति की क्षीण धारा तो प्रवाहित होती रही किंतु एक वेगवती धरा का रूप ग्रहण

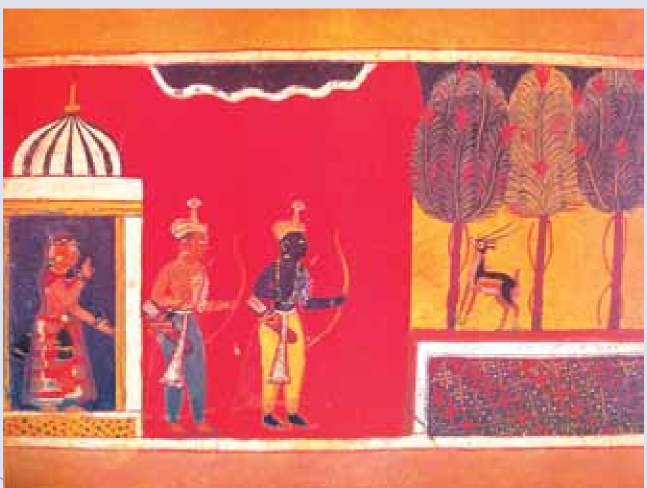

श्री राम और लक्ष्मण तथा स्वर्ण मृग रूपी मारीच (राष्ट्रीय संग्रहालय)

करने में वह असमर्थ रही। इधर, जब शैव सम्प्रदाय के अनुयायी विदेशी सांस्कृतिक आक्रमण से आक्रांत हो उठे तो निराश-नि:सहाय होकर वे विष्णु के अवतारी रूप में सहारा ढूंढने लगे। अंतर केवल इतना रहा कि जिस सगुण भक्ति, विशेषकर राम भक्ति आंदोलन ने, मध्य भारत के कवि को सोलहवीं शती में प्रभावित और प्रेरित किया, उसी आंदोलन ने, देर से ही सही, कश्मीर में उन्नीसवीं शताब्दी में प्रवेश किया और रामकथा विषयक सुंदर काव्य रचनाओं की सृष्टि हुई जिनमें प्रकाश राम कृत रामावतार चरित कश्मीरी काव्य परंपरा में अपनी सुंदर वर्णन-शैली, भक्ति-विह्वलता, कथा-संयोजन तथा काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है।

"वास्तव में, कश्मीर में वैष्णव-भक्ति के प्रचार- प्रसार का श्रेय उन घुमक्कड़ साधुओं, संतों एवं वैष्णव भक्तजनों को जाता है जो उन्नीसवीं शताब्दी में मध्य भारत से इस प्रदेश में आए और राम-कृष्ण भक्ति का सूत्रपात किया।"

रामावतार-चरित भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरानुसार महाकाव्योचित लक्षणों से युक्त है। काव्यकृति के प्रारम्भ में कवि ने ईश-वंदना इस प्रकार की है:-

नमो नमो गजेन्द्राय एकदंतधराय च
नमो ईश्वर पुत्राय श्रीगणेशाय नमो नम:,
गोडन्य सपनुन शरण श्री राज गणीशस
करान युस छुँ रख्या यथ मनुष्य लूकस,
दोयिम कर सतगोरस पननिस नमस्कार
दियि सुय गोर पनुन येमि बवसरि तार। (पृ. 27)

(सर्वप्रथम गणेशजी की शरण में जाएं, जो इस मनुष्य-लोक की रक्षा करते हैं। तत्पश्चात् सत्गुरू को नमस्कार करें जो इस भवसागर से पार लगाने वाले हैं।)

तुलसी की तरह ही प्रकाशराम की भक्ति दास्य-भाव की है। इसी से पूरी रामायण में वे कवि कम और भक्त अधिक दिखते हैं। रामावतार चरित में सम्मिलित स्तुतियों, भक्ति गीतों, प्रार्थनाओं आदि से यह बात स्पष्ट हो जाती है। ध्यान से देखा जाए तो प्रकाशराम ने संपूर्ण राम कथा को एक आध्यात्मिक-रूपक के रूप में परिकल्पित किया है जिसके अनुसार प्राय: सभी मुख्य पात्र

और कथासूत्र प्रतीकात्मक आयाम ग्रहण करते हैं। सत् और असत् का शाश्वत द्वन्द्व इस रूपक के केंद्र में है। 'रामायनुक मतलब' (रामायण का मतलब) प्रसंग में कवि की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:-

गोरव गंडमच् छिवथ, बोज़ कन दार,
छु क्या रोजु़न, छु बोजु़न रामावतार।
ति बोज़नअ सत्य बोंदस आनंद आसी,
यि कथ रठ याद, ईशर व्याद कासी।
ति ज़ानख पानु दयगत क्या चे्ह हावी,
कत्युक ओसुख चे कोत-कोत वातनावी। (पृ. 33)

(गुरुओं ने एक सत्पथ तैयार किया है, जरा कान लगाकर इसे सुन। यहाँ कुछ भी नहीं रहेगा, बस रहेगी रामवतार की कथा। इसे सुनकर हृदय आनंदित हो जाएगा, यह बात तू याद रख। इससे सारी व्याधियाँ दूर हो जाएंगी और तू स्वयं जान जाएगा कि प्रभु कृपा से तू कहाँ से कहाँ पहुँच जाएगा. . . . . . .।)

राम दरबार (राष्ट्रीय संग्रहालय)

एक अन्य स्थान पर कवि कहता है-

सोयछ सीता सतुक सोथ रामअ लख्यमन
ह्यमथ हलूमत असत रावुन दोरज़न। (पृ. 31)

(सुइच्छा सीता है, सत्य का सेतु राम व लक्ष्मण हैं। हिम्मत हनुमान तथा असत्य रूपी दुर्जन रावण है)

प्रकाशराम के राम लोक-रक्षक, भू-उद्धारक और पाप-निवारक हैं। वे दशरथ-पुत्र होते हुए भी विष्णु के अवतार हैं। पृथ्वी पर पाप का अंत करने के लिए ही उन्होंने अवतार धारण किया है:-

रावण के हेतू अवतारी बनकर आए
भूमि का भार हरने को आए (पृ. 120)

रामावतार चरित की कथा शिव-पार्वती संवाद से प्रारंभ होती है। पूरी कथा आठ कांडों-बाल कांड, आयोध्या कांड, अरण्य कांड, किष्किंधा कांड, सुंदर कांड, युद्ध कांड, उत्तर कांड तथा लव-कुश कांड में विभाजित है। इन कांडों के अंतर्गत मुख्य कथा-बिंदुओं को मसनवी-शैली के अनुरूप विभिन्न उप-शीर्षकों में बाँटा गया है। इन उप-शीर्षकों की कुल संख्या 56 है। कुछ उप-शीर्षक देखिए - विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा, भरत को खड़ाऊँ देना, शूर्पनखा को सज़ा देना, जटायु से युद्ध और सीता का कैद होना, लंका की तरफ फौजकशी, कुंभकर्ण के साथ जंग, मक्केश्वर का किस्सा, सीता का जलावतरण आदि।

रामावतार चरित में वर्णित अधिकांश प्रसंग अत्यंत मार्मिक एवं हृदयग्राही बन पड़े हैं जिससे कवि की विलक्षण काव्य प्रतिभा का परिचय मिल जाता है। अयोध्यापति दशरथ की संतान-कामना, कामना पूर्ति के लिए व्रतादि रखना, स्वप्न में भगवान विष्णु द्वारा वरदान देना आदि प्रसंग इस कश्मीरी रामायण में भावपूर्ण ढंग से इस प्रकार वर्णित हुए हैं-

'वोथन सुलि प्रथ प्रबातन नित्य करान श्रान
रछन जोगेन, गोसान्यन सत्य थवान ओस ज़ान,
स्यठा रातस-दोहस लीला करान ओस
शरण सपनुन नारायण पानय टोठ्योस।' (पृ. 37)

(राजा दशरथ नित्य प्रभात-वेला में जागकर स्नानादि करते तथा साधु-संतों और जोगियों के पास आशीर्वाद लेने

जाते। पुत्र सुख के अभाव में उनका मन सदैव चंचल रहता। एक रात स्वप्न में विष्णु ने उन्हें स्वयं दर्शन दिए और कहा कि मैं शीघ्र तुम्हारे घर में जन्म ले रहा हूँ. . . .।)

बचनबद्धता के प्रश्न को लेकर दशरथ और कैकेयी के बीच जो परिसंवाद होता है, उसमें एक पितृ हृदय की शोकाकुल और वात्सल्ययुक्त भावाभिव्यक्तियों को मूर्तता प्राप्त हुई है–

'युथुय बूज़िथ राज़ु बुथकिन्य पथर प्यव
त्युथुय पुथ साहिब ज़ोनुख सपुन शव,
अमा करुम ख्यमा सोज़न नु राम वनवास
मरअ तस रौस वन्य करतम तम्युक पास
यि केंछा छुम ति सोरूय दिम ब तस
मै छुम अख रामजुव, छुम त्युतुय बस।' (पृ. 77)

(कैकई का अंतिम कथन सुनते ही राजा लड़खड़ाते

श्रीराम द्वारा रावण का वध (राष्ट्रीय संग्रहालय)

हुए अचेतावस्था में मुँह के बल ज़मीन पर गिर पड़े। दयार्द्र स्वर में उन्होंने कैकई से विनती की कि मुझ पर दया कर, राम को बनवास न दिला। मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकूंगा। मैं वचन देता हूँ कि मेरे पास जो कुछ भी है वह भरत को दे दूँगा। मेरा तो बस एक राम ही सब कुछ है, बस एक राम जी!)

वन-गमन प्रसंग के अंतर्गत माता कौशल्या की विरह-व्यथा को जिस तन्मयता के साथ कवि ने वर्णित किया है, उससे एक मातृ-हृदय की मर्मस्पर्शी संवेदनाओं का परिचय मिलता है–

'कौशल्यायि हुंदि गोबरो, करयो गूर गूरो।
परयो राम रामो, कर यो गूर गूरा. . .।
कौतू गोहम च़ त्राोविथ, कसू ह्यक हाल ब बोविथ
अनी कुस मननोविथ, करयो गूर गूरा...।' (पृ. 86)

(रे कौशल्या के नन्दन!, आ, तुझे पालने में झुलाऊँ
राम-राम पुकारूँ, आ, तुझे हिंडोले में झुलाऊँ।
छोड़ मुझे अकेला कहाँ गया रे तू?,
अब यह हाल में अपना किसे सुनाऊँ?
मनाकर तुझे मैं कैसे वापस बुलाऊँ?,
आ, तुझे पालने में झुलाऊँ. . .।)

जटायु-रावण-युद्ध वर्णन में कवि की सजीव वर्णन-शैली दृष्टव्य है–

ख़बर बूज़िथ गव जटायन ख़बरदार,
कफ़स फुटरुन त लारान गव ब यक़बार,
पुनुम चन्द्रस येलि बछुन ह्यथ चलान कीत,
दौपुन तस ओय मरुत पापुक गोय हीत,
परकि दक सत्य छुस आकाशि त्रावान,
ज़मीनस प्यठ अडजि छुस ज़ोरअ फुटरावान। (पृ. 145)

(खबर सुन सीता-हरण की हुआ जटायु ख़बरदार,
पूनम-चन्द्र को केतु द्वारा ग्रसित जो देखा
तो छेड़ दिया पापी से युद्ध ज़ोरदार।
क्यों पाप करके मृत्यु को बुला रहा है रे मूर्ख?,
आज होगा अंत तेरा मिटेगा तू रे धूर्त!
आकाश में उछाला, भू पर पटका,

पंख के धक्को से उसने कर दिया रावण का बुरा हाल,
हड्डियों का भुरकुस निकाल, कर दिया उसका हाल बेहाल. . .।)

यद्यपि रामावतार चरित की मुख्य कथा का आधार वाल्मीकिकृत रामायण है, तथापि कथा सूत्र को कवि ने अपनी प्रतिभा और दृष्टि के अनुरूप ढालने का प्रयास किया है। कई स्थानों पर काव्यकार ने कथा-संयोजन में किन्हीं नूतन (विलक्षण अथवा मौलिक) मान्यताओं की उद्‍घोषणा की है। सीता जन्म के संबंध में कवि की मान्यता है कि सीता, वास्तव में रावण-मंदोदरी की पुत्री थी। मंदोदरी एक अप्सरा थी जिसकी शादी रावण से हुई थी। उनके एक पुत्री हुई, जिसे ज्योतिषियों ने रावण कुल के लिए घातक बताया। फलस्वरूप मंदोदरी उसके जन्म लेते ही, अपने पति रावण को बताए बिना, उसे एक संदूक में बंद करके नदी में फिंकवा देती है। बाद में राजा जनक यज्ञ की तैयारी के दौरान नदी किनारे उसे पाकर कृतकृत्य हो उठते हैं। तभी लंका में अपहृत सीता को देख मंदोदरी वात्सल्याधिक्य से विभोर हो उठती है। पंक्तियाँ देखिए-

तुजिन तमि कौछि क्यथ ह्यथ ललनोवन,
गेमच् कौलि यैलि लेबन लौलि क्यथ सोवुन
बुछिव तस माजि मा माज़ुक मुशुक आव,
लबन यैलि छस बबन दौद ठींचि तस द्राव। (पृ. 145)

(तब मंदोदरी ने उसे गोद में उठाकर झुलाया तथा पानी में फेंकी उस सीता को पुन: पाकर अपने अंक में सुलाया। अहा, अपने रक्त-माँस की गंध पाकर उस माँ के स्तनों से दूध की धारा द्रुत गति से फूट पड़ी. . . .।)

रामावतार चरित में आई दूसरी कथा विलक्षणता राम द्वारा सीता के परित्याग की है। सीता को वनवास दिलाने में रजक घटना को मुख्य कारण न मानकर कवि ने सीता की छोटी ननद को दोषी ठहराया है जो पति-पत्नी के पावन-प्रेम में फूट डालती है। एक दिन वह भाभी ‍‌ऽसीता जीऽ से पूछती है कि रावण का आकार कैसा था, तनिक उसका हुलिया तो बताना। सीता जी सहज भाव से कागज़ पर रावण का एक रेखाचित्र बना देती है जिसे ननद अपने भाई को दिखाकर पति-पत्नी के पावन-प्रेम में फूट डालती है:-

सीता हरण (राष्ट्रीय संग्रहालय)

‘दोपुन तस कुन यि वुछ बायो यि क्या छुय,
दोहय सीता यथ कुन वुछिथ तुलान हुय,
मे नीमस चूरि पतअ आसि पान मारान,
वदन वाराह तअ नेतरव खून हारान।’ (पृ. 399)

(रावण का चित्र दिखाकर- देखो भैया, यह क्या है! सीता इसे देख-देख रोज़ विलाप करती है। जबसे मैंने यह चित्र चुरा लिया है, तबसे उसकी आँखों से अश्रुधारा बहे जा रही है। यदि वह यह जान जाए कि ननद ने उसका यह चित्र चुरा लिया है तो मुझे जिंदा नहीं छोड़ेगी . . . .।)

रामावतार चरित के युद्ध कांड प्रकरण में उपलब्ध एक अत्यंत अद्‍भुत और विरल प्रसंग मक्केश्वर-लिंग से संबंधित है जो प्राय: अन्य रामायणों में नहीं मिलता है। यह प्रसंग जितना दिलचस्प है, उतना ही गुदगुदाने वाला भी है। रावण की याचना पर शिव उसे युद्ध में विजयी होने के लिए एक लिंग (मक्केश्वर) दे देते हैं और कहते हैं कि जा, यह तेरी रक्षा करेगा, लेकिन इस लिंग को ले जाते समय मार्ग में कहीं भी इसे धरती पर न रखना। लिंग को अपने हाथों में आदरपूर्वक थामकर रावण आकाश मार्ग से लंका की ओर प्रयाण करता है। रास्ते में उन्हें लघु-शंका की आवश्यकता होती है। वे आकाश से नीचे उतरते हैं तथा इस असमंजस में पड़ते हैं कि लिंग को वे कहाँ रखें? तभी ब्राह्मण-वेश में नारद मुनि वहाँ प्रकट होते हैं, जो रावण की दुविधा भाँप जाते हैं। रावण लिंग उनके हाथों में यह कहकर संभला जाते हैं कि वे अभी निवृत्त होकर आ रहे हैं। रावण लघु-शंका से निवृत्त हो ही नहीं पाते, धारा रुकने का नाम नहीं लेती। संभवत: यह प्रभु की लीला थी। काफी देर तक प्रतीक्षा करने

श्रीराम और उनके भाईयों का विवाह (राष्ट्रीय संग्रहालय)

के उपरांत नारद जी लिंग को धरती पर रखकर चले जाते हैं। तब रावण के खूब प्रयत्न करने पर भी लिंग उस स्थान से हिलता नहीं है और इस प्रकार शिव द्वारा प्रदत्त लिंग की शक्ति का उपयोग करने से रावण वंचित हो जाता है।

रामावतार चरित में उल्लिखित एक दिलचस्प कथा-प्रसंग लंका-निर्माण के संबंध में है। पार्वती जी ने एक दिन अपने निवास हेतु भवन निर्माण की इच्छा शिव जी के सम्मुख व्यक्त की। विश्वकर्मा द्वारा शिव जी की आज्ञा पर एक सुंदर भवन बनाया गया। भवन के लिए स्थान चयन के बारे में रामावतार चरित में एक रोचक प्रसंग मिलता है। गरुड़ एक दिन क्षुधा-पीड़ित होकर कश्यप के पास गए और कुछ खाने के लिए माँगा। कश्यप ने कहा-जा, उस मदमस्त हाथी और ग्राह को खा डाल, जो तीन सौ कोस ऊँचे और उससे भी दोगुने लम्बे हैं। वे दोनों इस समय युद्ध कर रहे हैं। गरुड़ वायु वेग से उड़ा और उन पर टूट पड़ा तथा अपने दोनों पंजों में पकड़कर उन्हें आकाश-मार्ग की ओर ले गया। भूख मिटाने के लिए वह एक विशालकाय वृक्ष पर बैठ गया। भार से इस वृक्ष की एक डाल टूटकर जब गिरने को हुई तो गरुड़ ने उसे अपनी चोंच में उठाकर बीच समुद्र में फेंक दिया, यह सोचकर कि यदि डाल पृथ्वी पर गिर जाएगी तो पृथ्वी धंसकर पाताल में चली जाएगी। इस प्रकार जिस जगह पर यह डाल (कश्मीरी लंग) समुद्र में गिरी, वह जगह कालांतर में -'लंका' कहलाई। विश्वकर्मा ने अपने अद्‌भुत कौशल से पूरे त्रिभुवन में इसे अँगूठी में नग के समान बना दिया। गृह-प्रवेश के समय कई अतिथि एकत्र हुए। अपने पितामह पुलस्त्य के साथ रावण भी आए और लंका के वैभव ने उन्हें मोहित किया। गृह-प्रवेश की पूजा के उपरांत जब शिव ने दक्षिणास्वरूप सबसे कुछ माँगने का अनुरोध किया तो रावण ने अवसर जानकर शिवजी से लंका ही माँग ली :

'दोपुस तअम्य तावणन लंका मे मंजमय,
गछ्यम दरमस मे दिन्य, बोड दातअ छुख दय,
दिचन लवअ सारिसुय कअरनस हवालह,
तनय प्यठअ पानअ फेरान बालअ बालह।' (पृ. 196)

(तब रावण ने तुरंत कहा-मैं लंका माँगता हूँ, यह मुझे धर्म के नाम पर मिल जानी चाहिए, क्योंकि आप ईश्वर-रूप में सबसे बड़े दाता हैं। तब शिव ने चारों ओर पानी छिड़का और लंका को उसके हवाले कर दिया और तभी से शिव स्वयं पर्वत-पर्वत घूमने लगे।)

जटायु-प्रसंग भी रामावतार चरित में अपनी मौलिक उद्‌भावना के साथ वर्णित हुआ है। जटायु के पंख-प्रहार जब रावण के लिए असहनीय हो उठते हैं तो वह इससे छुटकारा पाने की युक्ति पर विचार करता है। वह जटायु-वध की युक्ति बताने के लिए सीता को विवश कर देता है। विवश होकर सीता को उसे जटायु-वध का उपाय बताना पड़ता है :

'वोनुन सीतायि वुन्य येत्य बअ मारथ,
नतअ हावुम अमिस निशि मोकल नअच वथ,
अनिन सख़्ती तमसि, सीतायि वोन हाल,
अमिस जानावारस किथ पाठ्य छुस काल,
दोपुस तमि रथ मथिथ दिस पल च़ दारिथ,
यि छनि न्यंगलिथ तअ ज़ानि नअ पत लारिथ।'
(पृ. 146-147)

(रावण ने सीता से कहा-मैं तुझे अभी यहीं पर मार डालूँगा, अन्यथा इससे मुक्त होने का कोई मार्ग बता। सीता पर रावण ने बहुत सख़्ती की जिससे सीता ने वह सारा हाल बताया जिससे उस पक्षी का काल आ सकता था। वह बोली-रक्त से सने हुए बड़े-बड़े पत्थरों को इसके ऊपर फेंक दो। उन्हें यह निगल जाएगा और इस तरह (भार स्वरूप) तुम्हारे पीछे नहीं उड़ेगा। जब तक वह रामचन्द्र जी के दर्शन कर उन्हें मेरी खैर-खबर नहीं सुनाएगा तब तक मरेगा नहीं।)

रामावतार चरित में कुछ ऐसे कथा-प्रसंग भी हैं जो कुछ भिन्न रूप में संयोजित किए गए हैं। उदाहरण के तौर पर

सीता की अग्नि परीक्षा (राष्ट्रीय संग्रहालय)

रावण-दरबार में अंगद के स्थान पर हनुमान के पैर को असुर पूरा ज़ोर लगाने पर भी उठा नहीं पाते। एक अन्य स्थान पर रावण युद्ध नीति का प्रयोग कर सुग्रीव को अलग से एक पत्र लिखता है और अपने पक्ष में करना चाहता है। वह यह तर्क देता है कि क्या मालूम किसी दिन उसकी गति भी उसके भाई बालि जैसी हो जाए। वह भाई के वध का प्रतिशोध लेने के लिए सुग्रीव को उकसाता है और लंका आने की दावत देता है, जिसे सुग्रीव ठुकरा देते हैं। इसी प्रकार महिरावण (अहिरावण) का राम और लक्ष्मण को उठाकर पाताल-लोक ले जाना और बाद में हनुमान द्वारा उसे युद्ध में परास्त कर दोनों की रक्षा करना-प्रसंग भी रामावतार चरित का एक रोचक प्रकरण है। रामावतार चरित के लवकुश-कांड में भी कुछ ऐसे कथा-प्रसंग हैं, जिनमें कवि प्रकाशराम की कतिपय मौलिक उद्‌भावनाओं का परिचय मिलता है। लव-कुश द्वारा युद्ध में मारे गए राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के मुकुटों को देखकर सीता का विलाप करना, सीता जी के रुदन से द्रवित होकर वशिष्ठ जी द्वारा अमृत-वर्षा कराना और सेना सहित राम आदि का पुनर्जीवित हो उठना, वशिष्ठ के आग्रह पर सीता जी का अयोध्या जाना, राम द्वारा सीता की पुनः अग्नि-परीक्षा की माँग करने पर उसका भूमि-प्रवेश करना आदि प्रसंग ऐसे ही हैं।

कश्मीरी विद्वान डॉ. शशि शेखर तोषखानी के अनुसार रामावतार चरित की सबसे बड़ी विशेषता है स्थानीय परिवेश की प्रधानता। अपने युग के सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक परिवेश का कृति पर इतना गहरा प्रभाव है कि स्थानीय तत्वों के समावेश से उसका पूरा कश्मीरीकरण हो गया है। ये तत्व इतनी प्रचुर मात्रा में कृति में लक्षित होते हैं कि अनेक पात्रों के नाम भी कश्मीरी उच्चारण के अनुरूप ही बना दिए गए हैं। जैसे जटायु यहाँ पर 'जटायन', कैकेयी 'कीकी', इंद्रजीत 'इंद्रजेठ' है और संपत्ति 'सम्पाठ' आदि हैं। रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेश-भूषा आदि में स्थानीय परिवेश इतना अधिक बिंबित है कि 19वीं शती के कश्मीर का जन-जीवन साकार हो उठता है। राम के वनगमन पर विलाप करते हुए दशरथ कश्मीर के परिचित सौंदर्य-स्थलों और तीर्थों में राम को ढूंढते हुए व्याकुल दिखाए गए हैं। लंका के अशोक-वन में कवि ने गिन-गिनकर उन तमाम फूलों वर्णन किया है जो कश्मीर घाटी में अपनी रंग-छवि बिखेरते हैं। राम का विवाह भी कश्मीरी हिंदुओं में प्रचलित द्वार-पूजा, पुष्प-पूजा आदि रीतियों और रस्मों के अनुसार ही होता है।

'लव-कुश चरित' में सीता के पृथ्वी-प्रवेश प्रसंग के अंतर्गत कश्मीरी रामायणकार प्रकाशराम ने 'शंकरपुर' गाँव जो कवि का मूल निवास-स्थान है और कुर्यगाँव-काज़ीगुंड से लगभग 5 कि. मी. की दूरी पर स्थित है, में सीता जी का पृथ्वी-प्रवेश दिखाया है। किंवदंती है कि यहाँ के रामकुण्ड-चश्मे के पास आज भी जब यह कहा जाता है-'सीता, देख रामजी आए हैं, तेरे रामजी आए हैं' तो चश्मे के पानी में से बुलबले उठते हैं। हो सकता है यह भावातिरेक-जनित एक लोक-विश्वास हो लेकिन कश्मीरी कवि प्रकाशराम ने इस लोक-विश्वास को रामकथा के साथ आत्मीयतापूर्वक जोड़कर अपनी जननी जन्मभूमि को देवभूमि का गौरव प्रदान किया है।

कुल मिलाकर रामावतार चरित कश्मीरी भाषा-साहित्य में उपलब्ध रामकथा काव्य परंपरा का एक बहुमूल्य काव्य-ग्रंथ है जिसमें कवि ने रामकथा को भाव-विभोर होकर गाया है। कवि की वर्णन-शैली एवं कल्पना शक्ति इतनी प्रभावशाली एवं स्थानीय रंगत से सराबोर है कि ऐसा लगता है मानो रामावतार चरित की समस्त घटनाएं अयोध्या, जनकपुरी, लंका आदि में न घटकर कश्मीर-मंडल में ही घट रही हैं। रामावतार चरित की सबसे बड़ी विशेषता यही है और यही उसे विशिष्ट बनाती है। कश्मीरियत की अनूठी रंगत में सराबोर यह काव्यकृति संपूर्ण भारतीय रामकाव्य-परंपरा में अपना विशेष स्थान रखती है।

* 2/537 अरावली विहार,
अलवर, राजस्थान-301001
Email: skraina123@gmail.com

पृथ्वीनाथ मधुप *

राम संस्कृति और कश्मीर

लघु सागर समान 'सतीसर' के पानी को अपनी तपस्या के बूते चट्टानों से बहाकर स्वर्ग से होड़ करने वाली घाटी की भूमि को निकालने वाले एवं निवास योग्य बनाने वाले महर्षि कश्यप हैं। इन्हीं महर्षि के नाम पर इस अनुपम घाटी का नाम 'कश्मीर' पड़ा। महर्षि ने जब इस घाटी के अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य तथा अत्यंत शांत वातावरण को देखा तो उन्हें लगा कि यह स्थान तपस्वियों की तपस्या के लिए एक आदर्श स्थल है, अत: उन्होंने मैदानी क्षेत्रों के ऋषियों को यहाँ तपस्या के लिए बुलाया। ऋषि यहाँ बसे और तपस्या में लीन हो गए। कश्मीरी पण्डितों को इन्हीं ऋषियों की संतान माना गया है। इनके आदि प्रवर्तक ऋषियों के नाम पर ही इनके 133 गोत्र बने हैं। यही हिंदू, जो आर्यजाति

श्री राम दरबार

की सारस्वत ब्राह्मण शाखा से संबंध रखते हैं, यहाँ के मूल निवासी हैं, जो जन्मना आध्यात्मिक विचारों के हैं। यद्यपि यहाँ शैवमत का बोलबाला रहा, फिर भी विष्णु एवं इनके अवतारों की पूजा को नकारा नहीं गया। जहाँ शैवाचार्यों ने यहाँ शैव या त्रिक दर्शन के अनेक ग्रंथों की रचना की वहीं अनेक वैष्णव ग्रंथों का प्रणयन भी हुआ। ग्यारहवीं शताब्दी के आचार्य क्षेमेन्द्र कृत 'रामायण मंजरी' इसका एक उदाहरण है।

यहाँ राम, कृष्ण, दुर्गा तथा इसके अनेक रूपों की स्तुतियाँ रची गईं तथा अनेक रामायणों की रचना हुई। कश्मीर में कभी भी एक अवतार या देवी देवता को कम और दूसरे को ऊंचा नहीं आंका गया। भगवान के हर रूप की यहाँ समान दृष्टि से पूजा होती रही, जो यहाँ की एक विशेषता है। इस तथ्य को पुष्ट करने के लिए एक कश्मीरी संत कवि पं. नीलकंठ शर्मा की कुछ पंक्तियाँ हैं :-

ही नीलकंठो! 'नीलकंठस' राम भक्ती दिस अनुग्रेह
करुंस वोन्य पूर मते सूरमते लो।

हे नीलकंठ! नीलकंठ कवि को राम भक्ति प्रदान कीजिए। हे भस्माधर! अब इस कवि पर पूर्ण अनुग्रह कीजिए।

जन-मन पर जिस बात का गहरा प्रभाव पड़ा हो वह प्रभाव जनमानस के अनेक कृत्यों एवं अभिव्यक्तियों द्वारा सहसा अभिव्यक्ति पाता है। यह राम तथा राम कथा के गहरे प्रभाव का ही असर है कि कश्मीरी जन अपनी संतानों एवं रहने के स्थानों के नाम राम तथा राम कथा से संबंधित पात्रों से प्रभावित होकर रखने लगे। पुरुषों के नाम : राम, रामजुव, रामचंदर, रामनाथ, जानकीनाथ, रघुनाथ, राघव, गांशिराम, प्रकाशराम, स्वनराम, अनन्दराम, लक्ष्मणजुव, इत्यादि। महिलाओं के नाम : कौशल्या, कोशिल, जानकी, सुमित्रा, रमा, उर्मिला, जनक इत्यादि। स्थानों के नाम: 'ऑलपॉथर': यह नाम वास्तव में 'अहल्या-प्रस्तर' का

बिगडा रूप है। ऋषि गौतम की पत्नी अहिल्या अपने पति के शाप के कारण 'गौरी मार्ग' नामक स्थान, जो देवी गौरी का वास माना जाता था, में प्रस्तर (पत्थर) बनकर अपने उद्धार के लिए श्रीराम चन्द्र जी की बाट जोह रही थी। सुल्तान यूसुफशाह चक के शासन काल में 'गौरी मार्ग' का नाम बदल कर 'गुलमर्ग' यानी फूलों का मैदान रख दिया गया। इसी प्रकार रामरादन, बरथबाल, रामबाग, रामचन्द्रुन स्वोन तथा रोपलॉन्क ('लॉन्क' लंका का कश्मीरीकृत रूप है) उपत्यका पर्वत मुहल्लों तथा सुप्रसिद्ध टापुओं के नाम हैं।

यह राम संस्कृति का ही प्रभाव है कि कश्मीरी हिंदुओं द्वारा अनेक स्थलों पर राम मंदिरों की स्थापना की गई। चौदहवीं शताब्दी में सुल्तानों तथा कट्टरपंथियों की बेरहम मार से जो राम मंदिर बचे हैं, वे हैं:-

रघुनाथ मंदिर : यह मंदिर श्रीनगर शहर के हब्बाकदल तथा फतेहकदल के मध्यवर्ती क्षेत्र में वितस्ता नदी के तट पर स्थित है। इस मंदिर के कारण ही इस क्षेत्र को रघुनाथ मंदिर मुहल्ला कहा जाता है।

राम मंदिर : श्रीनगर के सत्थू बरबर शाह तथा शारिका भवन इलाके के मध्य यह राम मंदिर स्थित है। इस मंदिर को श्रद्धावश जनता 'रामचन्द्रुन' के नाम से अभिहित करती है। इसके आस-पास की बस्ती को भी रामचन्द्रुन ही कहा जाता है।

"यह राम तथा राम कथा के गहरे प्रभाव का ही असर है कि कश्मीरी जन अपनी संतानों एवं रहने के स्थानों के नाम राम तथा राम कथा से संबंधित पात्रों से प्रभावित होकर रखने लगे।"

राम मंदिर, श्रीनगर-(साभार: वीरेन्द्र बांगरू)

रामजी मंदिर : पौराणिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल हारी पर्वत के दामन में निर्मित एक राम-मंदिर है। यह हारी पर्वत के महालक्ष्मी मंदिर की सीढ़ियों से उतरते ही सड़क के किनारे बना है।

सफाकदल का राम मंदिर: श्रीनगर के सफाकदल इलाके में एक राम मंदिर है। कहा जाता है कि इस मंदिर का निर्माण पं. श्यामलाल जी धर ने करवाया था।

ऊडी का राम मंदिर : कश्मीर के ऊडी क्षेत्र में भी एक राम मंदिर है, जिसे इस क्षेत्र के राम भक्तों के सम्मिलित प्रयास से बनवाया गया था।

बाबा धर्मदास का राम मंदिर : यह मंदिर डलगेट के निकट बाबा धर्मदास क्षेत्र में है। इस मंदिर में महावीर की मूर्ति भी प्रतिस्थापित है। इस मंदिर का प्रबंधन बाबा धर्मदास आश्रम के हाथों में था।

पंचमुखी हनुमान मंदिर: यह मंदिर वितस्ता नदी के तट पर अमीराकदल के हरी सिंह हाय स्ट्रीट इलाके में है। कश्मीर के सुप्रसिद्ध मंदिरों की सूची में इसका विशेष स्थान है।

जन-भावनाओं का सच्चा प्रतिनिधित्व लोक साहित्य ही करता है। कश्मीरी लोक साहित्य की लोक गीत विधा में ऐसे उनेक उदाहरण दृष्टिगत होते हैं जिनसे सहज ही पता चलता है कि कश्मीरी जनमानस किस सीमा तक राम से प्रभावित है। यहाँ इस बात को रेखांकित करने के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना समीचीन होगा:-

(क) बाल लोक गीत : कीकली एक ऐसा नृत्य है जिसे समूचे भारत की बालाएं बड़े शौक से नाचती है।

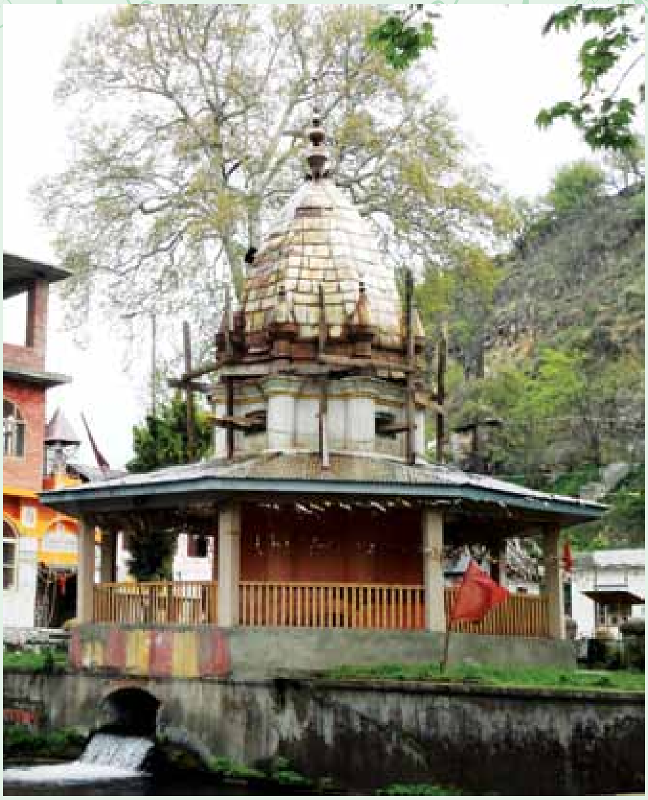

श्री रघुनाथ मंदिर, अनंतनाग-छायांकन: श्रीमती नीलमणि शर्मा

कश्मीरी बालाओं में भी कीकली (हिक्ट) अत्यंत लोकप्रिय रही है। कीकली के दौरान गाए जाने वाले एक लोक-गीत की पंक्ति है-'हिक्ट करव राम-राम/सगहै दिमव पहलगाम।' (आओ सखी! राम का नाम लेकर कीकली आरम्भ करें। ऐसा कर मनोद्यानों को सींचे!) एक लोरी के बोल हैं- 'द्वद चतोदाम्-दाम् गॉलि-गले/हो-हो कर्यो ॲड्कॅले/ दशरथ राज़नि मुन्यफले/ही-ही कर्यो अड्कले' (बडे आराम से स्तनपान कर मेरे लाल/मैं तुझे हल्के हाथ से थपकी देती रहूँगी, तुतलाकर बातें करने वाले!/अरे! राजा दशरथ सरीखे पिता की ऑखों के तारे/ हल्के हाथ से तुझे थपकी देती रहूँगी।)

"जन-भावनाओं का सच्चा प्रतिनिधित्व लोक साहित्य ही करता है। कश्मीरी लोक साहित्य की लोक गीत विधा में ऐसे उनेक उदाहरण दृष्टिगत होते हैं जिनसे सहज ही पता चलता है कि कश्मीरी जनमानस किस सीमा तक राम से प्रभावित है।"

विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले एक गीत 'छकरि बॉथ' की पंक्तियाँ हैं:-

'ब कर्यो लोल् यॅछि़ राम्-राम्
मे छुमो बालपानुक स्नेह...'

(प्रियतम! राम का पावन नाम लेकर ही प्रेम निवेदन करुंगी। मुझे बालपन से ही तुमसे प्यार है।)

यज्ञोपवीत एवं विवाह संस्कार आदि अवसरों पर गाए जाने वाले मंगल गीतों की परंपरा शताब्दियों से कश्मीरी पंडितों में चली आ रही है। यज्ञोपवीत संस्कार किए गए बालक के कान में कुल गुरू गुप्त रूप से मंत्र दीक्षा देते हैं। उस समय महिलाएं लोक गीत गाती हैं जिसकी पंक्तियाँ हैं-

'गोरन वोन्यो कन्तॅल्य शब्दा
रूदा द्रोयो रामुन ह्यूह .....'

(रे द्विज हुए ब्रह्मचारी! तुम्हारे गुरू जी ने तुम्हें कान में गुप्त मंत्र दीक्षा दी है। तुम प्रभु राम की तरह चरित्रवान तथा मर्यादाओं की सीमाओं में रहने वाले बनो।)

विवाह के अवसर पर जब दुल्हा बारातियों सहित कन्या पक्ष के घर आता है, उस समय कन्या पक्ष की महिलाएं दूल्हे का स्वागत लोक गीत की इन पंक्तियों को गाकर करती हैं :-

'महाराज़ आवतय चा़व बॅजि दोरे
म्वोखतुक छॅथर छुस लोरे पेठ
चा़ख मालि ज़नख राज़ानि दोरे
कोरे आव कुछ रामचन्दर.....'

(बडी गली में दूल्हे राजा प्रविष्ठ हुए हैं। इनके शीश पर मोतियों जड़ा छत्र सज रहा है। प्यारे दूल्हे राजा! तुम राजा जनक की गली में दाखिल हुए हो। देखो री! बिटिया का वरण करने रामचंद्र जी सरीखे वर आ गए हैं।

राम एवं राम कथा का प्रभाव केवल लोकगीतों में ही नहीं कश्मीरी कहावतों तथा मुहावरों में भी दृष्टिगोचर होता है। रामुन तीर छु न खॉल्य गॅछ़ान' (राम का तीर खाली नहीं जाता।), 'रातसबोज़नोवमख रामयन सुबहय वोनथम, राम क्या वाति सीतायि' (रात भर रामायण

सुनाई, सुबह कहते हो राम सीता का क्या लगता था।), 'येति न हलमथ बलवीर तति गयिहम च्वगर टीर' (जहाँ हनुमान जैसे बलवीर की दाल नहीं गलती वहाँ तुम अति निर्बल की क्या बिसात।), 'रामायनन लेखुन लायख' (अत्यन्त दुखद एवं लंबी गाथा।), 'न बोज़नुय छु कमन स्वन-लॉन्कन डास करान' (किसी का सद्परामर्श न मानना ही कैसी-कैसी स्वर्णमयी लंकाओं को मिट्टी में मिलाता है।)

कश्मीरी जनसाधारण में प्रचलित लोक विश्वासों पर भी राम एवं रामकथा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। लोक-विश्वास है कि कोई शत्रु यदि किसी को तंग करता है तो 'चस गँछिनस ऑतिनस, रामन यिथ कोर रावणस' को तीन बार दोहराने से दुश्मन का अवश्य कुछ अनिष्ट होता है। किसी घर के सामने कुत्तों का ऊँघना अशुभ माना जाता है। ऊँघ रहे कुत्तों को भगाने के लिए 'येति कू येतिका येति छी दिव्ता हलमत् सीता दॅर चल कूता' का उच्चारण किया जाता है।

कश्मीरी की मौलिक लिपि
शारदा की वर्णमाला

कश्मीरी की अपनी मौलिक लिपि 'शारदा' समय की मार तथा जनता के गैर-ज़िम्मेदाराना रवैये के कारण अपना अस्तित्व खो बैठी है। आजकल कश्मीरी के लिए 'नस्तालीख' लिपि का प्रयोग किया जाता है। इस लिपि में भक्ति साहित्य के काफी ग्रंथों की पांडुलिपियां उपलब्ध हैं। कुछ वर्ष पहले कई बुद्धिजीवियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप कई लिपि चिन्हों के साथ कश्मीरी 'देवनागरी' लिपि में भी लिखी जाने लगी है। इस लिपि में कश्मीरी पत्रिकाएं तथा पुस्तकें प्रकाशित भी हो रही हैं।

कश्मीरी राम भक्त कवियों में पंडित राजकाक, पंडित आनन्दजी तथा पंडित नीलकंठ जी शर्मा का ज़िक्र करना बहुत ज़रूरी है। पंडित राजकाक जी, भगवान राम को मित्र मानकर भक्ति करते थे। उनकी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं:-

'सीता-राम् टाठि मेत्रय म्यानि/लगय दान्-दान् त्वलसी'

(मेरे मित्र रामचन्द्र जी! आपकी अर्चना मैं तुलसी-दलों से कर लुँगा।)

पंडित आनन्द जी बाल-राम की भक्ति करते हुए कहते हैं-'लाल् लगयो बाल भावस/राम् नावस पॉर्य लॅगय' (हे राम लल्ला! मैं तुम्हारे बालरूप पर वारी-वारी जाऊँ)

कवि पंडित नीलकंठ जी शर्मा कश्मीरी राम भक्ति काव्य के प्रतिनिधि कवि माने जा सकते हैं। इन्होंने लगभग सौ राम भजन तथा एक राम संबंधी महाकाव्य रचा है। इनकी एक कविता की पंक्ति है-

'मन् ख्यन्-ख्यन् स्वर सीतारमन
यिमन ब्रमन सपनी हान।'

(रे मन मेरे! हर क्षण सीता राम जपता रह, तुम्हारे हर भ्रम का नाश होगा।)

आधुनिक कवि-पीढी के एक हस्ताक्षर हैं पृथ्वीनाथ कौल 'साइल'। ये यदा-कदा राम भजन भी रचते हैं। -

'र' गव सन्तूशिडल
'आ' आनन्दकुय फल
'म' मर-मर मशानय
राम राम राम रामय।

('र' संतोष सरोवर है। 'आ' आनंद से प्राप्त फल तथा 'म' मरन भूलना है, अत: राम-राम-राम सदा जपा करो।)

ऐसी अनेक फुटकर राम भक्ति रचनाओं के अतिरिक्त सात रामकथा काव्य-'राम अवतार चर्येथ', 'शंकर रामायण', 'विष्णु प्रताप रामायण', 'शर्मा रामायण', 'अमर रामायण', 'ताराचन्द रामायण' और 'आनन्द रामावतार चर्येथ' प्राप्य हैं।

पंडित प्रकाश राम कुरिगामी द्वारा रचित 'राम अवतार चर्येथ' अकेली ऐसी रचना है जिसे प्रकाशित किया गया है। इस काव्य का आधार अध्यात्म तथा वाल्मीकि रामायण बताया जाता है। इस रामायण की विशेषता लोक तत्वों का प्रचुर मात्रा

में समावेश है। यही कारण है कि अपने समय में इसे काफी लोकप्रियता मिली। इसकी प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए इसे एक लोक काव्य माना जा सकता है। इसके प्रसंगों में से सीता परित्याग सर्वाधिक मार्मिक प्रसंग माना जाता है।

पंडित शंकर कौल की रचना 'शंकर रामायण' पर भी आध्यात्म तथा वाल्मीकि रामायण का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह पाँच भागों तथा 44 अध्यायों में विभाजित है। इस रचना का महत्वपूर्ण गुण इसकी गेयता है। इस कृति में भी स्थानीय तत्वों का समावेश है।

'विष्णु प्रताप रामायण' के रचनाकार पंडित विष्णु कौल हैं। इस कृति की रचना सन् 1713 ई. में की गई। इसका मुख्य आधार वाल्मीकि रामायण को माना गया है। इसके तीस हज़ार पद्य हैं। काव्यकार ने श्रीराम चन्द्र जी से कश्मीर की यात्रा करवाई है। इस घटना को कृति की विशेषता माना जा सकता है। इसकी शब्दावली पर संस्कृत तथा फ़ारसी का प्रभाव है।

'शर्मा रामायण' के रचनाकार परम रामभक्त कवि पंडित नीलकंठ जी शर्मा हैं। इस कृति के लेखन का आरम्भ सन् 1926 ई. में रामनवमी के शुभ दिन किया गया तथा इसकी समाप्ति सन् 1933 ई. में हुई। इस महाकाव्य के कथानक का आधार अध्यात्म, वाल्मीकि तथा रामचरित मानस है। कृति अनेक मौलिक उद्भावनाओं से सज्जित है। इसके संयोग एवं वियोग वर्णन अत्यंत मार्मिक हैं। विरहिनी सीता की मनोदशा को कोमल-करुण शब्दावली में अभिव्यक्त किया गया है। इस कृति में युद्ध वर्णन अत्यंत सजीव बन पड़ा है। वर्णन में जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, उनकी ध्वनियाँ शस्त्रास्त्रों के टकराने एवं चलाने की ध्वनियों से मेल खाती हैं। तत्कालीन प्रभाव के अनुरूप ही इस पर संस्कृत तथा फ़ारसी शब्दावली का प्रभाव है। हालाँकि यह कृति पांडुलिपि की अवस्था में ही है, पर रामभक्तों एवं रसिकजनों ने इसकी अनेकों प्रतिलिपियां की हैं। इसके प्रगीत आज भी धार्मिक अवसरों और भजन संध्याओं में आदर के साथ गाए जाते हैं, जो इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है।

'ताराचन्द रामायण' कवि पंडित ताराचन्द की कृति है जिसका रचना काल सन् 1927 ई. बताया जाता है। इस रचना पर अध्यात्म रामायण, रामचरित मानस तथा पूर्ववर्ती कश्मीरी रामायणों-रामावतार चर्येथ तथा शर्मा रामायण का स्पष्ट रूप से प्रभाव दिखाई देता है। इस कृति की विशेषता चरित्रों का चित्रण प्रभावी ढंग से चित्रित किया जाना है। इस रचना में भी अनेक स्थानीय तत्वों का समावेश है।

'अमर रामायण' पंडित अमरनाथ 'अमर' की इस कृति का रचना काल सन् 1940 ई. बताया जाता है। गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण यह कृति अपने पूर्ववर्ती रामायणों से हटकर है तथा इसे एक अलग दर्जा दिया जा सकता है। शबरी प्रसंग व बाली की विधवा तारा का विवाह सुग्रीव से कराकर अछूत एवं विधवा विवाह समस्याओं के निदान की ओर इशारा किया गया है।

'आनन्द रामावतार चर्येथ' के कृतिकार पंडित आनन्दराम राज़दान हैं। इस रामायण की कथा कांडों में विभाजित नहीं है अपितु विभिन्न प्रसंगों को अलग-अलग शीर्षकों में दिया गया है। रामचरित मानस के प्रभाव से यह रचना भी अछूती नहीं है। कश्मीरी रामकाव्य परंपरा के अनुरूप इसमें भी सीता को रावण की पुत्री बताया गया है। इस कृति की एक नई उद्भावना सीता का महाकाली रूप धारणकर महारावण का वध करना है। कवि में अपूर्व वर्णन क्षमता है। इसका पता इसके युद्ध वर्णनों में मिलता है। इस पर फ़ारसी का प्रभाव कुछ अधिक दिखाई देता है। अत: कहीं-कहीं पूरे के पूरे पद्य फ़ारसी में लिखे गए हैं।

कवि लक्ष्मण जुव 'बुलबुल' की एक रचना है 'रामगीता'। इस कृति में कवि ने अपने आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति राम द्वारा अपने भाई लक्ष्मण को दिए गए आध्यात्मिक तथा नैतिक उपदेशों द्वारा की है। यह कृति प्रबंधात्मक ढाँचे पर खड़ी तो लगती है पर कथा वर्णन गौण है। प्रस्तुत संदर्भ में नाटककार पण्डित ताराचन्द 'विस्मिल' के नाटक 'रामावतार' का उल्लेख आवश्यक है। इसी सिलसिले में एक अज्ञात नाटककार के 'रामुनराज' (रामराज) का ज़िक्र भी समीचीन है। इस नाटक का मंचन समाज सुधार समिति, श्रीनगर द्वारा किया गया था।

निष्कर्षत: बिना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि कश्मीर राम संस्कृति से गहराई से प्रभावित रहा है।

* 58, शान्ता सदन, गली नं-7,
सरस्वती विहार, तालाब तिल्लो,
जम्मू-180002

डॉ. बदरीनाथ कल्ला *

कश्मीर में संस्कृत की गतिविधियाँ

कश्मीर केवल भौतिक पदार्थों के लिए ही नहीं अपितु आध्यात्मिकता के लिए भी विश्व में विख्यात है। भौतिकता तथा आध्यात्मिकता के समन्वय ने इस उपत्यका के गौरव को आज तक स्थिर रखा है। यह आध्यात्मिकता इस सस्यश्यामला तथा उर्वरा भूमि की देन है, जिसके फलस्वरूप यहाँ के सेवाचार्यो–वसुगुप्त, सोमानंद, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्ताचार्य (दसवीं शती) आदि ने समय–समय पर ऐसी अध्यात्मविद्या तथा भारतीय चिंतन को जन्म दिया जो सबके लिए अनुकरणीय ही नहीं बल्कि ग्राह्य भी है। इस आध्यात्मिक विद्या तथा दार्शनिक चिंतन का केंद्र 'शारदापीठ' अथवा 'शारदादेश' था, जो हजारों वर्षों से जिज्ञासुओं को इस ज्ञान से आप्लावित करता रहा है। यहाँ के विद्यामठ तथा विद्या केंद्र सबके लिए आकर्षण के केंद्र रहे हैं। इन केंद्रों की कीर्ति सारे एशिया द्वीप में फैली हुई थी। यही कारण है कि भारत के अतिरिक्त विदेशों से अर्थात् मध्य एशिया तथा चीन से महान विभूतियाँ आकर यहाँ के धुरंधर आचार्यो से ज्ञान गंगा का अमृत पीकर अमर हो जाती थीं। इन विदेशी महान विभूतियों में कुमारजीव तथा ह्यूनसांग के नाम उल्लेखनीय हैं। ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार चीनी यात्री ह्यूनसांग ने श्रीनगर में स्थित जामा–मस्जिद के पास 'जयंद्र विहार' में दो वर्षों तक रहकर संस्कृत तथा बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त कुषाण काल में कश्मीर से अनेक संस्कृत विद्वान तथा बौद्धाचार्य–जैसे गुणवर्मन, पुष्यत्राता, धर्मयदा तथा विमलाक्ष आदि महायान बौद्ध धर्म का प्रचार व प्रसार करने के लिए मध्य एशिया के विभिन्न प्रदेशों में चले गए। वहाँ उन्होंने अपनी विद्वता का परिचय देकर स्थानीय विद्वानों को अपनी प्रतिभा से आश्चर्यचकित कर दिया। कालांतर वे वहाँ बस गए। इस प्रकार कश्मीर प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत का प्रधान केंद्र रह चुका है। यहाँ के विद्यामठों का वर्णन महाकवि कल्हण ने अपनी रचना 'राजतरंगिणी' में इस प्रकार किया है:–

> 'विद्यावेश्मानि तुंगाति कुंकुंम सहिमंपयः।
> छ्रक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभम्।।'

"संस्कृत को कश्मीर से और कश्मीर को संस्कृत से अलग–थलग करना संभव नहीं है। इस भाषा ने यहाँ के जन–जीवन को प्रभावित की नहीं किया अपितु जनमानस पर अमिट छाप भी छोड़ी है। वस्तुतः संस्कृति के प्राचीन गौरव ने ही कश्मीर की कीर्तिपताका को विश्व में फहरा दिया है।"

यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो संस्कृत तथा कश्मीर का आपस में घनिष्ठ संबंध सदियों से रहा है। संस्कृत को कश्मीर से और कश्मीर को संस्कृत से अलग–थलग करना संभव नहीं है। इस भाषा ने यहाँ के जन–जीवन को प्रभावित की नहीं किया अपितु जनमानस पर अमिट छाप भी छोड़ी है। वस्तुतः संस्कृति के प्राचीन गौरव ने ही कश्मीर की कीर्तिपताका को विश्व में फहरा दिया है। कश्मीर में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के आयामों के उदाहरण हजारों वर्षों के बाद इस समय भी हमें विभिन्न रूपों में यत्र–तत्र दिखाई देते हैं। पर्वतों, नदियों, सरोवरों, गाँवों तथा जनपदों की संस्कृत नामावली इस तथ्य को स्वतः सिद्ध करती है। विभिन्न दौरों से गुजरती हुई संस्कृत भाषा किसी प्रकार अपना अस्तित्व खो न बैठी, यह इसकी लोकप्रियता तथा पूर्णता का ज्वलंत उदाहरण है।

महाकवि बिल्हण ने अपने महाकव्य 'विक्रमांकदेव चरितम्' में उल्लेख किया है:–

> 'सहोदरा कुंकुंम केसराणां भवन्ति नूनं कविता विलासः।
> न शारदा देशमपास्यदृष्टस्मेषां यदन्यत्र मया प्रोहः।।'

अर्थात् केसर की उपज तथा कविता का विलास मैंने शारदा देश (कश्मीर) को छोड़कर कहीं नहीं देखा। जहाँ कविता है, वहाँ केसर नहीं है। जहाँ केसर है, वहाँ कविता नहीं है। परंतु इन दोनों का समन्वय मैंने केवल कश्मीर में ही देखा।

संस्कृत साहित्य को तीन कालों यथा आदिकाल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल में वर्गीकृत किया जा सकता है। संस्कृत का आदिकाल प्रथम सदी से चौदहवीं सदी तक माना जाता है। फलतः इस युग में कश्मीर में संस्कृत के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हुई। प्रायः आठवीं सदी से बारहवीं सदी तक विविध विषयों में निष्णात कश्मीर के मूर्धन्य आचार्यो-आनन्दवर्धन, मम्मटाचार्य तथा महिमभट्ट आदि आलंकारिकों, सोमानन्द, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्त आदि दार्शनिकों, कल्हण तथा बिल्हण जैसे इतिहासकारों, सोमदेव तथा क्षेमेन्द्र आदि कथाकारों ने संस्कृत के विभिन्न विषयों पर अमर रचनाएं लिखीं। यह युग वस्तुतः कश्मीर का 'स्वर्णयुग' माना जाता है। इस युग ने मानव चिंतन को एक नई दिशा तथा एक नया दर्शन दिया जो संसार में 'प्रत्याभिज्ञ दर्शन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में लोगों की अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत या प्राकृत था जिसका उल्लेख कल्हण के समकालीन बिल्हण ने अपने महाकाव्य –'विक्रमांकदेव चरितम्' में इस प्रकार किया है:–

'यत्रस्त्रीणां किमप्यपरं जन्मभाषावदेव।
प्रत्यावासं विलसति वचः संस्कृतं प्राकृतंच।'

अर्थात् किंबहुना जहाँ स्त्रियाँ जन्म भाषा की तरह संस्कृत तथा प्राकृत भाषाएं बोलती थीं।

निस्संदेह, यह काल संस्कृत वाङ्मय के पूर्ण विकास का युग था। संस्कृत का मध्यकाल चौदहवीं शती से प्रारम्भ होता है। हिंदुओं का शासनकाल समाप्त होने के बाद प्रायः सुल्तान युग, शाहमीरी शासनकाल (1339 ई.) से चक शासनकाल (1554-1586 ई.), मुगल शासनकाल, अफगान शासनकाल तथा सिक्ख शासनकाल (1819-1846 ई.), ड़ोगरा शासनकाल (1846-1947ई.) तक माना जाता है। इन विभिन्न कालों में अर्थात् प्रायः पाँच सौ वर्षो में संस्कृत के स्थान पर फारसी भाषा ही राजभाषा के रूप में प्रचलित रही। विदेशी प्रभाव के कारण सोलहवीं सदी तक इस भाषा का प्रयोग मिश्रित भाषा के रूप में हुआ। इसका उदाहरण हमें क्षेमेंद्र रचित 'लोक-प्रकाश' में स्पष्ट रूप से मिलता है।

यह मिश्रित भाषा राज्यकार्यो तथा न्यायालयों में भी प्रचलित थी। विदेशी राज हजारों वर्षो से हमारे हृदय पर अंकित भारतीय संस्कारों को मिटाने में सक्षम न हुआ। फलतः जनता ने वसीयतनामों, शिलालेखों आदि में संस्कृत का प्रयोग किया। सबसे पहले हमें संत हजरत मखदूम साहिब (16 वीं सदी) का संस्कृत तथा फारसी दोनों भाषाओं में लिखा हुआ वसीयतनामा एक शिलालेख के रूप में मिलता है, जो इस समय जम्मू व कश्मीर संग्रहालय में सुरक्षित है। यहाँ पर यह कहना असंगत न होगा कि जैन-उल-आबदीन (बड़शाह) के राज्यकाल का एक शिलालेख संस्कृत में खौनमुह (संस्कृत-खौनमुष) गाँव के पास भुवनेश्वर नामक स्थान में उपलब्ध हुआ है। यह शिलालेख तत्कालीन लोगों के संस्कृत के प्रति अनुराग को प्रकट करता है। इसी तरह 'हारीपर्वत' की अधित्यका में बाहुउद्दीन साहिब के सामने यवनों की कब्रों पर संस्कृत में अनेक शिलालेख पाए गए हैं, जिनका उल्लेख डॉ. स्टीन ने 'राजतरंगिणी' के अंग्रेजी अनुवाद में भी किया है। ये शिलालेख संस्कृत में शारदा लिपि में लिखे गए हैं।

''यवनशासकों में से केवल सुल्तान जैन-उल-आबदीन (1423-1475 ई.) एक ऐसा उदारचित्त, दूरदर्शी तथा संस्कृत प्रेमी शासक था जिसके संस्कृत साहित्य की उन्नति के लिए किए गए महत्वपूर्ण कार्य को भुलाया नहीं जा सकता।''

यवनशासकों में से केवल सुल्तान जैन-उल-आबदीन (1423-1475 ई.) एक ऐसा उदारचित्त, दूरदर्शी तथा संस्कृत प्रेमी शासक था जिसके संस्कृत साहित्य की उन्नति के लिए किए गए महत्वपूर्ण कार्य को भुलाया नहीं जा सकता। इस सुल्तान के विशाल दृष्टिकोण के कारण पाठशालाओं में संस्कृत का पुनः पठन-पाठन आरम्भ हुआ। जोनराज श्रीवर, नोत्थसोम, योधभट्ट, अवतारभट्ट, शिर्यभट्ट, आदि अनेक संस्कृत विद्वान उसकी सभा को समलंकृत करते थे। इसी युग में कल्हण के बाद जोनराज, श्रीवर, प्राज्यभट्ट तथा शुक ने राजतरंगिणी के आधार पर विभिन्न राजतरंगिणियों की रचनाएं की। जोनराज ने द्वितीय 'राजतरंगिणी की रचना की जिसमें तेइस राजाओं का उल्लेख है। उसने तीन

संस्कृत ग्रंथों-महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीय' मंख के 'श्रीकण्ठचरित' तथा जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' पर टीकाएं लिखी हैं। जोनराज का शिष्य श्रीवर भी संस्कृत का महान कवि था। अपने गुरू के मरणोपरांत उसने तीसरी राजतरंगिणी लिखी तथा फारसी के मूर्धन्य कवि मुल्लजामि की कृति-'युसूफ जुलेखा' के आधार पर संस्कृत-काव्य 'कथाकौतुक' लिखा। इस तरह जैन-उल-आबदीन के शासनकाल में संस्कृत के विकास का परिचय मिलता है।

यहाँ के साहित्यकारों ने प्राय: संस्कृत से नि:सृत कश्मीरी भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर इसकी विभिन्न विधाओं को संस्कृत के आधार पर जन्म दिया। इनमें ललद्यद के 'वाख' (वाक्य), नुंद ऋषि के 'श्रुक्य' (श्लोक) शितिकण्ठ के पद, 'अरणिमाल' के वचन बहुत ही लोकप्रिय हैं। कुछ यवन राजाओं के संकीर्ण दृष्टिकोण से चिरकाल से बहती हुई संस्कृत रूपी गंगा का प्रवाह कुछ समय तक अवरुद्ध रहा, लेकिन यहाँ के संस्कृत भक्तों ने इस ज्ञानगंगा को शुष्क नहीं होने दिया। मुगल शासनकाल में जगद्धर भट्ट ने 'स्तुतिकुसमांजलि' की रचना की और यहाँ के तीर्थों की पवित्रता को सुरक्षित रखने तथा महत्व देने के लिए कश्मीर के तीर्थवासी ब्राह्मणों ने 'माहात्म्य' लिखे जिनमें 'हरमुकटेश्वर माहात्म्य', 'अमरेश्वर माहात्म्य' तथा 'वितस्ता माहात्म्य' आदि महत्वपूर्ण हैं। डोगरा शासनकाल में भारतीय संस्कृति के प्रतीक महाराजा गुलाब सिंह के सुपुत्र महाराजा रणबीर सिंह (1830-1885 ई.) ने संस्कृत भाषा व साहित्य के चहुंमुखी विकास के लिए 1870 ई. में जम्मू में 'रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय' तथा कश्मीर में 'राजकीय संस्कृत पाठशाला' की स्थापना की, जहाँ विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी दी जाती थी। 'श्रीरणवीर संस्कृत पुस्तकालय' की भी स्थापना हुई, जो 1902 ई. में 'जम्मू व कश्मीर अनुसंधान विभाग' में परिवर्तित हो गया। धीरे-धीरे यह विभाग बढ़ता गया। संस्कृत पांडुलिपियों का संग्रह करना भी इस विभाग के प्रमुख कार्यो में था। इस समय इस अनुसंधान विभाग के साथ संस्कृत पांडुलिपियों का भी एक अनुभाग है जहाँ संस्कृत के विभिन्न विषयों की प्राय: पाँच हजार पांडुलिपियाँ शारदा तथा देवनागरी लिपि में सुरक्षित हैं। इस विभाग की स्थापना से सैंकडों की संख्या में शैवदर्शन आदि विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन ग्रंथों के संशोधन तथा संपादन में श्री जे.सी.चटर्जी, श्री मुकुंदराम महामहोपाध्याय, श्री मधुसूदन कौल शास्त्री, प्रो. जगद्धर जाडू, श्री हरभट्ट शास्त्री, श्री दीनानाथ यक्ष शास्त्री, डा. नलिनाक्ष दत्त तथा शिवनाथ शर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

"यहाँ के साहित्यकारों ने प्राय: संस्कृत से नि:सृत कश्मीरी भाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर इसकी विभिन्न विधाओं को संस्कृत के आधार पर जन्म दिया। इनमें ललद्यद के 'वाख' (वाक्य), नुंद ऋषि के 'श्रुक्य' (श्लोक) शितिकण्ठ के पद, 'अरणिमाल' के वचन बहुत ही लोकप्रिय हैं।"

महाराजा प्रताप सिंह के शासनकाल में संस्कृत के प्रकांड पंडित श्री ईश्वर कौल ने पाणिनीय सूत्रों के आधार पर संस्कृत में 'कश्मीरी शब्दामृतम्' नामक पहला कश्मीरी व्याकरण लिखा, जिसका सर जार्ज इब्राहिम ग्रियर्सन ने संपादन किया और यह एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता से प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त ईश्वर कौल ने 'कश्मीरी संस्कृत शब्दकोश' भी लिखा था जिसका उल्लेख ग्रियर्सन ने 'कश्मीरी शब्दकोश' के प्रथम खंड की भूमिका में किया है। इसकी तीसरी कृति-'कश्मीरी दशभाषोदय' नामक संस्कृत कोश की पांडुलिपि दो खंडों में इस समय जम्मू व कश्मीर अनुसंधान विभाग में सुरक्षित है। यह कोश संस्कृत पद्यों में लिखा गया है। इसमें कश्मीरी शब्दों के पर्याय दस भाषाओं में दिए गए हैं। जैसे-अरबी, फारसी, अंग्रेजी, लामी और बलती आदि।

इस संदर्भ में महामहोपाध्याय मुकुंदराम शास्त्री का योगदान भी सराहनीय है। सर जार्ज ग्रियर्सन द्वारा संपादित कश्मीरी शब्दकोश के चार खंडों में महामहोपाध्याय मुकुंदराम ने प्राय: पचीस हजार कश्मीरी शब्दों तथा मुहावरों का अनुवाद संस्कृत में किया और कृष्ण राजानक (राजदान) के 'शिवपरिणय' के कश्मीरी पद्यों की छाया संस्कृत में लिखी। ये दोनों पुस्तकें एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता से प्रकाशित हुईं।

स्वतंत्रता के बाद संस्कृत के महत्व को सब देशवासियों ने समझ लिया था। भावात्मक एकता तथा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए देश के महान् नेताओं तथा राष्ट्रभक्तों ने संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने पर बल दिया। बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के 'वंदेमातरम्' के विजयनाद और महामना

मदनमोहन मालवीय के अनथक प्रयत्नों से समूचे देश में संस्कृत के प्रति राष्ट्रीय भावना जाग्रत हुई। भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व संस्कृत को लोग समझने लगे। इससे भारत की शिक्षा नीति में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन हुआ। इसका व्यापक प्रभाव सब राज्यों पर पड़ा। फलत: विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संस्कृत को समुचित स्थान मिला। इसमें कश्मीर भी पीछे नहीं रहा।

संस्कृत के प्रचार व प्रसार में विभिन्न संस्थाओं का योगदान उल्लेखनीय रहा है। सर्वप्रथम कश्मीर मंडल के ब्राह्मणों की एकमात्र प्रतिनिधि सभा ब्राह्मण महामंडल ने धार्मिक साहित्य का प्रकाशन करके लोगों में सांस्कृतिक चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया। ब्राह्मण मंडल के महत्वपूर्ण प्रकाशन हररात्रि निर्णय विधि, शिवरात्रि पूजन विधि, पूजा संकलन, मलमास निर्णय आदि हैं। इस संस्था से प्रति वर्ष हिंदी में पंचाग प्रकाशित होता था, जिसमें धार्मिक लेख आदि भी होते थे।

शारदापीठ रिसर्च सेंटर की स्थापना डा. राधाकृष्ण काव ने 1954 ई. में कर्णनगर में की थी। इस केंद्र से 'शारदापीठ रिसर्च सिरीज' नामक त्रैमासिक पत्रिका अंग्रेजी, संस्कृत तथा हिंदी में प्रकाशित होती थी। 1983 ई. में डॉ. काव का असमय निधन हो जाने के कारण इसकी साहित्यिक गतिविधियाँ बंद हो गईं। इस पत्रिका के संपादक मंडल में डॉ. शिवनाथ शर्फ, प्रो. जगद्धर जाडू तथा डॉ. बदरीनाथ थे।

शैवदर्शन के आचार्य श्री स्वामी लक्ष्मण जी गुप्त गंगा ईश्वर में प्रति रविवार को शैवदर्शन के गूढ़ विषयों पर प्रवचन देते थे और स्थानीय तथा विदेशी प्रौढ़ों को शैवदर्शन का ज्ञान प्रदान करते थे। स्वामी जी के शिष्यों में से मिथिला निवासी श्री जयदेव तथा जर्मनी की प्रसिद्ध विदुषी बेट्टिना बावमर उल्लेखनीय हैं।

फतेह कदल में स्थित श्रीराम शैवाश्रम अनेक वर्षो से शैव दर्शन के प्रचार एवं प्रसार में संलग्न है। यहाँ प्रति रविवार प्रौढ़ वर्ग को शैव दर्शन की प्रारंभिक पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं। गत वर्ष श्रीधर जी की मृत्यु से इस संस्था को महान् क्षति हुई है।

कर्णनगर स्थित स्वामी विद्याधर आश्रम में प्रौढ़ों को शैवदर्शन के विभिन्न विषयों से परिचित कराया जाता था। अब इस आश्रम में कई कारणों से शिथिलता आ गई है। इस समय यह आश्रम फरीदाबाद में स्थित है।

श्रीनगर के क्रालखवड् नामक मुहल्ले में 1956 ई. में स्थापित कश्मीर संस्कृत साहित्य सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य कश्मीर में संस्कृत का प्रचार व प्रसार करना था। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम इसके संस्थापक सदस्यों ने भारतीय विद्या भवन, मुम्बई द्वारा स्वीकृत परीक्षाओं का संचालन किया। नि:शुल्क संस्कृत पढ़ाने के लिए सायंकालीन पाठशाला खोली गई जिसमें श्री ओंकार नाथ शास्त्री (लंगु) तथा मोतीलाल 'प्रमोद' आदि संस्कृत पढ़ाते थे। 1988 ई. में प्राय: चार सौ विद्यार्थी भारतीय विद्या भवन की विभिन्न परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए। इसमें गैर-हिंदू छात्राएं भी संस्कृत पढ़ती थीं। इस सम्मेलन ने यहाँ के युवावर्ग को संस्कृत में लिखने, बोलने तथा रचना करने की प्रेरणा दी। वास्तव में आज की पीढ़ी जिस प्रकार संस्कृत के प्रचार तथा साहित्य सृजन के प्रति जागरूक तथा प्रयत्नशील है, उसका आदिस्त्रोत- कश्मीर संस्कृत साहित्य सम्मेलन है।

आर्य समाज के तत्वावधान में संचालित हजूरीबाग में स्थित देवकी आर्यपुत्री पाठशाला में उस समय संस्कृत विद्यार्थियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। प्राईवेट विद्यालयों में यह एक आदर्श विद्यालय माना जाता है। इस विद्यालय में पं. नेत्रपाल शास्त्री संस्कृत पढ़ाते थे।

अंतिम डोगरा शासक महाराजा हरि सिंह के समय के महालेखपाल श्री परमानंद ने अपनी सुपुत्री रूपादेवी के नाम पर श्रीरूपादेवी शारदापीठ की स्थापना 1953 ई. में फतेहकदल स्थित रघुनाथ मंदिर के परिसर में की। इसमें पहले-पहल प्राज्ञ, विशारद तथा शास्त्री तक जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार छात्राओं को शिक्षा दी जाती थी। इसके प्रथम प्राचार्य ऊधमपुर के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री दयाराम शास्त्री थे। उनके दिशानिर्देश में इस प्राच्य विद्या विभाग ने काफी उन्नति की। परिणामस्वरूप पाँच छात्राएं उस समय शास्त्री परीक्षा में उत्तीर्ण हुईं। श्री परमानंद के स्वर्गवास के बाद यह 'ओरिएंटल विभाग' सुव्यवस्थित रूप से नहीं चल सका। बाद में छ: वर्षों के बाद यह विभाग विद्यालय में परिवर्तित हुआ। इस विद्यालय की विशेषता यह है कि इसमें गैर हिंदू विद्यार्थी भी संस्कृत पढ़ रहे हैं।

इस समय विद्यार्थियों की संख्या प्राय: सौ तक है। 'शारदा पीठ' गत कई वर्षों से भारतीय विद्या भवन, मुम्बई की संस्कृत परीक्षाओं का भी संचालन करता है।

महाराजा रणवीर सिंह ने 1870 ई. में राजकीय संस्कृत पाठशाला की स्थापना श्रीनगर में की थी। इस पाठशाला में पंजाब विश्वविद्यालय तथा जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के अनुसार शास्त्री परीक्षा तक संस्कृत नि:शुल्क पढ़ाई जाती थी। छ: अध्यापक यहाँ संस्कृत पढ़ाते थे। कश्मीर में यही एक आदर्श संस्कृत पाठशाला थी जिसे परिस्थितिवश 1949 ई. में जम्मू व कश्मीर के मुख्य मंत्री श्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने इस पाठशाला को गवर्नमेंट ओरिएंटल कॉलेज में परिवर्तित कर दिया।

उस समय कश्मीर में केवल चार महाविद्यालयों में संस्कृत पढ़ाई जाती थी– विमेन कॉलेज, मौलाना आजाद रोड; विमेन कॉलेज, नवाकदल; गवर्नमेंट कॉलेज, अनन्तनाग और गवर्नमेंट कॉलेज, सोपोर। हायर-सेकंडरी स्तर के कई स्कूलों में भी यह पढ़ाई जाती थी।

कश्मीर विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग की स्थापना 1983 ई. में हुई। जम्मू व कश्मीर के मुख्य मंत्री श्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के प्रयत्नों से मध्य एशिया विभाग की स्थापना 1979 ई. में जम्मू व कश्मीर विश्वविद्यालय में हुई। इस समय इस विभाग में एक निदेशक है। सात अध्यापक मध्य एशिया के विभिन्न विषयों पर कार्य कर रहे हैं तथा रिसर्च स्कालर भी प्राध्यापकों के दिशा-निर्देश में अनुसंधान के कार्य में लगे हुए हैं।

हेल्थ आफिसर डॉ. कुलभूषण के संस्कृत के प्रति अनन्य अनुराग के कारण विक्रमी संवत् 1988 में प्रोफेसर नित्यानंद शास्त्री के संपादकत्व में त्रैमासिक 'श्रीपत्रिका' संस्कृत में प्रकाशित हुई। यह पत्रिका बारह वर्षों तक निरंतर प्रकाशित होती रही। इसमें स्थानीय विद्वानों की शोधात्मक रचनाएं प्रकाशित होती थीं। कश्मीर के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो. गोविंद जी राजदान ने अकबर के बाद राजतरंगिणी के आधार पर कश्मीर का इतिवृत्त लिखना आरम्भ किया था। उनकी रचनाओं के कतिपय अंश इस पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। डॉ. कुलभूषण के देहावसान के बाद इसका प्रकाशन बंद हो गया।

श्री लाल बाहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ के तत्कालीन कुलपति डॉ. मंडन मिश्र के कर्मठ व्यक्तित्व तथा अदम्य साहस के कारण कश्मीर में 1986 ई. में श्री रणवीर केंद्रीय संस्कृत विद्यापीठ जम्मू की उपशाखा श्रीनगर में स्थापित हुई। इसका केंद्र उस समय जवाहर नगर में स्थित था। उस समय डॉ. बलजिनाथ के दिशा निर्देश में शैवदर्शन का कोश भी प्रकाशित हुआ। इसमें तीन स्थानीय संस्कृत विद्वानों प्रो. नीलकंठ गुर्टू, श्री दीनानाथ शास्त्री (यक्ष) तथा द्वारिकानाथ शास्त्री की नियुक्ति हुई थी।

संस्कृत साहित्य को भिन्न रूपों में समृद्ध बनाने में जिन कश्मीरी विद्वानों ने काम किया उनके नाम हैं – प्रो. लक्ष्मीधर कल्ला, श्री नाथूराम कल्ला शास्त्री, प्रो. श्रीकंठ कौल, डॉ. श्रीनाथ तिक्कू, श्री जानकीनाथ 'कमल' (कौल), श्री प्रेमनाथ हंडू, डॉ. बलजिनाथ हंडू, श्री गोविंद भट्ट, ज्योतिषी केशव भट्ट, श्री दुर्गाप्रसाद काचरू, प्रो. जियालाल कौल, श्री जगन्नाथ, श्री हरभट्ट, स्वामी माधवानंद सरस्वती, श्री त्रिलोकीनाथ भट्ट, श्री लक्ष्मीनरायण, श्री जगन्नाथ ज़ाडू, श्री गोपीनाथ रैणा और श्री पीताम्बर हंडू।

कश्मीर में संस्कृत का भविष्य समुज्जवल था। नि:संदेह यह भाषा सर्वदा इंद्रधनुष की तरह पाठकों को अपने स्वाभाविक रंगों से आकृष्ट करती रहेगी। यद्यपि आजकल कश्मीर में प्राचीन काल की तरह संस्कृत बोली नहीं जाती है तथापि यह तत्सम, तद्भव, प्राकृत तथा अपभ्रंश के विभिन्न रूपों में वहाँ के लोगों द्वारा प्रतिदिन प्रयुक्त होती है जैसे:–

संस्कृत वाक्य	कश्मीरी वाक्य	हिंदी अनुवाद
दूर मा गच्छ	देर मा गछ़	दूर मत जाओ।
चिर मा कुरू	चेर म कर	देर मत कर।
तप्त भक्त मा खाद्य	तेत बत मख्य	गर्म भात मत खाओ।
एतु एतु	इत-इत	आजाओ, आजाओ।
निर्गछ	नेर गछ़	निकल जा

पुष्ट प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संस्कृत कश्मीर में जीवित है मृतप्राय नहीं है। यह भाषा तत्सम तथा तद्भव रूपों में इस समय भी वहाँ बोली जाती है।

* मकान नं. 1362, सेक्टर-16,
फरीदाबाद (हरियाणा)

डॉ. निज़ामउद्दीन *

कश्मीर के महान सूफ़ी संत कवि 'नुंद ऋषि'

भारतीय सूफ़ी-संतों ने जीवन के आदर्श जीवन मूल्यों के दिव्यालोक से जनमानस को आलोकित करने की परंपरा सदैव अक्षुण्ण रखी है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक संत श्रृंखला अविच्छिन्न है। ललद्यद (लल्लेश्वरी), शेख नूरूद्दीन वली (नुंद ऋषि), संत वल्लुवर, अरणिमाल, कबीर, सूर, तुलसी, नानक, बाबा फ़रीद, बुल्लेशाह, मीराबाई, रैदास, तुकाराम, ज्ञानेश्वर, नामदेव, चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस प्रभृति संतात्माओं के इंद्रधनुषी व्यक्तित्व और कृतित्व की छटा बड़ी विलक्षण है और उस विलक्षणता का मूल है आध्यात्मिकता। भारतीय संस्कृति और धर्म अध्यात्म की पावन भावना से ओत-प्रोत हैं और यही आध्यात्मिक भावना भारतीय काव्य की आत्मा में भी सन्निहित है। शेख नूरूद्दीन वली (1377-1438) को 'अलमदारे कश्मीर', 'शेखुल आलम', 'सहजानंद,' या 'नुंद ऋषि' कहा जाता है। कश्मीर का पंडित वर्ग हो या मुस्लिम समुदाय, दोनों में उनका समान आदर-सम्मान है और दोनों उन पर पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। उनके इस श्रुक को कौन नहीं जानता-

नुंद ऋषि की जियारतगाह-चरार-ए-शरीफ

'कुरान परान कोनुव मोदुख ...'
कुरआन पढ़ते-पढ़ते क्यों न मर गया
राख होकर ज़िंदगी सर कर गया
किस तरह कुरआन पढ़कर जी सके
मंसूर तो कुरआन पढ़कर मर गया ।

और इसी स्वर में कबीर कहते हैं-

जीभड़िया छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि।
अंखियन मां झाईं पड़ी, पंथ निहारि निहारि।।

शेख़ नूरूद्दीन वली के पूर्वज किश्तवाड़ के राजघराने से संबंधित थे, लेकिन कुछ प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण उन्हें वहाँ से पलायन कर कश्मीर आना पड़ा। उनके पिता का नाम सालारुद्दीन था और माता सदरमॉज एक राजपूत महिला थी। उनके पिता ने हज़रत सैयद हुसैन समनानी के आदेश पर इस्लाम धर्म स्वीकार किया। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि सूफ़ी यासमन ऋषि द्वारा उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करवाया गया। उन्हें जोगीपोरा की जागीर का रक्षक बनाया गया। शेख़ नूरूद्दीन का जन्म कोमूह में हुआ। कहा जाता है कि जन्म के बाद शेख़ नूरूद्दीन ने माँ का दूध नहीं पिया तो सभी को बड़ी चिंता हुई। संयोग से शिव भक्त महायोगिनी ललद्यद उधर से निकलीं तो लोगों ने नवजात शिशु के दुग्धपान न करने की बात उनसे कही! ललद्यद ने नवजात शिशु को गोद में लेकर कहा 'जब पैदा होने में शर्म नहीं की तो दूध पीने में शर्म कैसी?'

> **"शेख नूरूद्दीन वली (1337-1438) को 'अलमदारे कश्मीर', 'शेखुल आलम', 'सहजानंद,' या 'नुंद ऋषि' कहा जाता है। कश्मीर का पंडित वर्ग हो या मुस्लिम समुदाय, दोनों में उनका समान आदर-सम्मान है और दोनों उन पर पूर्ण श्रद्धा रखते हैं।"**

और इसके बाद बालक स्तनपान करने लगा। यह बात भी कही जाती है कि ललद्यद ने बालक को अपना स्तनपान कराया और बालक को माँ की गोद में दे दिया। उनकी शिक्षा-दीक्षा परंपरागत तरीके से हुई। सैयद हुसैन समनानी ने उनकी शिक्षा-दीक्षा का भार संभालकर उन्हें सूफीमत के रहस्य और ज्ञान से अवगत कराया। उन्हें कपड़ा बुनने का काम करने की प्रेरणा माता-पिता ने दी। लेकिन खेती-बाड़ी व कपड़ा बुनना आदि काम में उन्होंने कोई रुचि न ली। उनका विवाह भी करा दिया गया ताकि वे पत्नी और बच्चों के मोह में किसी कारोबार की ओर प्रवृत्त हों, लेकिन उनके व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और उन्होंने 30 वर्ष की अवस्था में घर-परिवार सब कुछ छोड़ दिया। शेख नुरूद्दीन संसार से, दुनियादारी से परांगमुख होकर घंटों 'गोफबल' नामक गुफ़ा में ध्यानमग्न रहने लगे। वे आत्मज्ञान, खुदशनासी, आत्मागही की खोज में तल्लीन रहते। यहीं उन्होंने 12 वर्षों तक तप-साधना, रियाज़त की। वह निरंतर उपवास रखते, नियमित नमाज़ अदा करते, पांबदी से रोज़ा रखते, भगवन्नाम स्मरण में अहर्निश लीन रहते। उनका काव्य जनभाषा में है, जो बहुत लोकप्रिय

"शेख नुरूद्दीन संसार से, दुनियादारी से परांगमुख होकर घंटों 'गोफबल' नामक गुफ़ा में ध्यानमग्न रहने लगे। वे आत्मज्ञान, खुदशनासी, आत्मागही की खोज में तल्लीन रहते।"

मख्दूम साहिब की जियारतगाह-छायांकन: बिनय के. बहल
(साभार-इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र)

हुआ। उनकी आध्यात्मिक रश्मियों ने व्यक्ति के अंतर्बाह्य सबको अनुपम आलोक से परिपूर्ण कर दिया। उनके कलाम को कश्मीरी भाषा में कुरआन और हदीस का ही रूपांतर कहा गया है। उनके काव्य ने लोगों के जीवन की काया ही पलट दी। सब लोग उनके कलाम के दिल्दादाह हैं। उनके सरल, पवित्र जीवन की जनमानस पर अमिट छाप है। उनके कलाम 'ऋषिनामा' व 'नूरनामा' शीर्षक से प्रकाशित हैं, जिनमें 657 'श्रुक' संकलित हैं। इनके श्रुक समाज के उन्नयन तथा उद्धार, समता तथा सद्भाव, मानव-एकता तथा मैत्री का मार्ग दर्शाकर समाज को, व्यक्ति को, उसके अंतर्बाह्य को एक उजास प्रदान करते हैं। पग-पग पर मनुष्य की रहनुमाई करते हुए ईर्ष्या-द्वेष, लोभ-लालच, अहंकार-घृणा, विसंगति-विषमता का परित्याग कर सांप्रदायिक सौहार्द की भावना प्रवाहित करना शेख साहब का उद्देश्य था। उनका काव्य अनुभूतिजन्य है। वह एक ऐसा चौराहा है जहाँ से अध्यात्म, नैतिकता, मानव-प्रेम और एकता के रास्ते निकलकर समाज और देश के चहुँमुखी विकास पर अग्रसर होने के लिए सभी को प्रेरित करते हैं।

विद्या, ज्ञान के विषय में वे कहते हैं- 'इल्म छुय संदूकस सोन जन थावुन' अर्थात् इल्म हासिल करना संदूक में सोना सुरक्षित रखने के समान है। ईमान एक दीपक के समान है, उसे आंधी से तेज़ हवा से बचाना चाहिए- 'ईमान चौंग छुय रछ वावए।' उन्होंने सदैव आत्म-संयम और इंद्रिय निग्रह की बात कही है। नफ्स को मदमस्त हाथी के समान कहा है। इच्छा-तृष्णा ने मनुष्य को किसी काम का न रखा। जिसने अपने नफ्स पर अधिकार प्राप्त कर लिया वही सफलता के सोपान तय कर सकता है। नफ्स की उपमा बैल से देकर वे कहते हैं उसे भय की रस्सी से बाँधकर रखो, ऐसा करने पर वह तुम्हारे काम आएगा। लोभ-तृष्णा ने तुम्हारा मुख विकृत बना दिया है। संसार के भ्रम ने उसे उल्लू बना दिया है। कौए-चील (इच्छा-तृष्णा) उस पर टूट पड़े हैं। अपने प्रिय शिष्य बाबा नसरूद्दीन से वे कहते हैं- 'नसर बाब जुव छुइ शम्आ ज्न तारस' अर्थात् बाब नसर! जीवन जलती हुई शमा है, यह तुम्हारे यहाँ अतिथि है, इस पर विश्वास मत करो। अतिथि प्रस्थान करना चाहता है, उसकी तलाश कब्रिस्तान में ही कर। कवि

बार-बार जीवन, संसार, यौवन, सुंदरता और धन-दौलत की क्षणभंगुरता को रेखांकित करते हैं।

नुंद ऋषि का काव्य लोक-जीवन के बिम्ब और प्रतीकों से अति मनोहर और चित्ताकर्षक बन गया है। नवीन उपमाओं की आभा उनकी रचनाओं में सर्वत्र बिखरी पड़ी है। उनकी इन पंक्तियों में रूपक की सौंदर्यानुभूति दृष्टव्य है-'ए मेरी तृष्णा! तू मेरे लिए खुबानी के पेड़ की जड़ और तना बनी हुई है। जिस प्रकार तना कुठाराघात से भी नहीं कटता उसी प्रकार मेरे प्रयासों के बावजूद तू भी कभी संतुष्ट नहीं होती।' उनकी एक कविता के हिंदी रूपांतर में लोक संस्कृति की छाप स्पष्ट दिखाई देती है-

प्रेम माँ के इकलौते प्रेम की मृत्यु है
क्या वह चैन से साँस ले सकती है?
प्रेम काँटों की सेज पर लेटना है
क्या ऐसे में मनुष्य पलक झपक सकता है?
प्रेम नग्न शरीर को भिड़ों के छत्ते में डालना है
क्या उसमें क्षण भर आराम मिल सकता है?
प्रेम तलवार की धार पर तूफ़ानी नदी पार करना है

उर्दू के मशहूर शायर जिगर मुरादाबादी ने इसी बात को यूं कहा है:

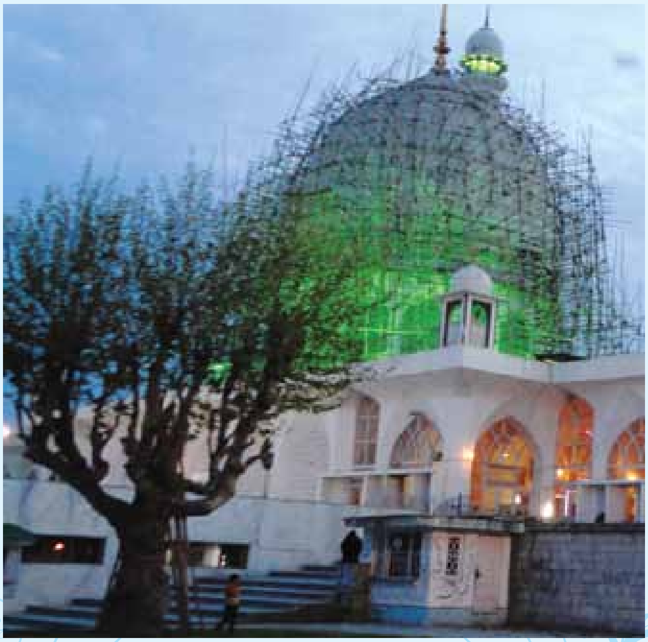

हजरतबल दरगाह-छायांकन: श्रीमती नीलमणि शर्मा

ये इश्क नहीं आसां इतना तो समझ लीजे,
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।

नुंद ऋषि की एक अन्य कविता के हिंदी रूपांतर में प्रतीक विधान तथा सौंदर्यानुभूति देखने योग्य है-

साँझ होते ही अपने को गरम रखने की आग
मेरी काँगड़ी में बुझ गई
अभी तक मैंने चूल्हा नहीं सुलगाया
अब मैं इस काँगडी में क्या भरूँ?
सोना-चाँदी छोड़कर मैंने पीतल को अपनाया
मैंने तलवार तोड़कर उससे दशंतिया बनाई।

एक स्थान पर उन्होंने बेटी को देवदार के वृक्ष को काटने वाली कुल्हाड़ी कहा है, तो दूसरे स्थान पर उसकी अज़्मत का, महिमा-गरिमा का बखान भी किया है। ये पंक्तियाँ नारी के प्रति आदर-सम्मान का भाव ध्वनित करती हैं-

बेटी का स्थान उच्च और श्रेष्ठ है
बेटी हज़रत मुहम्मद के यहाँ जन्मी
उस बेटी के जन्म ने संसार को शोभित किया
वह बेटी यदि जन्म न लेती तो यह संसार
यातना और वेदना से विखंडित हो जाता।

कंडी क्षेत्र की महिलाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं कि उनकी दशा दीनतामय है, फिर भी अतिथियों की वे खातिरदारी करती हैं। उनका भोजन जौ का आटा और वन्यफल हैं। मिट्टी को उन्होंने जीवन-आधार, गंतव्य और अस्तित्व का अंग माना है। उनकी कुछ लम्बी कविताएं उच्च काव्य वैभव से पूर्ण हैं उनमें 'यावन मच' (नर्तकी को संबोधित) ऐसी ही मोहक कविता है।

तुलसी ने संतों की प्रशंसा करते हुए 'नवनीत' के समान माना है। गीता में यह 'स्थितप्रज्ञ' का रूप है और नुंद ऋषि का संत मुसलमान वह है जो खुदापरस्ती की ओर प्रेरित करेगा, जो रोज़ादार होकर पवित्र दिनों का सम्मान करेगा। सच्चे मुसलमानों का गुणगान करते हुए नुंद ऋषि कहते हैं कि मुसलमान को क्रोध शोभा नहीं देता। जैसा दूसरों को देगा, वैसा ही वह प्राप्त करेगा। वह पराई नारी पर दृष्टिपात नहीं करता। जो रूखी-सूखी खाकर संतुष्ट रहता है और

कोमुह में नुंद ऋषि द्वारा लगाया गया पेड़

इस नश्वर शरीर को मिट्टीवत् समझकर पराए धन पर नहीं ललचाता, वह शरीयत का पाबंद होता है, रोज़ा-नमाज़ पर कायम रहता है। ऊँच-नीच, मान-अपमान में समान रहता है। लोभ, मोह, मद और अहंकर से सदा दूर रहता है।

कबीर की भांति उन्होंने रोज़ा-नमाज़ को ढोंग या दिखावा मानकर निंदा नहीं की, वरन् खुदा का ज़िक्र, नाम-स्मरण करना, रोज़ा रखना, नमाज़ पढ़ना, दान-ख़ैरात करना सच्चे मुसलमान के लिए आवश्यक माना है। एक नेक काम करने का पुण्य दस गुना मिलता है। अल्लाह की राह में ख़र्च करने से धन-दौलत कम नहीं होती, बल्कि दस गुना बढ़ती है। अल्लाह की आज्ञा का पालन करने के लिए नमाज़ पढ़ना अनिवार्य है। मनुष्य अपने वजूद में गुम होगा तो वह अल्लाह को अपने अंदर महसूस कर उससे हमकलाम होगा। अकिंचनता, फ़क़ीरी, दरवेशी तो खुदा के खास बंदों का तरीका है। इस दरवेशी का खरीददार तो खुदा ही है। प्रभात समीर को संबोधित करते हुए वे कहते हैं कि मेरी फ़रयाद (प्रार्थना) प्यारे नबी तक पहुँचा दो, मेरे प्राण उन पर न्यौछावर हैं, आह! अब अंतिम समय में मुझे 'आखिरत' की चिंता खाए जा रही है। इसलिए वे बार-बार यह कहते हैं-'युस करि गोंगुल सुइ करि क्राव' यानी जो जैसा करेगा, वैसा पाएगा, जैसा बोएगा वैसा काटेगा। जो लोग ज्ञान प्राप्त तो कर लेते हैं, लेकिन तदनुसार कर्म नहीं करते, वे अंधे हैं और प्रकाश से वंचित हैं। उन गधों पर ज्ञान का भार लादा जाएगा जिनके कर्म-दुष्कर्म और स्याह होंगे। रोज़ा-नमाज़ की नियमितता कर्मों की अक्षय दौलत है। एक स्थान पर वे कहते हैं 'निमाज छय ज़मीनस फल जन ववुन'- नमाज़ जीवन की खेती में बीज बोने के समान है तथा नमाज़ सवाब (पुण्य) की फसल तैयार करती है।

"नुंद ऋषि का काव्य लोक-जीवन के बिम्ब और प्रतीकों से अति मनोहर और चित्ताकर्षक बन गया है। नवीन उपमाओं की आभा उनकी रचनाओं में सर्वत्र बिखरी पड़ी है।"

सदियों पूर्व कश्मीर में बौद्ध और शैव मत का प्रभुत्व रहा। राजतरंगिणी के रचनाकार कल्हण के मतानुसार 11वीं शताब्दी तक सूफी कश्मीर में वारिद हो चुके थे। 14वीं शताब्दी के आरंभ में बहुत से सूफी सैयद कश्मीर में इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार में लग गए थे। शेख नूरूद्दीन के समय हज़रत अमीर, कबीर, मीर, सैयद हमदानी ने यहाँ बहुत लोकप्रियता प्राप्त की। कहते हैं शेख साहब ने उनके हाथों दीक्षा प्राप्त की। शेख साहब के चिंतन-दर्शन में इस्लाम के साथ बौद्ध और शैव मत के प्रभाव भी परिलक्षित होते हैं।

शेख नूरूद्दीन वली को कश्मीर में ऋषि-परंपरा का प्रवर्तक माना जाता है। उनसे पूर्व के कई ऋषियों के उन्होंने नाम लिए हैं। उन्होंने अपने आपको सातवाँ ऋषि घोषित किया। उन्होंने इन सभी ऋषियों को अपना आध्यात्मिक गुरु माना है। सबसे पहले पैगम्बर हज़रत मुहम्मद साहब (सन् 570-623 ई.) 'अव्वल ऋषि अहमर ऋषि' कहकर श्रद्धा व्यक्त की है और तत्पश्चात् उधैस, जुल्कार, मीरां, रूमा, पलास के नाम लेकर सातवें का नाम यूँ ही दे दिया कि मैं कौन ऋषि हूँ, मेरा क्या नाम है? आगे ये ऋषि हिंदू ऋषियों की भांति ही आत्मनिग्रह, सत्य, कथनी-करनी में समानता, आपसी भाईचारा, धर्मनिरपेक्षता, जात-पात के बंधन से मुक्त, प्रेम-सद्भाव का प्रचार करते थे। फलदार, छायादार वृक्ष लगवाते थे, दरगाहें-मस्जिदें और सराय बनवाते थे। माँस न खाकर घास-पात, मोटा अनाज, दूध-पानी पीकर गुजारा करते थे। वे भावी जीवन को सवाँरने की शिक्षा देते थे। रोज़ा-नमाज़ के पाबंद थे। समाज में धर्म या जाति का भेदभाव मिटाकर समानता का प्रचार करते थे। सबके दुख-दर्द में शामिल होते थे। काम, क्रोध, लोभ, मोह से दूर एकांतवासी थे, पर समाज के सुधारक थे। वे आध्यात्मिकता के संसार में रचे-बसे थे। नुंद ऋषि तथा उनके शिष्यों के वार्षिक उर्सों (पुण्य तिथियों) पर उनके अनुयायी अक्सर शाकाहारी भोजन पसंद करते हैं। इन ऋषियों ने समाज के कल्याणार्थ, सांप्रदायिक एकता बनाए रखने के लिए जीवन-भर प्रयास किया।

नुंद ऋषि की समाधि

देश में जो भाईचारा कायम है, नैतिकता तथा आध्यात्मिकता की जोत जल रही है, यह उन्हीं पवित्र आत्माओं के कारण है।

अबुल फज़्ल का मानना है कि कश्मीर में सर्वाधिक सम्मान इन्हीं सूफी ऋषियों का होता है। वे खुदा के सच्चे बंदे (भक्त) हैं, किसी दूसरे धर्म व संप्रदाय की अवमानना नहीं करते। जहाँगीर ने अपनी 'नुज़्के जहाँगीर' में लिखा है कि वे स्वादिष्ट व्यंजनों, दुनिया की शान-शौकत से दूर इंद्रिय निग्रह, उच्चादर्शों का जीवन बिताते हैं। सरल जीवन जीते हैं। 'वैली ऑफ कश्मीर' के लेखक लारेंस के विचार में ये ऋषि इंसान, दोस्ती, सत्कर्म, आत्मसंयम, खुदापरस्ती व मैत्री भरा जीवन जीते थे, जो उनकी आध्यात्मिकता का दर्पण था। प्रसिद्ध पत्रकार व इतिहासकार नाथ बजाज के अनुसार शेख नूरूद्दीन ने एक औलिया के रूप में जीवन व्यतीत किया। सभी धर्मों की, संप्रदायों की एकता के लिए उन्होंने अपना जीवन अर्पित किया। उन्होंने अंतिम समय में दूध-शहद तक त्याग दिया था। उनकी शिष्य-परंपरा काफी लम्बी है जिसमें बाबा बामुद्दीन, बाबा जैनुद्दीन, बाबा लतीफुद्दीन, बाबा नसरूद्दीन आदि सम्मिलित हैं। कहते हैं कश्मीर में इन ऋषियों की संख्या 360 थी।

"प्रसिद्ध पत्रकार व इतिहासकार नाथ बजाज के अनुसार शेख नूरूद्दीन ने एक औलिया के रूप में जीवन व्यतीत किया। सभी धर्मों की, संप्रदायों की एकता के लिए उन्होंने अपना जीवन अर्पित किया।"

शेख नूरूद्दीन वली का निधन रूपवन में सन् 1438 में हुआ जहाँ वह सात वर्ष तक रहे। उनको 'च्रार शरीफ़' में दफ्न किया गया। वहीं उनकी समाधि बनाई गई है। कश्मीर के लोकप्रिय बादशाह जैन उल आबिदीन (1420-1470) जिन्हें लोग प्यार व सम्मान से 'बड़शाह' कहते हैं, उनके बड़े भक्त थे। उनके जनाज़े को उन्होंने कंधा दिया और उनके नाम का सिक्का भी अपने शासनकाल में चलाया। कश्मीरी भाषा के इस महान संत-ऋषि का महत्व भारतीय संत-परंपरा में पूर्ण श्रद्धा और सम्मान से सदैव स्मरणीय रहेगा।

* मुहल्ला साजगरीपोरा
श्रीनगर-190011 (कश्मीर)

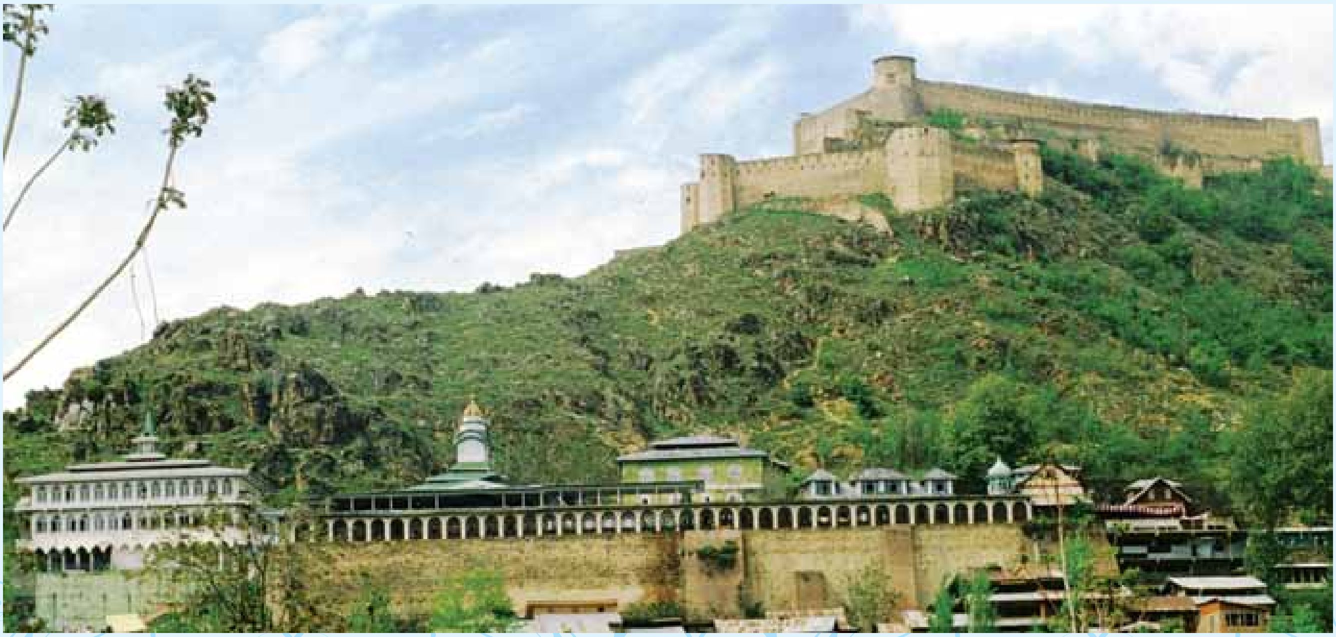

हारी पर्वत के नीचे स्थित मख्दूम साहिब की जियारतगाह-छायांकन: बिनय के. बहल (साभार-इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र)

किशोर कुमार त्रिपाठी *

मार्तण्ड: कश्मीर का सूर्योपासना केंद्र

मार्तण्ड मंदिर का विहंगम दृश्य-छायांकन: बिनय के. बहल (साभार-इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र)

सुजला, सुफला, शस्यश्यामला, पवित्र भारतभूमि आध्यात्मिक ज्ञान के स्रोत के रूप में समग्र विश्व में प्रसिद्ध है। आध्यात्मिकता इस देश का प्राण है और यह आध्यात्मिकता भारतवर्ष के मंदिरों, तीर्थस्थानों और पुण्यक्षेत्रों में प्रतीक के रूप में संरक्षित है। ऐसा ही एक स्थान है कश्मीर, जिसे भूलोक का स्वर्ग कहा जाता है। यह प्रांत अत्यंत वैभवशाली एवं प्राकृतिक सौंदर्य से आपूर्ण है। यहाँ के प्राकृतिक वातावरण एवं नयनाभिराम दृश्यों से मुग्ध हो पर्यटक बरबस ही यहाँ खिंचे चले आते हैं। कश्मीर के दक्षिणी भाग में अनंतनाग से पहलगाम के रास्ते में मत्तन नामक गाँव में प्राचीन एवं सुप्रसिद्ध तीर्थस्थल 'मार्तण्ड सूर्य मंदिर' स्थित है। यहाँ 'कमला' तथा 'विमला' नाम के दो जलस्रोत हैं। यहीं से पुण्यप्रवाहिनी 'चाका' नदी प्रवाहित हुई है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्ता से परिपूर्ण इस तीर्थस्थल में भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रांतों से लोग श्राद्ध, तर्पण तथा पर्यटन के लिए आते हैं। यह तीर्थस्थल भगवान सूर्यदेव की आलौकिक महत्ता का प्रतिपादन करता है।

मार्तण्डनाथ भगवान सूर्यदेव के रूप में भी जाने जाते हैं। उन्हें भास्कर, दिवाकर, सप्ताश्वरतमारूढ, कश्यपात्मज, स्वेतपद्मधरदेव, लोहितरथमारूढ और सर्वलोकपितामह के रूप में भी भूषित किया गया है। वह त्रैगुण्यसमाहार, महापापहर, जगत् के परमगुरू तथा ज्ञान-विज्ञान और मोक्ष प्रदाता के रूप में पूजे जाते हैं। वे ऋग्वेद में सृष्टिकर्ता के रूप में वर्णित हैं-'तत: सूर्यो जायते प्रातरूद्यन्'। वे सबके प्रेरक तथा उत्पादक हैं-'ज्योतिष्कृदसि सूर्य'। पवित्र हैं और सबको पवित्र करते हैं-'सूर्य: पवित्रं स मा पुनातु'।

पुराणों के अनुसार अदिति कश्यप ऋषि की पत्नी थी। शुभगुण सुशोभिता वह देवकन्या आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाली थी। पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से उन्होंने कठोर तपस्या की। तपस्या से संतुष्ट होकर भगवान विष्णु ने वरदान माँगने के लिए कहा। अदिति ने कहा-भगवन्! आपके दर्शन की तुलना में अन्य वर क्या हो सकता है। अत: आपके समान तेज-बल समन्वित पुत्र की कामना करती हूँ। भगवान विष्णु ने उन्हें कश्यप ऋषि की आराधना करने को कहा। कश्यप ऋषि गंभीर तपस्या में लीन थे। महातेजस्वी कश्यप को देखकर वह विस्मयवश मारीच ऋषि का सत्कार नहीं कर पाए। क्रोधवश मारीच ऋषि ने

उन्हें बंध्यागर्भ होने का अभिशाप दिया। इसको सुनकर अदिति ने पुनः कठोर तपस्या की। कश्यप के वचनानुसार वह तपस्या से विरत हुए। कश्यप ने कहा तुमने द्वादश वर्षपर्यन्त दुश्कर तप का आचरण किया है, इसलिए तुम द्वादश पुत्रों की जननी बनोगी। वे अण्ड के रूप में उत्पन्न होंगे तथा परवर्तीकाल में उससे जीवंत पुत्रों का जन्म होगा। आपने त्रयोदश वर्षपर्यन्त तपस्या की, अतः तुम्हारी त्रयोदश संतान भी होगी एवं वह मृताण्ड के रूप में उत्पन्न होगी। समयानुसार देवमाता अदिति ने द्वादश अण्डों को जन्म दिया। त्रयोदश अण्ड का भी जन्म हुआ। ब्रह्मा जी ने अदिति से कहा-यह अण्डे सुदुर्लभ हैं। समय के उपरांत होने से इनमें से तेजसमन्वित पुत्रों का जन्म होगा। आप इनको लेकर सतीसार हृद में निक्षेप कर दीजिए। यह क्षेत्र 'मार्तण्ड' नाम से विख्यात होकर तीनों भुवनों में विदित होगा। यह कहकर ब्रह्मा जी अंतर्ध्यान हो गए। 'मृताण्ड' को लेकर ऋषि कश्यप और अदिति ने सतीसार ह्रद में निक्षेप कर दिया। उसमें से द्वादश आदित्यों का जन्म हुआ। उनका पृथक्-पृथक् स्थान एवं नाम निरूपित हुआ। मृताण्ड से जन्म होने के कारण त्रयोदश संतान का नाम 'मार्तण्ड' हुआ। उस ग्राम का नाम भवन नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनके नेत्र से जो ज्वाला अदिति निकली, वह भर्गशिखा के रूप में ख्यात हुई। मुख से 'महाकला' की उत्पत्ति हुई। अण्डखण्डद्वय से 'नागद्वय' (कमला और विमला) तथा' चक्र से पुण्यप्रवाहिनी 'चाका' नदी प्रवाहित हुई। यह स्थ्ल 'मत्स्यभवन' के नाम से जाना जाता है। यहाँ पर स्नान, दान, तप, होम, जप और स्वाध्याय पुण्यदायक होता है।

"कश्मीर के दक्षिणी भाग में अनंतनाग से पहलगाम के रास्ते में मत्तन नामक गाँव में प्राचीन एवं सुप्रसिद्ध तीर्थस्थल 'मार्तण्ड सूर्य मंदिर' स्थित है। यहाँ 'कमला' तथा 'विमला' नाम के दो जलस्रोत हैं। यहीं से पुण्यप्रवाहिनी 'चाका' नदी प्रवाहित हुई है।"

लोकारिक्षेत्र का वर्णन-

माहात्म्य में योगिनीस्थान की महत्ता, उसकी पूजा विधि तथा पूजा से प्राप्त होने वाले फल का भी वर्णन है। योगिनी यहाँ पर गायत्री, सावित्री, सरस्वती तथा दुर्गा, भद्रा और भवानी के रूप में स्तुत्य हुई है। वह ही विश्वेश्वरी, विश्वा, विश्वाज्ञा मंत्ररूपिणी, वेदरूपा, चिदानंदा, चित्स्वरूपा, चिदुद्भवा, स्थूलसूक्ष्मतरा, सूक्ष्मा, सूक्ष्बुद्धिप्रदा, चारुहासिनी, सर्वाभरणभूषिता के रूप में स्तुत्य हैं। सिंहासन के शैलपृष्ठ में महेश्वरी का आस्थान है। वह दुर्गा भर्गशिखा नाम से प्रसिद्ध है। उनके दर्शन से पुण्यार्जन होता हैं। देवी की उपासना में पुरश्चरण मंत्र का प्राधान्य हैं। देवी को गायत्री उपासक प्रिय हैं। देवी की उपासना से धनप्राप्ति, दारिद्रहानि जंतु दुःख, पुण्य लाभ, धन प्राप्ति, पुत्र प्राप्ति, स्त्री प्राप्ति, गुणी कन्या प्राप्ति, विद्या और मोक्ष प्राप्ति होती हैं। मार्तण्डनाथ के मुख से निकली हुई ज्वाला भवानी के नाम से प्रसिद्ध है। यह भी ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में दैत्यों का प्राचुर्य था। देवगण मार्तण्डनाथ की शरण में गए और मार्तण्डाधिपति की परमात्मा, त्रिधाम्नेश, गर्भरूपाय, महावीर, वीरेशाय, मायांधकार रूप में स्तुति की। भगवान् ने प्रसन्न होकर देवों की दुःखद अवस्था को विषय में सुना। मार्तण्डनाथ क्रोध से पूर्ण हो गए। उनके कोप से भर्गा प्रादुर्भूत हुए। तत्पश्चात् योगिनी का भी जन्म हुआ। उन्होंने योगिनी रक्त माल्याम्बरधरा, चन्द्रभूषितमस्तका, शंख-चक्र-सर्पभूषित होकर दैत्यों का विनाश किया। देवगण ने पर्वत का प्रत्यावर्तन किया और वहीं पर योगिनी देवगण की रक्षा करने के लिए अवस्थित हो गई। वहाँ पर मार्तण्डनाथ के जो पदचिन्ह स्थापित हुए, वह लोकरिक्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध हुए। यह क्षेत्र पुण्य स्थान है, लोकारिक्षेत्र में स्नान से परम पावन कि प्राप्ति होती है। इस क्षेत्र में विधि पूर्वक श्राद्ध, पूजन, जप, स्वाध्याय से परम पावन की प्राप्ति होती है। समस्त प्रयत्नों से यहाँ पर किए जाने वाले श्राद्ध से देवगण प्रसन्न होते है, जिसके फलस्वरूप आयुष, धन, संतान, बुद्धि एवं ऋद्धि की प्राप्ति होती है। श्राद्ध के साथ गोदान, वाजिदान, तिलदान, महिषी, स्वर्ण, रौप्य और दान से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। क्षेत्र की महत्ता का वर्णन करते हुए यह भी कहा गया है कि यहाँ पर स्नान करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

मलमास की महत्ता-

माहात्म्य में एक अन्य रोचक प्रसंग है-मलमास। इस माह में भगवान मार्तण्ड सूक्ष्म शरीर में रहते हैं और उनसे एक अलौकिक शोभा प्रकट होती है। इस माह में समस्त मंगल कार्य यथा यज्ञ, उपनयन और मंगलोद्यापनादि वर्जित

हैं। पवित्र कर्मादि के विधान भी निषिद्ध है। मलमास में मंगल कार्य के विधि-विधन से पशु, पुत्र और धन की हानि होती है। पितृ पुरुष हमारे पथप्रदर्शक के रूप में अदृश्य होकर हमारी सहायता करते हैं। उनके आशीर्वाद से हमें यह मानव जन्म मिला है। शास्त्रों में उन्हीं पितरों के लिए श्राद्ध क्रिया का विधन प्रोक्त है। यह श्राद्ध मलमास में लाभदायक होता है। श्राद्ध के साथ वपन क्रिया का महत्व भी मार्तण्ड माहात्म्य में प्रतिपादित हुआ है। इसमें यह भी कहा गया है कि वपन क्रिया को वर्जित करके जो श्राद्ध कर्म करता है वह महारोगी होता है। मलमास में श्राद्ध करने से पुष्कल फल की प्राप्ति होती है और श्राद्ध के साथ दान, स्नान, तप, होम, स्वाध्याय और देवार्चन से महासंकट से मुक्ति मिलती है और पुण्य प्राप्त होता है।

"मार्तण्डनाथ भगवान सूर्यदेव के रूप में भी जाने जाते हैं। उन्हें भास्कर, दिवाकर, सप्ताश्वरतमारूढ, कश्यपात्मज, स्वेतपद्मधरदेव, लोहितरथमारूढ और सर्वलोकपितामह के रूप में भी भूषित किया गया है। वह त्रैगुण्यसमाहार, महापापहर, जगत् के परमगुरू तथा ज्ञान-विज्ञान और मोक्ष प्रदाता के रूप में पूजे जाते हैं।"

मार्तण्ड का सूर्यमंदिर-

मार्तण्ड मंदिर को सूर्य मंदिर के रूप में जाना जाता है। भारतवर्ष में स्थित सूर्य मंदिरों (ओडीशा का कोणार्क, उत्तराचंल का कटारमल, कश्मीर का मार्तण्ड और गुजरात का मोढेरा) में से यह अन्यतम है। यह मंदिर कश्मीर प्रांत के उच्चस्थ पठार पर स्थित है। मंदिर का वातावरण प्रकृति की अनुपम शोभा से व्याप्त है, जिसने वर्षों से अद्यावधि पर्यन्त आध्यात्मिकों, जिज्ञासुओं तथा पर्यटकों को बार-बार आकर्षित किया है। मंदिर के संस्थापक के विषय में सटीक सूचना नहीं मिलती है। हैनरी कोले के मातानुसार यह मंदिर संध आर्य के द्वारा ईसा पूर्व 35 में निर्मित हुआ था। एक अन्य मतानुसार पाण्ड्यवंश के राजा रामदेव ने इस मंदिर का निर्माण करवाया था। परवर्ती काल में विभिन्न राजाओं द्वारा इसका रख-रखाव करवाया गया। प्रमुख संस्कृत साहित्यकार तथा राजतरगिंणी के रचियता कल्हण के अनुसार इस मंदिर का निर्माण नौवीं शताब्दी में कारकोटा शासक ललितादित्य द्वारा करवाया गया था। यह भी उल्लेख प्राप्त होता है कि राजा कलश ने यहाँ पर आश्रय लिया था तथा उन्होंने मार्तण्डनाथ की स्वर्णमूर्ति मंदिर में स्थापित करवाई थी। मंदिर के निर्माण में उश्लार पत्थर का प्रयोग किया गया है तथा पत्थरों को जोड़ने के लिए लौह का प्रयोग किया गया है। इसका निर्माण 220 × 142 वर्ग फुट के क्षेत्र में किया गया है। इसमें 86 स्तम्भ के साथ गर्भगृह, अंतराल एवं मण्डप भी है। प्रधान मंदिर चार छोटे-छोटे मंदिरों के साथ संयुक्त है एवं केंद्रीय वेदी की ओर दो पंक्तियाँ हैं।

अलौकिक देवतत्व को प्रस्तुत करता हुआ यह मंदिर मूर्तिकला की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यहाँ पर भगवान मार्तण्डदेव के साथ, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, पार्वती, गंगा, यमुना और दिक्पालों का वर्णन् भी मिलता है। भगवान् सूर्यदेव की दिव्य रथ की प्रतिमा, भगवान शिव के त्रिमुखी महादेव रूप, विष्णु भगवान् की दशभुजा विराट् रूप, द्वादशादित्यगण, प्रतिहारों तथा गंधर्वों की विभिन्न मुद्राओं की उपस्थिति कश्मीर मूर्तिकला का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। प्राकृतिक दुर्विपाक और अन्य कारणों से मंदिर का सम्पूर्ण स्वरूप आज उपलब्ध नहीं है, तथापि मंदिर का कुछ अंश आज भी कश्मीर प्रांत के प्राचीन इतिहास को प्रदर्शित करता है। मंदिर की वास्तुकला भी उन्नत हैं, जो ग्रीक सभ्यता की वास्तुकला के साथ सामंजस्य रखती है। देश-विदेश के पर्यटक अपने आध्यात्मिक कार्य एवं पूजा सम्पन्न करने के लिए इस तीर्थस्थान का भ्रमण करते हैं। पर्यटकों की आगमन विवरणी भी वहाँ के पुजारियों के द्वारा लिपिबद्ध की गई है, जो मुख्यत: संस्कृत, शारदा, हिंदी, उर्दू, पहाड़ी, गुजराती, पंजाबी, नेपाली और चीनी भाषा में है। यह पंजिका 'बहि' नाम से परिचित हैं। इस 'बहि' में जयपुर, जोधपुर, चम्पा, पटियाला, कंगारा, दरभंगा, नेपाल, हैदराबाद इत्यादि राजवंशों तथा नेहरू परिवार का विवरणी भी समुपलब्ध हैं। कुछ ऐतिहासिक कारणों से यह बहुमूल्य पंजिका काल के कराल गह्वर में लीन हो गई है।

संस्कृति और परम्परा के प्रमाणस्वरूप यह तीर्थस्थल मात्र गौरव ही नहीं है अपितु विश्व संस्कृति के लिए प्रमुख प्रेरणास्रोत स्वरूप है।

* कनिष्ठ शोध सहायक
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र,
सी.वी.मैस, जनपथ, नई दिल्ली
Email: kkumaraavmegmail.com

वीरेन्द्र बांगरू *

कश्मीरी वास्तुकलागत वैशिष्ट्य-एक विहगंम दृष्टिकोण

राजा अवन्तिवर्मन द्वारा निर्मित अवन्तिपुरा मंदिर के भग्नावशेष-छायांकन: बिनय के. बहल (साभार-इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र)

कश्मीर के प्राचीन स्मारक घाटी के भूत एवं वर्तमान के विषय में हजारों वर्ष पुरातन इसके इतिहास की कथा का परिचय प्रस्तुत करते हैं। भवनों की भव्यता एवं कलात्मकता कश्मीरियों को 'शास्त्र-शिल्पी' अर्थात् वास्तुकला के प्रबुद्ध ज्ञाता के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। स्थापत्य कला के अद्भुत एवं उत्कृष्ट दृष्टांत स्वरूप स्मारकों में से कतिपय काल कवलित हो गए हैं।

मानव अपने पूर्व के कायिक एवं बौद्धिक श्रम के सृजनात्मक चिह्नों को पीछे छोड़ जाता है। ये चिह्न या तो नई पीढी के आगमन से अथवा भूमिगत होने के कारण दृष्टिपथ में नहीं आ पाते हैं। उत्खनन के द्वारा भूमि में छिपी हुई अनेक सतहें सामने आती हैं। प्राप्त प्रत्येक सतह अपने आप में कुछ कहती है। सर जॉन मार्शल की अध्यक्षता में 1919-20 में कराए गए हड़प्पा के उत्खनन में एक प्राचीन सभ्यता प्रकाश में आई। उत्खनन से 2500-1500 ई. पू. की नूतन सभ्यता का प्रकटीकरण हुआ। इसी समय कश्मीर में भी एक सभ्यता के प्रादुर्भाव की जानकारी मिली।

कश्मीर में प्राचीन सभ्यता का बोध भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा वर्ष 1960-1961 में बुर्जहोम में कराए गए उत्खनन कार्य से होता है। सिंधु घाटी सभ्यता नगरीय थी, जबकि बुर्जहोम सभ्यता ग्रामीण परिवेश से संबंधित थी। कश्मीर की प्राचीन सभ्यता मात्र बुर्जहोम तक की सीमित नहीं है अपितु इसके अवशेष कश्मीर में अन्यान्य स्थानों यथा-पम्पोर, लोदव, हारीपारीगोम, मार्तण्ड, बड़गाम, मानसबल आदि में भी प्राप्त हुए हैं।

बुर्जहोम के उत्खनन से पृथक्-पृथक् कालखंडों का पता चलता है -प्रथम तथा द्वितीय कालखंड नवपाषाण काल से, तृतीय-मध्यपाषाण काल से तथा चतुर्थ प्रारंभिक ऐतिहासिक काल से संबंधित है। प्रथम कालखंड के द्वारा

अवन्तिस्वामी मंदिर-छायांकन: श्री अभिषेक पाण्डेय

गर्तों का प्रकटीकरण हुआ जो आकृति में ऊँचाई की ओर से संकुचित तथा गहराई की ओर विस्तीर्ण थे, जिनका प्रयोग सामान्यत: आवासों के रूप में किया जाता था। सबसे वृहत् गर्त का आकार ऊपर की ओर 2.74 मीटर तथा नीचे की ओर 4.57 मीटर था। गर्त में भित्तियों की ओर छोटे-छोटे गर्त प्राप्त हुए हैं, सम्भवत: इनका प्रयोग संचयन हेतु किया जाता होगा। निवास स्थान की भीतरी दीवारों पर मिट्‌टी से पुताई की गई है। मुख्य निर्माण कार्य में प्रमुखत: काष्ठ का प्रयोग किया जाता था।

द्‌वितीय कालखंड में निवास स्थान के निर्माण कार्य में पूर्वकाल की अपेक्षा क्रांतिकारी परिवर्तन परिलक्षित होता है। इस काल में गृहनिर्माण हेतु सूर्य की किरणों से तप्त पकी हुई ईंटों तथा पत्थर का प्रयोग किया जाता था, साथ ही घर की दीवारों पर मिट्‌टी से पुताई करके उन पर गेरू का पतला लेप किया जाता था। तृतीय कालखंड में, विकास की दशा में अद्‌वितीय बहुआयामी परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। यथा-निवास स्थान पत्थर तथा मिट्‌टी के बनाए जाते थे और ये भीतर की ओर रंगीन सतह वाले होते थे। चतुर्थ कालखंड से संबंधित ऐतिहासिक तथ्यों को लगभग तीसरी से चौथी शताब्दी के मध्य का माना गया है।

कश्मीर की प्राकृतिक छटा तथा सुरुचिपूर्ण परिवेश के अतिरिक्त वहाँ की समृद्‌ध सांस्कृतिक धरोहर भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। घाटी में अद्‌वितीय वास्तुकला तथा नक्काशीयुक्त असंख्य प्राचीन स्मारक विद्‌यमान हैं, जो गांधार तथा गुप्तकालीन कला के प्रभाव से निर्मित अपने उत्कृष्ट स्वरूप में उपस्थित हैं। साहित्यिक प्रमाणों के अनुसार कश्मीरी मंदिरों के निर्माण कार्य में काष्ठ का प्रयोग किया जाता था। परवर्ती काल में हिंदू तथा बौद्‌ध मतावलंबियों के पूजा स्थलों के निर्माण कार्य में पत्थरों का बहुतायत प्रयोग किया जाने लगा। करकोट तथा उत्पल शासनकाल में कश्मीरी कला अपने चरम पर पहुँच गई थी।

कश्मीर में बौद्‌ध धर्म का प्रवेश गौतम बुद्‌ध के निर्वाण के पश्चात् हुआ। ऐसा माना जाता है कि सम्राट अशोक ने ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में स्तूपों का निर्माण करवाया। हारवान, होइनार तथा हुतमार में सासानद तथा केंद्रीय एशियाई चरित्रों को व्यक्त करते हुई मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। प्रारम्भिक चरण में मुख्यतया फूलों से युक्त शैली का प्रचलन था। इस शैली में प्रमुखत: मिट्‌टी की दीवारों पर चित्रकारी की जाती थी। दूसरे चरण में मिट्‌टी के स्थान पर पत्थरों का प्रयोग प्रारम्भ हो चुका था और तीसरे चरण में पाषाण-खंडों पर फुलकारी की जाती थी।

श्री रामचन्द्र काक ने एक विशालकाय पुरोभाग में आयताकार तथा पश्चभाग में वृत्ताकार मंदिर का उत्खनन किया। मंदिर के प्रांगण के निर्माण में वृत्ताकार प्रदक्षिणा पथ में ईंटें सुव्यवस्थित की गई हैं। टेराकोटा से निर्मित शिलाखंडों पर विविध आकृतियाँ परिलक्षित होती हैं। यथा-मानव, पशु, पुष्प तथा अनेकानेक ज्यामितीय रचनाएं आदि।

बौद्‌ध धर्म की पारंपरिक तथा कलात्मक पूर्वपीठिका से युक्त कश्मीरी कलाकारों ने हिंदू मंदिरों में वास्तुकला की नूतन शैली का विकास किया। इस प्रकार मंदिरों के निर्माण कार्य के लिए देशी तथा विदेशी शैलियों के मिश्रण से कश्मीरियों ने नवीन सृजनात्मक पद्‌धति का प्रयोग किया जो भौगोलिक दृष्टि से पूर्णत: उपयुक्त थी। श्री आनन्द कुमार स्वामी ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड इंडोनेशियन आर्ट' में इस एकीकृत स्वरूप का विवेचन इस प्रकार किया है-

"The typical Brahminical temples of Kashmir from about 750-1250 A.D has a special character of its own and in some cases a curiously European aspect, due in part to a Gandharan inheritance of certain elements, though all the details are Indian. The special forms include a double pyramidal roof; a triangular pediment enclosing a trefoil niche; fluted columns with Doric or Ionic capitals; a wood or stone "lantern" ceiling of superimposed intersecting squares; and cloistered courts or colonnaded peristyles surrounding the main shrine."

लोदव का मंदिर श्रीनगर से 16 मील दूर एक कुंड के मध्य में स्थित है, जिसे पाषाण निर्मित प्रारम्भिक अवशेष कहा जा सकता है। 'विग्ने' ने सन् 1866 में बने मंदिर का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है जिसका विवेचन न तो कल्हण की राजतरंगिणी में किया गया है और न ही किसी अन्य ग्रंथ के माध्यम से किया गया है। यह मंदिर वर्गाकार और भित्तियों से युक्त है तथा भीतर से वृत्ताकार है। प्रचुर मात्रा में पाषाण खंड, जल कुंड में दिखाई देते हैं, जो युद्ध से संबंधित योद्धाओं की व्याख्या करते हैं। मंदिर के कोने इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि इसकी छत पिरामिड के समान रही होगी जैसी कि पांदरेथन में है। सामान्य रूप से निर्मित इस मंदिर का निर्माण पुराकाल की विकसित अभियांत्रिकी का नमूना है जिसका पूर्ण विकास मार्तंड मंदिर में देखा जा सकता है।

मंदिरों के निर्माण की स्थापत्यकला का दूसरा चरण शंकराचार्य मंदिर में देखा जा सकता है। यह मंदिर अष्टकोणीय मंच से युक्त है तथा सामने की ओर सोपानयुक्त भव्य प्रत्यक्ष भाग है। पवित्र कक्ष की ओर के द्वारपथ में त्रिविध प्यालेनुमा तोरण, भीतर की ओर से उन्नत त्रिकोण सदृश आकृति के हैं। गर्भगृह की छत पिरामिड के समान है। मंदिर में एक नीची भित्ति है जिसकी आंतरिक सतह नतोदर हैं। वेदिका भीतर की ओर वृत्ताकार है।

नरास्थन मंदिर श्री नगर से 40 कि.मी. दक्षिण-पूर्व में पुलवामा जिले के नरास्थन गाँव में स्थित है। यह मंदिर लगभग 1400 वर्ष पुराना है। बाहरी दीवारों पर बनाई गई तिपतिया मेहराब इस मंदिर का मुख्य आकर्षण है। इसका प्रांगण वर्गाकार और लगभग 70 वर्गफुट का है। बाहरी दीवार के दक्षिण-पश्चिम कोने में छोटा सा एक प्रवेश द्वार है। यह गोलाकार मंदिर गांधार शैली में पत्थरों से निर्मित है। जलमग्न त्रिविध तोरण वृत्त में व्यवस्थित कोने, घेरावयुक्त भित्ति, कश्मीर की वास्तुकला के अंतिम स्वरूप के निकट हैं। मंदिर भीतर की ओर से वर्गाकार है। दक्षिण दिशा के सम्मुख मंदिर में छत नहीं है। मंदिर के सामने वर्गाकार कुंड है।

"कश्मीर की प्राकृतिक छटा तथा सुरुचिपूर्ण परिवेश के अतिरिक्त वहाँ की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। घाटी में अद्वितीय वास्तुकला तथा नक्काशीयुक्त असंख्य प्राचीन स्मारक विद्यमान हैं, जो गांधार तथा गुप्तकालीन कला के प्रभाव से निर्मित अपने उत्कृष्ट स्वरूप में उपस्थित हैं।"

पांड्रेठन शिव मंदिर-छायांकन: बिनय के. बहल
(साभार-इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र)

सातवीं-आठवीं शताब्दी में करकोट शासन काल को कला की पराकाष्ठा का काल कहा जा सकता है। ललितादित्य मुक्तापिद (724-761 ई.) नामक राजा का राज्य गौरव तथा समृद्धि का प्रारम्भिक युग हुआ। पंजाब, कन्नौज तथा बिहार पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् वह कश्मीर के सीमावर्ती क्षेत्रीय स्थानों की ओर अग्रसर हुआ। उसने दारदिस्तान, लद्दाख तथा तिब्बत की विजयी सेनाओं का नेतृत्व किया। चेहरे तथा वेश-भूषा से स्पष्टतया उसके मंगोल होने की पुष्टि होती है। स्थापत्य कला में ग्रीक-रोम, गांधार आदि विविध क्षेत्रों का प्रभाव इस काल में दृष्टिगत होता है, जबकि मूर्तिकला एवं चित्रकला में मध्य एशिया का प्रभाव प्रमुख रूप से प्रतिबिंबित होता है।

"बौद्ध धर्म की पारंपरिक तथा कलात्मक पूर्वपीठिका से युक्त कश्मीरी कलाकारों ने हिंदू मंदिरों में वास्तुकला की नूतन शैली का विकास किया। इस प्रकार मंदिरों के निर्माण कार्य के लिए देशी तथा विदेशी शैलियों के मिश्रण से कश्मीरियों ने नवीन सृजनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जो भौगोलिक दृष्टि से पूर्णतः उपयुक्त थी।"

ललितादित्य ने अनेक नगरों की स्थापना की एवं उन्हें मंदिरों एवं मठों से सुशोभित किया। पंडित कल्हण ने अपने ग्रंथ राजतरंगिणी में लिखा है कि 'ऐसा कोई भी नगर अथवा गाँव, नदी या तालाब एवं द्वीप नहीं है जहाँ इस राजा ने किसी पवित्र स्थान का निर्माण न कराया हो।' ललितादित्य ने राजधानी परिहासपोरा में मार्तंड तथा परिहासकेशव नामक प्रसिद्ध तथा मुक्तकेश्व, परिहासकेशव, महवराह तथा गोवर्धनधर मंदिरों का निर्माण करवाया। नारान नाग में जयेशथेश तथा भूतेश मंदिरों का विस्तार कार्य करवाया।

मार्तंड सूर्य मंदिर कश्मीर के महत्वपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक प्राचीन स्थलों में अन्यतम है। भगवान् सूर्य को समर्पित यह भव्य मंदिर उच्च भूमितल पर स्थित है। यह मंदिर पहाड़ी के अंतिम छोर पर विद्यमान है, जो इसके सौंदर्य में अभिवृद्धि करता है। यह मंदिर वृहत् आँगन के मध्य में वृत्ताकार परिस्तंभ से परिबद्ध है, जिसमें 86 स्तंभ हैं। इसमें गर्भगृह, अंतराल, मंडप हैं। केंद्रीय वेदी की ओर दो पंगियाँ हैं जो दोनों ओर आलों से युक्त हैं। ऊपरी पंगि में एक विस्तृत आला है, जहाँ सैंतीस देवी-देवताओं की मूर्तियां सूर्य, शिव, विष्णु, पार्वती, गंगा, यमुना तथा दिक्पाल हैं। बाहरी ओर से मंदिर त्रि-रथ युक्त है। मार्तंड गहन विचारों, निर्माणकार्य के सौंदर्य तथा मूर्तियों के समान अनुपात को प्रकट करता है। वर्तमानकालीन क्षीण होती हुई स्थिति में भी मार्तंड आश्चर्यजनक रूप से कश्मीर की वास्तुकला का अत्युत्तम दृष्टांतस्वरूप है।

मंदिर निर्माण का द्वितीय स्वर्णिम काल उत्पल राजवंश (855-939 ईसवी) के संस्थापक राजा अवंतिवर्मन (855-883 ईसवी) के संरक्षण में विकसित हुआ। इसने अवंतिपुर को अपनी राजधानी बनाया तथा दो मंदिर अवंतीश्वर तथा अवंतिस्वामी बनवाए जिनमें से एक शिव और दूसरा विष्णु के निमित्त समर्पित किया।

अवंतिस्वामी मंदिर के निर्माण में मार्तंड की योजना का अनुसरण छोटे रूप में किया गया है। मंदिर में स्तम्भ श्रेणी परिस्तम्भ शैली में 69 लघु कोष्ठ हैं, जिनके पाषाण पथ से जुड़ा हुआ आँगन है। प्रमुख गर्भगृह दोहरे आधार पर आँगन के मध्य में बना है एवं इसके चारों कोनों में चार उपवेदियाँ है। द्विविध कोष्ठ युक्त मंदिर-मार्ग आंतरिक एवं बाह्य दोनों ओर प्रचुर मात्र में उत्कीर्तित है। कतिपय सौम्य मूर्तियाँ-कामदेव को उनकी पत्नियों रति एवं प्रीति के साथ, राजा अवंतिवर्मन के राज्यारोहण से पूर्व एवं राज्याभिषेक के समय अपनी रानी तथा सहचरों के साथ प्रस्तुत करती हैं। अवंतिस्वामी मंदिर प्राचीन ढाँचों के वास्तुकला के विकास की पुनरावृत्ति स्वरूप है। परंतु अभिवर्धित वास्तुकला को भली प्रकार देखा जा सकता है।

अवंतिवर्मन द्वारा निर्मित एक अन्य मंदिर अवंतीश्वर है जो शिव को समर्पित है। मंदिर 'पंचायतन' शैली का है

मानसबल मंदिर-छायांकनः डॉ. बीरेन्द्र बांगरू

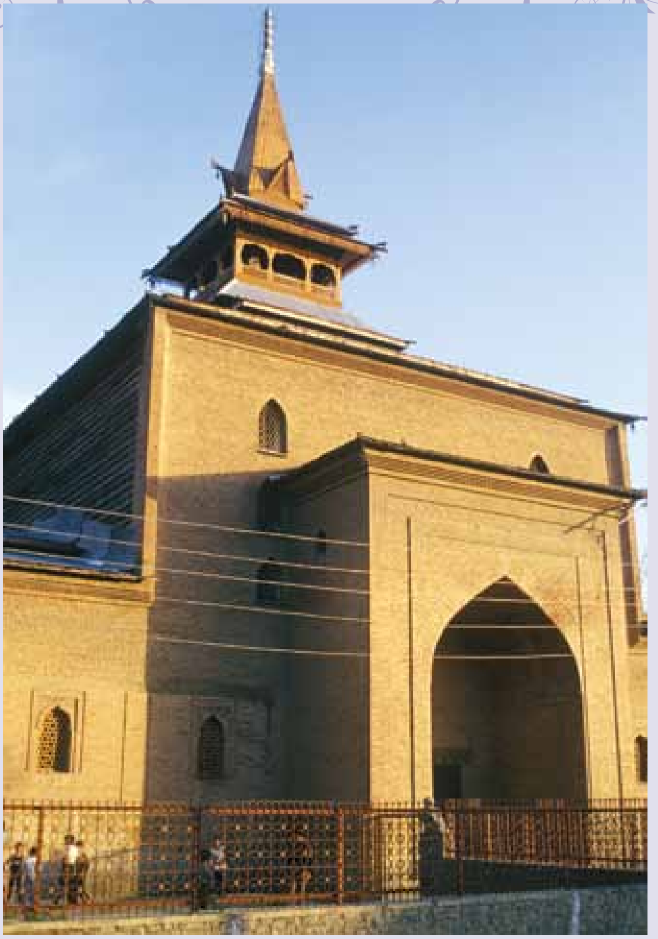

जामा मस्जिद-छायांकन: बिनय के. बहल
(साभार-इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र)

जिसमें प्रमुख मंदिर घेरे के मध्य में चार उपवेदियाँ मुख्य गर्भगृह के चारों कोनों में हैं। मंदिर मार्ग द्विविध प्रकोष्ठ एवं बिना सजावट के है। मुख्य गर्भगृह ऊँचे आधार पर स्थित है, इसकी चारों दिशाओं में सीढियाँ हैं। इस मंदिर की पत्थरों की मूर्तियों में राजा अवंतिवर्मन एवं उसकी रानी की प्रतिमा है।

शंकरवर्मन (883-902 ई.) द्वारा बनवाए गए मंदिर अपेक्षाकृत परिष्कृत एवं सुसज्जित हैं। शंकरवर्मन ने अवंतिवर्मन पर विजय प्राप्त की एवं अपनी राजधानी शंकरपट्टनम् में स्थापित की। आज जिसे पाटन नगर के नाम से जाना जाता है। वहाँ दो मंदिरों सुगंधेश एवं शंकरगौरीसा का निर्माण करवाया। दोनों मंदिर समान योजना के अनुसार बनाए गए हैं। परंतु ये ढाँचे परिष्कृत पदार्थ संयोजन, अलंकरण प्रतिपादन की दृष्टि से अधिक परिवर्धित स्वरूप प्रदर्शित करते हैं। सुगंधेश 'पंचायतन' शैली में निर्मित है जो वृत्ताकार परिस्तंभ रूप में है। मुख्य वेदी एवं उनमें से मात्र दो उपवेदियों के ढाँचे ही शेष हैं। शंकर गौरीसा, सुगंधेश का ही वृहत् रूप है जिसमें एक गर्भगृह एवं अंतराल भी है। परिस्तंभ भित्तियाँ एवं तत्कालीन विशिष्ट निर्माण पूर्ण रूप से समाप्त हो चुके हैं।

दुर्बल राजाओं एवं राज्यों के मध्य निरंतर युद्ध के फलस्वरूप शंकरवर्मन के पश्चात् कश्मीर में मंदिरों के निर्माण का कार्य प्राय: बंद हो गया। दसवीं शताब्दी के प्रारंभ में शैली-विकास अपने पर्यावसान को प्राप्त हो गई परंतु लघु वेदियाँ निरंतर बिना किसी प्रमुख वास्तुकला के बनती रहीं। बम्जू, मामल, कोठेर आदि मंदिरों का उचित संरक्षण न किए जाने और पर्यावरण के प्रभाव से अधिकांशत: क्षरित हो चुके हैं। इस काल के मंदिरों में से एक बुनियार में संरक्षित है।

कश्मीर के छोटे-बड़े प्राचीन मंदिर पाषाण वास्तुकला के एक निश्चित पक्ष को उजागर करते हैं, जो सभी में समान है। जैसे-पिरामिड की आकृति वाली छतें, त्रिभुजाकार आले आदि। मंदिर निर्माण में स्थान का चयन एक महत्वपूर्ण घटक है। अवंतिपुर, बुनियार, बंदी, काकपोरा ये सभी मंदिर झेलम (वितस्ता) नदी के तट पर स्थित हैं। लोदव, पांदरेथन, मामल, कोठेर एव नरास्थन मंदिर झरने के पास स्थित हैं। मार्तंड, मामल, बम्जू मंदिर पर्वतीय ढलान पर हैं और शंकराचार्य का मंदिर पर्वत शिखर पर है।

कश्मीर के मंदिरों में आयताकर खुले हुए आँगन का प्रचलन है, जिसके मुख्य द्वार की ओर कोष्ठ हैं, वास्तुकला की दृष्टि से यह एक अद्वितीय पक्ष है। प्रवेश द्वार दोहरे कोष्ठ वाली संरचना होती है, जिसका परिमाण मुख्य मंदिर के समान होता है। इसमें दोनों ओर सीढ़ियाँ होती हैं। मुख्य मंदिर आयताकार आँगन के विकर्णों के कटान बिंदु पर बनाया गया है, जिसमें एक ही कोष्ठ होता है, जो इकहरे अथवा दोहरे आधार पर

"मार्तंड सूर्य मंदिर कश्मीर के महत्वपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक प्राचीन स्थलों में अन्यतम है। भगवान् सूर्य को समर्पित यह भव्य मंदिर उच्च भूमितल पर स्थित है। यह मंदिर पहाड़ी के अंतिम छोर पर विद्यमान है, जो इसके सौंदर्य में अभिवृद्धि करता है।"

सुगंधेश मंदिर-छायांकन: डॉ. वीरेन्द्र बांगरू

स्थित होता है। मंदिर में चारों ओर से त्रिकोणीय प्रवेश द्वार होते हैं, जिनमें से तीन प्राय: बंद रहते हैं जिसमें आले भी होते हैं।

कुछ मंदिरों में गौण वेदियाँ होती हैं, उदाहरणस्वरूप-मार्तंड, अवंतिपुर तथा तापर, जिनके चारों कोनों पर चार वेदियाँ हैं, जिन्हें 'पंचायतन' कहा जाता है। लोदव तथा शंकराचार्य के मंदिर भीतरी निर्माण की दृष्टि से वृत्ताकार हैं। पायर, पांदरेथन, तापर तथा नरास्थन के मंदिरों में वृत्ताकार परिस्तंभ नहीं हैं। शंकराचार्य के मंदिर में अष्टभुजाकार लघु कोष्ट अष्टभुजा सदृश इसकी भित्तियों को घेरे हुए हैं।

भित्तियों के निर्माण में विशाल, उत्तम कोटि के पत्थरों का प्रयोग किया गया है। वांगाथ तथा बुनियार के मंदिरों में ग्रेनाइट एवं मसाले के पत्थरों का प्रयोग किया गया है। पृष्ठभाग पर प्राय: विश्राम अवस्था में ज्यामितीय एवं पुष्पीय आकृतियों वाली मूर्तियों की नक्काशी की गई है जबकि भित्ति की भीतरी सतह सपाट रखी गई है।

कश्मीरी मंदिरों में छतें सामान्यत: तीन प्रकार की बनाई गई हैं-चतुर्भुजीय, गुंबदाकार और पिरामिडनुमा। चतुर्भुजीय छतों में मंदिर की माप वर्गाकार है, इसको आकार प्रदान करने के लिए चार स्तंभ चार कोणों पर व्यवस्थित किए गए हैं। इस वर्ग में एक अन्य चतुष्कोंणीय वर्ग बनाया गया है। यह प्रक्रिया तब तक दोहराई जाती है जब तक कि एक अकेला वर्गाकार पत्थर समग्र ऊपरी रिक्त भाग को पूर्ण न कर ले। ऊपर लहराते हुए कमल के साथ उड़ते हुए यक्षों के चित्रों को उकेरा गया है। पांदरेथन का मंदिर इस शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। गुंबदाकार छतों के निर्माण में संकेंद्रीय वृत्ताकार पत्थरों की श्रृंखला को मसाले के माध्यम से परस्पर जोड़ा गया है। वांगाथ के दो बड़े मंदिरों में इस प्रकार की छतें हैं। पायर एवं मानसबल की लघु वेदियों में भी इस प्रकार की गुंबदी छत बनाई गई है, परंतु इसका गुंबद एक ही पत्थर से बनाया गया है। उल्लेखनीय है कि यह केवल छोटे निर्माण में ही संभव है। पिरामिडनुमा छतों में कोष्ठों की भित्तियों को ऊपर की ओर तब तक उर्ध्वाधर ले जाया जाता है, जब तक कि वे परस्पर स्पर्श न करने लगें। नरास्थन तथा नारांथल के मंदिरों में इस प्रकार की छतें दिखाई देती हैं।

कश्मीरी मंदिरों का प्रमुख रोचक एवं आकर्षक पक्ष उसके राजसी स्तंभ हैं, जो मंदिर को चारों ओर से घेरे हुए हैं। स्तंभ चिकने अथवा खुरदरे और आयामयुक्त हैं तथा तीन पृथक्-पृथक् भागों से संघटित हैं। इनका आधार समतल वर्गाकार अथवा ढलवा होता है। मध्यभाग समतल, गोलाकार अथवा उसकी सतह पर 12 से 24 आयाम हैं, जो अवंतिस्वामी एवं बुनियार के मंदिरों में पाए गए हैं। शीर्ष भाग वर्गाकार तथा दीवारगीर हैं तथा इसकी ऊँचाई सामान्यत: स्तंभ के ऊपरी व्यास के बराबर है। दीवारगीर शीर्ष कुछ स्थानों पर यक्ष के चित्रों से सुशोभित हैं।

"कश्मीर के छोटे-बड़े प्राचीन मंदिर पाषाण वास्तुकला के एक निश्चित पक्ष को उजागर करते हैं, जो सभी में समान है। जैसे-पिरामिड की आकृति वाली छतें, त्रिभुजाकार आले आदि। मंदिर निर्माण में स्थान का चयन एक महत्वपूर्ण घटक है।"

कश्मीरी मंदिरों की वास्तुकला की विशेषता यह है कि यहाँ के सभी मंदिर पूर्वमुखी तथा पश्चिममुखी है। दक्षिणी मंदिरों के

वक्ररेखीय विशाल निर्माण की अपेक्षा इन मंदिरों की छतें सीधे किनारों वाले पिरामिड हैं। त्रिकोणिका त्रिदलीय महराबें मुख्य मंदिर के चारों ओर हैं। स्तंभों की पंक्तियों में कोष्ठीय विन्यास है, जो भारतवर्ष में अन्यत्र कहीं दृष्टिगत नहीं होता है। दोहरे कोष्ठ वाला प्रवेश द्वार केंद्रीय मंदिर की रूपरेखा एवं परिमाण से मिलता है। कश्मीर में मंदिरों की दीवारों पर नक्काशी की गई है।

"कश्मीरी मंदिरों की वास्तुकला की विशेषता यह है कि यहाँ के सभी मंदिर पूर्वमुखी तथा पश्चिममुखी है। दक्षिणी मंदिरों के वक्ररेखीय विशाल निर्माण की अपेक्षा इन मंदिरों की छतें सीधे किनारों वाले पिरामिड हैं।"

कश्मीर में काष्ठ के मंदिर बनाने का भी प्रचलन था। चूंकि काष्ठ घाटी में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी। अतः काष्ठ, उपयोग में आने वाली सहज सामग्री थी, जिसके माध्यम से अभिनव एवं कलात्मक भावों को व्यक्त करने के अधिक अवसर होते हैं। काष्ठ जो क्षरण होने वाली सामग्री है, समय के साथ आसानी से नष्ट हो जाती है। काष्ठ का एक भी पुरातन मंदिर अब नहीं है। कश्मीर का इतिहास आगजनी की घटनाओं से आपूर्ण है, जिसने काष्ठ निर्माण का विध्वंस करके राख में मिला दिया। कल्हण के अनुसार श्रीनगर का सबसे वीभत्स अग्निकांड 1123 ई. में हुआ। फिर भी कश्मीर की वास्तुकला की श्रेष्ठता के विषय में कहा जा सकता है कि आठवीं शताब्दी में निर्मित बुद्ध की हाथी दाँत से बनी प्रतिमा वाली वेदी की लकड़ी का ढाँचा आज भी मौजूद है। अब यह प्रतिमा चौखड़ के साथ गोपीकृष्ण कनौरिया संग्रहालय, पटना में है। लकड़ी का यह ढाँचा एक मंदिर का लघु संयोजन है, जिसमें दोहरे पिरामिडनुमा छत के साथ त्रिदलीय आले एवं स्तंभ आदि हैं। इसके समरूप ही देवदार की लकड़ी से निर्मित सिद्धार्थ की

शाह हमदान जियारतगाह-छायांकन: बिनय के. बहल
(साभार-इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र)

प्रतिमा क्लीवलैंड, अमेरीका के कला संग्रहालय में है एवं दूसरी प्रतिमा ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन में है।

कश्मीर की वास्तुकला के मूल अवयवों का प्रभाव निकटवर्ती क्षेत्रों आलची एवं लद्दाख के मठों में में भी देखा जा सकता है। कश्मीर की अद्वितीय काष्ठ कला हिमालय की दुर्गम घाटियों की दो प्राचीन जागीरों यथा-डोडा एवं किस्तवार में जीवित रहा। इस क्षेत्र का मंदिर निर्माण कश्मीर के कुछ विशिष्ट तत्वों को प्रस्तुत करता है।

प्रथम शताब्दी में बौद्ध और हिंदू काल की पाषाण संरचनाओं तथा मुस्लिम शासन काल की काष्ठ संरचनाओं से प्राचीन विशिष्ट वास्तुकला का पता चलता है। वास्तुकला की विशेषताएं हैं मस्जिदों तथा गुंबदों का कोष्ठों, पिरामिडनुमा छतों तथा स्तंभों आदि से युक्त होना। शादा-हमदान, जामा मस्जिद तथा मदानी की मस्जिद सशक्त वास्तुकला के उदाहरण हैं। सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में मुगलों के पाषाण निर्मित भवन उत्तर भारत की भवन योजनाओं के समान हैं। यथा-पत्थर मस्जिद, हरी पर्वत का किला, आकहुन मुल्ला शाह की मस्जिद आदि। मुगलों द्वारा भवनों से युक्त उद्यानों-शालीमार, निशात, चश्माशाही तथा परीमहल का निर्माण करवाया जो पर्यटकों के आकर्षण के प्रमुख केंद्र हैं।

काष्ठ वास्तुकला का वैशिष्ट्य जड़ीबल में मदीन साहब की मस्जिद में देखा जा सकता है। मीर सैयद अली हमदानी की मस्जिद जो 'शाह हमदान' के नाम से प्रसिद्ध है, काष्ठ वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। मस्जिद आयताकार तथा दो मंजिली है। नीची छत वाली यह मस्जिद तीन वृत्तों से आवृत्त है। पहले यह छत भोजपत्र से ढ़की हुई थी जिसे अब लोहे की चादरों में परिवर्तित कर दिया गया है। छत का शीर्ष खुला हुआ है। वृहत् स्तंभ छतरी के आकार का है। मस्जिद का निम्न भाग देवदार वृक्ष के तने से निर्मित है जो क्षैतिज रूप में है। काष्ठ वास्तुकला का एक अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण है, श्रीनगर स्थित जामा मस्जिद। इसकी नींव 1398 ई. में सुल्तान सिकंदर ने रखी थी। इसका आँगन आयताकार है और इसमें देवदार के 347 स्तंभ हैं।

पंद्रहवीं शताब्दी के अंत में मुगलों के आगमन से पाषाणयुक्त निर्माण पुनर्जीवित हुआ। मुगलकाल में कश्मीर में काठी दरवाजा, संगीन दरवाजा, पत्थर मस्जिद तथा आकहुन मुल्लाशाह की मस्जिद का निर्माण हुआ जो धूसर पत्थर से बनी हैं और आज भी मौजूद हैं। मुगलों ने शालीमार, निशात, चश्माशाही, अच्छाबल तथा वैरीनाग आदि स्थानों पर भवनयुक्त बगीचों का निर्माण करवाया था। इन स्थानों पर बनाए गए भवन ईटों के हैं तथा कुछ पत्थरों के भी हैं।

''पारंपरिक वास्तुकला में न केवल सादगी पर बल दिया जाता था अपितु सौंदर्य पर भी अधिक ध्यान दिया जाता था यथा दरवाजों तथा आलों आदि पर नक्काशी की जाती थी तथा खिड़कियों पर ज्यामितीय आकृतियों से सौंदर्याभिवर्धन किया जाता था।''

पारंपरिक वास्तुकला में न केवल सादगी पर बल दिया जाता था अपितु सौंदर्य पर भी अधिक ध्यान दिया जाता था यथा दरवाजों तथा आलों आदि पर नक्काशी की जाती थी तथा खिड़कियों पर ज्यामितीय आकृतियों से सौंदर्याभिवर्धन किया जाता था। आधुनिक काल में भवन निर्माण की अनेक शैलियाँ प्रचलित हैं जो न केवल सौंदर्य की दृष्टि से अपितु जलवायु की दृष्टि से भी उत्तम हैं। पारंपरिक वास्तुकला के भवन प्राचीन से वर्तमान की मर्मस्पर्शी गाथा सुनाते हैं। परंतु आधुनिकता के अंधानुकरण के फलस्वरूप हम बहुमूल्य परंपराओं का विध्वंस कर रहे हैं। किसी भी नगर अथवा गाँव को समुचित आकार प्रदान करने में वास्तुकला का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है। परंतु हम अज्ञानतावश निर्माण के पारंपरिक तरीकों का परित्याग कर नूतन मार्गों को ग्रहण करके नि:संदेह भूल कर रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि वास्तुकला की पारंपरिक धरोहर को नष्ट होने से बचाया जाए।

प्रलेखन अधिकारी
* इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र
सी.वी.मैस, जनपथ, नई दिल्ली

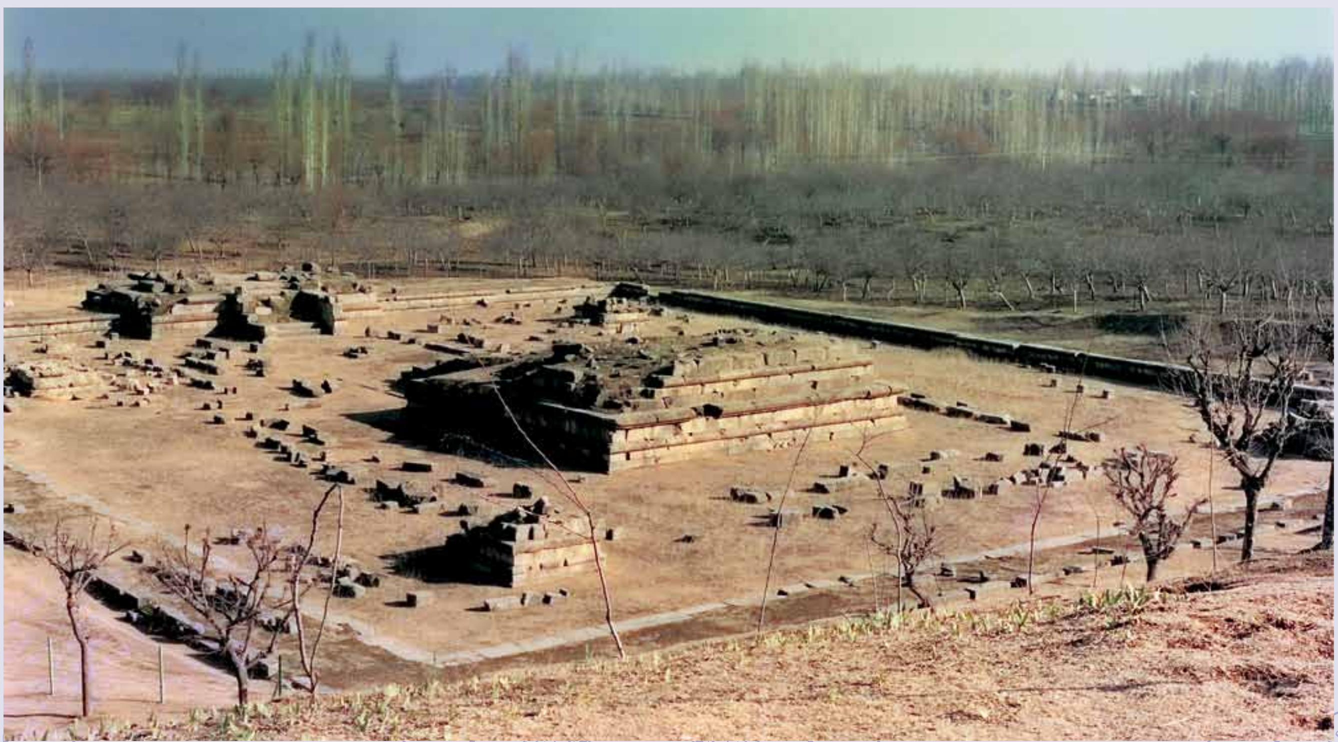

पाटन स्थित मंदिर के अवशेष-छायांकन: डॉ. वीरेन्द्र बांगरू

डॉ. रेनू कोछड़ शर्मा *

पौराणिक और आधुनिक संदर्भों में अमरनाथ यात्रा

अमरनाथ जी की गुफा का बाहरी दृश्य

भारतवर्ष तीर्थों की पवित्र भूमि है। इस धरा पर शायद ही कोई ऐसा प्रांत होगा जहाँ तीर्थस्थल न हों। ये तीर्थस्थल दीर्घकाल से आस्था एवं विश्वास के प्रमुख केंद्र रहे हैं। कश्मीर प्रांत में स्थित 'अमरनाथ' नामक तीर्थस्थल का विशेष महत्व है। प्राकृतिक सुषमा से पूर्ण कश्मीर की पवित्र धरा पर अध्यात्म अमृत-रस के सौरभ को कुमकुम के सदृश सुरभि से प्रकीर्ण करता हुआ अमरनाथ नामक प्रमुख तीर्थस्थल श्रीनगर से उत्तर-पूर्व में 135 हजार मीटर दूर और 13,600 फुट की ऊँचाई पर स्थित है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों-सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, महाकालेश्वर, ॐकारेश्वर, केदारनाथ, भीमाशंकर, काशी-विश्वनाथ, त्रयम्बकेश्वर, वैद्यनाथ, नागेश्वर, रामेश्वर और घृष्णेश्वर के अतिरिक्त अमरनाथ का विशेष महत्व है। शिव के प्रमुख स्थलों में अमरनाथ अन्यतम है। अतः अमरनाथ को तीर्थों का तीर्थ कहा जाता है। ।

अमरनाथ की गुफा की लम्बाई (भीतर की ओर गहराई) 19 मीटर तथा चौड़ाई 16 मीटर है। यह गुफा 19 मीटर ऊँची है। गुफा की परिधि लगभग 150 फुट है। इस गुफा में स्वयमेव हिम शिवलिंग का निर्माण होता है और यही इस स्थान का वैशिष्ट्य है। प्राकृतिक हिम से निर्मित होने के कारण इसको 'स्वयंभू हिमानी' शिवलिंग भी कहा जाता है। कश्मीर प्रदेश में स्थित अमरनाथ की गुफा के दर्शन प्रतिवर्ष श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में किए जाने का विधान है। 'श्रावणे शुक्लपक्षे तु यात्रां कृत्वा विधानतः।'

हिमनिर्मित शिवलिंग

अमरनाथ की यात्रा श्रीनगर स्थित दशमी अखाड़ा से पंचमी तिथि को प्रारम्भ होती है और पहलगाम में रुकती है और पुनः द्वादशी तिथि को प्रस्थान प्रारम्भ होता है। श्रावण मास में पवित्र हिमलिंग के दर्शनार्थ लाखों लोग भिन्न-भिन्न प्रदेशों से यहाँ आते हैं। गुफा में ऊपर से बर्फ के पानी की बूँदें यत्र-यत्र गिरती रहती हैं और यहीं पर एक ऐसा स्थान है, जहाँ इन बूँदों से लगभग दस फुट ऊँचा शिवलिंग बनता है। चंद्रमा के घटने-बढने के साथ ही इस हिमलिंग का आकार भी परिवर्तित होता है, जो श्रावण पूर्णिमा को अपने पूर्ण रूप में आ जाता है तथा अमावस्या तक धीरे-धीरे छोटा हो जाता है। विस्मय का विषय यह है कि गुफा में सामान्यतः कच्ची बर्फ ही दिखााई देती है जो भुरभुरी होती है लेकिन यह शिवलिंग ठोस बर्फ का बना होता है। मुख्य हिम शिवलिंग से कुछ दूरी पर गणेश, भैरव तथा पार्वती के पृथक्-पृथक् हिमलिंग रूप भी दृष्टिगत होते हैं।

अमरनाथ की गुफा तक पहुँचने के लिए सामान्यतः दो मार्ग हैं, प्रथम पहलगाम मार्ग और दूसरा सोनमर्ग-बालटाल मार्ग। पहलगाम या बालटाल किसी भी मार्ग से गुफा तक पहुँचा जा सकता है। पहलगाम अथवा सोनमर्ग से आगे की यात्रा पैदल ही करनी पड़ती है। पहलगाम मार्ग अपेक्षाकृत सुविधाजनक है जबकि बालटाल मार्ग अमरनाथ की गुफा से मात्र 14 किलोमीटर की दूरी पर है, लेकिन यह मार्ग अत्यंत दुर्गम है। सामान्यतः यात्री पहलगाम मार्ग से अमरनाथ यात्रा करते हैं, जो सुरक्षा की दृष्टि से उचित है। भारत सरकार भी इसी मार्ग के प्रयोग हेतु प्रेरित करती है।

पहलगाम जम्मू से 314 किलोमीटर दूर है। जम्मू-कश्मीर पर्यटन केंद्र से पहलगाम के लिए बसें उपलब्ध रहती हैं। पहलगाम से अमरनाथ की दूरी 45 किलोमीटर है। इस यात्रा मार्ग में चंदनबाड़ी, शेषनाग तथा पंचतरणी तीन प्रमुख रात्रि पड़ाव हैं। प्रथम पड़ाव चंदनबाड़ी है, जो पहलगाम से 12.8 किलोमीटर की दूरी पर है। तीर्थयात्री पहली रात यहीं पर बिताते हैं। दूसरे दिन पिस्सू घाटी की चढ़ाई प्रारम्भ होती है। चंदनबाड़ी से 13 किलोमीटर दूर शेषनाग में अगला पड़ाव है। यह चढ़ाई अत्यंत दुर्गम है। यहीं पर पिस्सू घाटी के दर्शन होते हैं। पूरी यात्रा में पिस्सू घाटी का मार्ग बहुत कठिन है। पिस्सू घाटी समुद्र तल से 11,120 फुट की ऊँचाई पर है। इसके पश्चात् यात्री शेषनाग पहुँचते हैं। लगभग डेढ़ किलोमीटर लम्बाई में फैली हुई झील अत्यंत सुंदर है। तीर्थयात्री रात्रि में यहीं विश्राम करते हैं। तीसरे दिन यात्रा पुनः आरम्भ होती है। इस यात्रा मार्ग में बैववैल टॉप एवं महागुणास दर्रे को पार करना पड़ता है। महागुणास से पंचतरणी का पूरा रास्ता उतरावयुक्त है। छोटी-छोटी पाँच नदियों के बहने के कारण यह स्थान पंचतरणी नाम से प्रसिद्ध हुआ है। पंचतरणी से अमरनाथ की पवित्र गुफा 6 किलोमीटर की दूरी पर है। गुफा के समीप पहुँचकर पड़ाव डाल दिया जाता है तथा प्रातःकाल पूजन इत्यादि के पश्चात् पंचतरणी वापस लौटा जाता है। अंततः प्रातःकाल शिव के हिमलिंग स्वरूप के दर्शनोपरांत अद्भुत आनंद की प्राप्ति होती है।

प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में यह परम्परा चली आ रही है कि कोई भी तीर्थस्थान हो अथवा कोई ग्रंथ या व्यक्ति विशेष, उनसे सम्बद्ध वृतांतों के अतिरिक्त कतिपय किंवदंतियाँ अवश्य ही प्राप्त होती हैं। अमरनाथ तीर्थस्थल के विषय में भी ऐसी ही किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। ऐसी मान्यता है कि शिव ने पार्वती को अमरत्व का उपदेश इसी गुफा में प्रदान किया था। जब वे उन्हें कथा सुनाने के लिए ले जा रहे थे उस समय उन्होंने मार्ग में अपने नागों को अनंतनाग नामक स्थान पर, माथे के चंदन को चंदनबाड़ी में, गले के

"अमरनाथ की गुफा तक पहुँचने के लिए सामान्यतः दो मार्ग हैं, प्रथम पहलगाम मार्ग और दूसरा सोनमर्ग-बालटाल मार्ग। पहलगाम या बालटाल किसी भी मार्ग से गुफा तक पहुँचा जा सकता है। पहलगाम अथवा सोनमर्ग से आगे की यात्रा पैदल ही करनी पड़ती है।"

अमरनाथ जी यात्रा मार्ग

शेषनाग को शेषनाग स्थान पर छोड़ा। ये सभी स्थल अमरनाथ यात्रा के मार्ग में आते हैं।

ऐसा माना जाता है कि अमरनाथ गुफा में आज भी कदाचित् श्रद्धालुओं को कबूतरों का एक जोड़ा दिखाई दे जाता है। ये वही कपोतद्वय हैं जिन्हें श्रद्धालु अमरपक्षी कहते हैं, जो शिव द्वारा पार्वती को दिए गए अमरत्व के उपदेश को सुनकर अमर हो गए। आज भी जिन श्रद्धालुओं को ये कपोतद्वय दिखाई देते हैं, तो ऐसा माना जाता है कि उन्हें शिव-पार्वती ने अपने प्रत्यक्ष दर्शन दिए हों। प्रतिवर्ष सम्पन्न होने वाली इस पुण्यशालिनी यात्रा से अनेक पुण्य फलों की प्राप्ति होती है। ऐसा माना जाता है कि अमरनाथ दर्शन और पूजन से महापुण्य प्राप्त होता है। 'आप्नोति च महापुण्यं ह्यमरेशस्य पूजनात्।'

शास्त्रों में इंद्रिय निग्रह पर विशेष बल दिया गया है जिससे मुक्ति की प्राप्ति होती है। भृंगीश संहिता में इसी प्रकार का संकेत प्राप्त होता है जिसके अनुसार अमरनाथ यात्रा निग्रह के बिना ही मुक्ति प्रदान करने वाली है। अत: यात्राक्रम में आने वाली परिस्थितियों तथा गंतव्य स्थल पर पहुँचकर होने वाले हर्ष-विषाद मिश्रित अनेकविध अनुभवों के कारण तीर्थयात्री को विविध प्रकार के सांसारिक कष्टों का बोध होता है तथा साथ ही शिव के हिमलिंगरूप के दर्शन से उसका हृदय इतना संयमित हो जाता है कि इंद्रिय निग्रह किए बिना ही उसे मुक्ति प्राप्त होती है। परमपावनी इस यात्रा से तीर्थयात्री न केवल पुण्यार्जन करते हैं अपितु मुक्ति को भी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वर्ष में सम्पन्न होने वाली यह यात्रा विशिष्टोपकारी है। यही कारण है कि भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत से यात्री इसमें भाग लेते हैं।

भृंगीश संहिता में यह भी कहा गया है कि अमरेश्वर शिव के दर्शन अत्यंत पुण्यशाली है। वे अपने भक्तों के समस्त भवरोगों यथा-आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक दु:खों का समूल नाश करते हैं 'भवरोगं च गृहणाति भक्तानां चेश्वर:।' संहिता के अनुसार अमरदेव की आराधना से अमरत्व की प्राप्ति होती है-'सद्यो ह्यमरतां याति सत्यं सत्यं वराननेे।' संहिता में अमरनाथ का आश्रयण सर्वश्रेष्ठ बताते हुए कहा गया है कि शरीर, युवावस्था, पत्नी, पुत्र, गृहादि समस्त नश्वर हैं तथा एक निश्चित् अवधि के पश्चात् इनका नाश अवश्यमेव हो जाएगा अत: अमरेश का आश्रयण ही सर्वोत्तम है जो सर्वथा तथा सर्वदा ग्रहणीय है। 'शरीरं यौवनं द्रव्यं दारान्पुत्रान्गृहं तथा। चंचलं सर्वतो ज्ञात्वा ह्यमरेशं समाश्रयेत्।।'

अमरनाथ यात्रा मार्ग में कतिपय ऐसे स्थल हैं, जिनसे सम्बद्ध माहात्म्य भृंगीश संहिता में प्राप्त होते हैं जिनमें से कुछ स्थान हैं-

मामलेश्वर-माहात्म्य के अनुसार एक बार भगवान् शिव ने गणेश जी को वरदान दिया कि जो नर तुम्हारी पूजा के अनंतर मामेश की अर्चना करेगा वह निश्चय ही पुण्य फल को प्राप्त करेगा। ऐसा कहकर वे दंडक वन में चले गए। परवर्ती काल में यह स्थान शिव के वर स्वरूप मामलेश्वर के रूप में ख्यात हुआ, जहाँ भक्तजनों द्वारा शिव अद्यावधि पूजित हैं। यहीं पर एक कुंड है जिसे 'मामलेश्वर कुंड' कहा जाता है। इस कुंड में स्नान करने से मनुष्य पाप कर्मों में लिप्त नहीं होता। 'स्नानो मामेश्वरे कुंडे दृष्ट्वा मामलकं विभुम्। नरो न लित्यते पापै: पद्मपत्रमिवाम्भसा।।' अर्थात् जिस प्रकार कमल कीचड़ में रहते हुए उससे लिप्त नहीं होता, सदैव निर्मल ही रहता है, उसी प्रकार मनुष्य संसार में रहते हुए भी पापों में लिप्त नहीं होता है।

''शास्त्रों में इंद्रिय निग्रह पर विशेष बल दिया गया है जिससे मुक्ति की प्राप्ति होती है। भृंगीश संहिता में इसी प्रकार का संकेत प्राप्त होता है जिसके अनुसार अमरनाथ यात्रा निग्रह के बिना ही मुक्ति प्रदान करने वाली है।''

लम्बोदरी नदी- इस नदी के विषय में ऐसा सुना

जाता है कि एक बार गणेश जी ने गंगा नदी को पी लिया था, जिसके परिणामस्वरूप उनका उदर लम्बा हो गया तथा वे लम्बोदर नाम से विख्यात हुए। 'पीत्वा गंगा स विघ्नेशस्तदा लम्बोदरोऽभवत्। लम्बोदरीति वै नाम्ना ह्याजुहाव हरस्तदा।।' शिव के प्रयासों के फलस्वरूप गणेश जी ने गंगा नदी का वमन किया और तबसे यह नदी लम्बोदरी के नाम से विख्यात हुई। ऐसा माना जाता है कि लम्बोदरी नदी में स्नान करने से समस्त पापों का नाश होता है। 'तस्मात्प्रोक्ता पुराविद्भिर्महालम्बोदरी नदी'

आज यह नदी 'लेदर' के नाम से जानी जाती है तथा कश्मीर के रमणीक स्थल पहलगाम के मध्य से प्रवाहित होती है।

अमरावती नदी–अमरनाथ यात्रा मार्ग में अमरावती नदी का भी उल्लेख प्राप्त होता है जिसके विषय में भृंगीश संहिता में बताया गया है कि धारारूपिणी प्रवाहिता अमरावती नदी यहाँ विराजमान है। अमरावती नदी में स्नान करने से मनुष्यों को समस्त प्रकार के संकटों से मुक्ति की प्राप्ति होती है। 'अमरावत्यां नर: स्नात्वा सद्यो मुच्येत संकटात्।'

उक्त स्थलों के अतिरिक्त कतिपय अन्य प्रमुख स्थान यथा–भृगुतीर्थ, नीलगंगा, स्थाण्वाश्रम इत्यादि हैं जो स्वविशिष्ट महत्व के कारण जनसामान्य के द्वारा पूजित हैं।

यात्रा से संबंधित एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह यात्रा पारस्परिक सद्भाव के प्रचार का कार्य भी करती है। विभिन्न प्रांतों से शिव के दर्शनार्थ आने वाले लोगों में परस्पर समभाव की भावना विकसित होती है, विभिन्न भाषा–भाषी लोगों में परस्पर वार्तालाप होता है, भाईचारे की भावना का विकास होता है और विभिन्न प्रांतों की भौगोलिक जानकारी का आदान–प्रदान होता है। अत: इस यात्रा को ज्ञान के समुच्चय स्वरूप माना जा सकता है।

वस्तुत: इस प्रकार के तीर्थस्थल हमारी अमूल्य धरोहर हैं, जिनका भली प्रकार संरक्षण करना महत्वपूर्ण दायित्व है। अत: 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से ओत–प्रोत इस भारतवर्ष में जहाँ समस्त धरा ही कुटुम्ब के सदृश है, वहाँ ऐसे विशिष्ट तीर्थस्थलों के संरक्षण एवं संवर्धन का समस्त उत्तरदायित्व हम सबका एकीकृत प्रयास होना चाहिए।

* कनिष्ठ शोध सहायक
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली
मो.: 9873846825 ईमेल: dr.renuksharma@gmail.com

बालटाल और पहलगाम यात्रा मार्गों का संगम स्थल

प्रो. चमनलाल सप्रू*

कश्मीरी भाषा और साहित्य के नवयुग निर्माता दीनानाथ नादिम

दीनानाथ नादिम आधुनिक कश्मीरी काव्यधारा की त्रिवेणी पर वट वृक्ष के समान है। कश्मीरी साहित्य का आधुनिक काल (बीसवीं शताब्दी) तीन महाकवियों से प्रेरित एवं प्रभावित है। इस युग की देदीप्यमान त्रिमूर्ति है–गुलाम अहमद 'महजूर' (1885–1952), पंडित ज़िन्दा कौल 'मास्टरजी' (1884–1965) और अब्दुल अहद 'आज़ाद' (1903–1948)। महजूर, मास्टर जी और आज़ाद ने आधुनिक युग की कश्मीरी काव्य धारा को जन्म दिया, पाला-पोसा और वयस्क बना दिया लेकिन उसको दशा और दिशा देने वाले थे दीनानाथ नादिम।

वयोवृद्ध कवि महजूर से एक मुशायरे में किसी ने पूछा–'जनाब आपका जानिशीन (उत्तराधिकारी) कौन है?' अर्थात् आपके बाद आपकी परम्परा को कौन जारी रखेगा? उन्होंने मंच से ही उंगली उठाकर श्रोताओं में बंद गले का कोट पहनकर बैठे हुए एक नौजवान की ओर इशारा किया और वह नौजवान था–दीनानाथ नादिम। ऐसा ही विचार 'मास्टर जी' का भी था। वह कहा करते थे–नादिम के कारण कश्मीरी काव्य कोष चमकेगा। वह कश्मीरी काव्य का अनमोल रत्न है।

दीनानाथ नादिम

दीनानाथ नादिम के 70वें जन्म दिवस के अवसर पर जम्मू कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित अभिनंदन ग्रंथ में जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति और भाषा अकादमी के तत्कालीन सचिव और कश्मीरी भाषा के प्रख्यात आलोचक मुहम्मद युसुफ ठेंग ने अपने संदेश में लिखा था 'दीनानाथ नादिम बहुत ही बड़ा कश्मीरी कवि है, साहित्यिक एवं शारीरिक रूप में भी कद्दावर है। बीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक क्षेत्र में उनका रुतबा राजनैतिक क्षेत्र में शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के समान है। दोनों ने इस युग में अपना प्रभावशाली असर डाला जो आने वाले युग को भी प्रभावित करता रहेगा। जिस प्रकार शेख मुहम्मद अब्दुल्लाह ने सामंती युग और सामंती सत्ता से कश्मीरी जनता को मुक्त किया, उसी प्रकार दीनानाथ नादिम ने कश्मीरी भाषा को भी पतनोन्मुख परंपराओं से मुक्त किया। कश्मीर की संस्कृति में नादिम जैसा युग पुरुष अनेक वर्षो तक नहीं पैदा होगा।'

महाकवि दीनानाथ नादिम का जन्म 18 मार्च, 1916 को श्रीनगर के एक निम्न मध्यवर्गीय कश्मीरी परिवार में हुआ था। 1922 में पिता की मृत्यु के बाद चर्खे पर पश्मीना कातकर, येन-केन-प्रकारेण घर चलाकर बालक दीनानाथ को माँ ने पाल-पोसकर बड़ा किया। माँ ने ही उन्हें काव्य रचना के संस्कार दिए। उन्होंने अपने एक साक्षात्कार में कहा था कि 'मेरी माँ बचपन में मुझे ललद्यद के 'वाख' और नुंद ऋषि के 'श्रुख' सुनाया करती थी। परमानन्द और कृष्ण राज़दान की कविताएं सुनाकर मुझे माँ ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा का बोध कराया।'

युवावस्था तक पहुँचते-पहुँचते जहाँ नादिम को अंग्रेज़ी कवि वर्ड्सवर्थ ने प्रभावित किया वहीं उर्दू कवि पंडित ब्रजनारायण चकबस्त की 'सुबह-ए-वतन' कविता को पढ़कर वे आंदोलित हुए। वह कहते हैं – 'इस कविता ने मेरे चिंतन को 'मोल्ड' किया और मुझे प्रगतिवादी कवि

बना दिया। आगे चलकर भगत सिंह, राजगुरू, सुखदेव और अशफ़ाक उल्लाह तथा अन्य देश भक्तों के ऐतिहासिक एवं क्रांतिकारी बलिदानों ने मुझे क्रांतिकारी क्रिया-कलापों की प्रेरणा दी।'

नादिम साहब प्रारम्भ में उर्दू में कविताएं लिखते थे। उनके कथनानुसार जोश, इकबाल और एहसान बिन दानिश ने उनको उर्दू में नज़्में लिखने की प्रेरणा दी। उन्होंने हिंदी में भी अनेक रचनाएं कीं। महात्मा गाँधी के निधन पर उन्होंने 'कलिंग से राजघाट तक' शीर्षक से अत्यंत ही प्रभावशाली कविता लिखी, जिसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:-

वह देखो रात हो गई
प्रकृति लाल रक्तपात की रूमाल
मुख पर डालके निढाल सो गई
थिरक-थिरक के बिजलियों ने, आँधियों ने,
भूमिकम्प ने कलिंग के विवश ललाट पर,
कथा लिखी -
विजय की हार की कथा,
स्वदेश प्यार की कथा,
मनुष्य के रुधिर से नहा
नहा के लाल रंग से
कलिंग के अबोध देश प्रेम को मरोड़कर
कलिंग की कुमारीजत भावनाओं को भी तोड़कर,
अशोक ने कथा लिखी।

कश्मीर में आयोजित एक कार्यक्रम में जब नादिम जी की उपस्थिति में रामधारी सिंह 'दिनकर' को मैंने उपर्युक्त कविता पढ़कर सुनाई तो उन्होंने कहा 'अरे चमनलाल जी, तुम लोगों ने हिंदी वालों से नादिम छीनकर उसे ठेठ कश्मीरी कवि बना दिया। यह बहुत बड़ा अन्याय हुआ। यदि वे हिंदी में काव्य रचना जारी रखते तो संभवत: आज दिनकर से पहले नादिम को हिंदी जगत ने जगह दी होती।'

नादिम जी ने कश्मीरी साहित्य को एक नई दिशा दी। महाकवि नादिम को ज्ञानपीठ पुरस्कार तो नहीं मिला और न ही उन्होंने उसके लिए प्रयत्न किया। शमीम अहमद 'शमीम' के अनुसार 'यह काम नादिम की शान से फरोतर है। यह तो ऐसा ही हुआ कि कोई चर्चिल विक्टोरिया क्रॉस के लिए दरख्वास्त पेश करे।'

"प्रगतिशील साहित्य और कम्युनिस्ट आंदोलन ने नादिम के चिंतन के अंधियारे माहौल में पड़ी परतों को रोशन कर दिया और उन सारी पुरानी जीर्ण काव्य परम्पराओं से मुँह मोड़ने पर विवश किया।"

नादिम का कलाम उनके देहांत से तीन साल पहले तक किताबी सूरत में नहीं छपा था। मोती लाल साकी, मुहम्मद यूसुफ टेंग और मैंने 1985 में उनके कलाम 'शिहिल्य कुल' (पेड़ छायादार) को छापने के लिए तैयार किया जिसे साहित्य अकादेमी का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। उनकी बहुत सी रचनाएं अभी भी अप्रकाशित हैं। जाने-माने पत्रकार शमीम अहमद 'शमीम' के अनुसार 'शायद उनका बहुत सा कलाम ज़माने के हाथों ज़ाया हो जाएगा। लेकिन अज़्मत की जो मुहर उसकी तहरीर पर है, वह उसकी बची हुई चंद ही नज़्मों को कश्मीरी ज़बान की लीजेंड का रंगीन, दिलावेज़ और शानदार बाब (अध्याय) बनाकर दम लेगी।'

प्रगतिशील साहित्य और कम्युनिस्ट आंदोलन ने नादिम के चिंतन के अंधियारे माहौल में पड़ी परतों को रोशन कर दिया और उन सारी पुरानी जीर्ण काव्य परम्पराओं से मुँह मोड़ने पर विवश किया।

बुॅ ग्यवैन अज़ .....
'मैं आज नहीं गाऊँगा
मैं कदापि नहीं गाऊँगा
गुलो बुलबुलों के गीत
नर्गिस व सुम्बलों के गीत
मैं नहीं गाऊँगा।
मैं उन मदमस्त जादूभरी आँखों के गीत
नहीं गाऊँगा।
अब ऐसी नज़्में मेरे लिए नहीं हैं
मैं आज ऐसी गज़लें नहीं गाऊँगा।

नेशनल कल्चरल फ्रंट की स्थापना कर उन्होंने सांस्कृतिक मोर्चे पर 'नया कश्मीर' संवारने का आंदोलन चलाया। समय की माँग के अनुरूप उन्होंने 'नारै इनकलाब' (क्रांति का जय घोष) कविता में नौजवानों से अजय शक्ति का मूर्त रूप बनकर आगे बढ़ने का आह्वान किया।

हे चुं नार दुख ......
हे नवयुवक तुम आग हो, अलाव हो,
यौवन की ऊष्मा हो
अगर तुम बसंत की बयार हो
तो इस समय घटाओं में न छिपो
तुम पर्वत और जंगलों को चीर कर
काट कर बाहर आओ
तूफान बन जाओ।
तुम कारवान बनो
कश्मीर के पासबान बनो। .....

उनकी प्रारंभिक कविताओं में 'मक़ज कॅशीर' (माँ कश्मीर) में जन्म भूमि कश्मीर को संबोधित कर वे कहते हैं –

हे माँ। तुमसे किसने कहा तू विवश है
बेकस है
किसने कहा तेरे बुलबुल पराजित,
वीरानियों में मुख मोड़े हुए हैं
माँ तू हिमालय की अग्रजा है
तभी भरपूर अलंकारों से दीप्त है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रगतिशील आंदोलन की अगुआई और कल्चरल फ्रंट की स्थापना कर नादिम ने वैचारिक क्रांति के साथ-साथ साहित्य को जनता की व्यथा-कथा का संवाहक बनाया।

'वोथी बागुच कुकिली कू कू कर'

(री उपवन की कोकिला कू-कू कर जल (पक्षी विशेष) और कुमिर को जगाओ)

अर्थात् आज लोकतंत्र का वसंत चमन को नई भेंट देने आया है। आज नादिम भीतर की आग सहेजकर सच्चाई को जगाने आया है। आशावान भविष्य में पूरी आस्था रखने वाला कवि नादिम लिखता है –

'म्ये छम आश पगहॅच ....'

(मुझे कल की आशा है, कल दुनिया रोशन होगी ...)

किंतु कहते हैं कल जंग छिड़ने वाली है
नहीं हो जाए कल जंग
मेरी दुनिया जो रोशन होने वाली है।

रावण कृत शिव ताण्डव स्तोत्र की तरज़ (छंद) उन्हें बड़ा प्रिय था। उसी छंद में प्रवाहयुक्त भाषा में 'इरादॅ' (संकल्प) कविता रचकर कश्मीरी कविता में नया जोशिला छंद प्रयुक्त कर कीर्तिमान स्थापित किया।

वुशुन वुशुन वोज़ल वोज़ल
वोज़ल वोज़ल वुशुन वुशुन
वुशुन वुशुन वोज़ल वोज़ल छु खून म्योन।
जवान छुस तुफान ह्यू तुफान ह्यू जनून म्योन

लाल-लाल गर्म-गर्म मेरा खून है। मैं जवान हूँ, तूफान हूँ, तूफान समान मेरा जनून है। प्रकृति के प्रतीकों बिजलियों, आँधियों, बादलों की गर्जन यह सब इशारे बने हैं कवि को क्रांति का संदेश सुनाने के लिए।

नवयुग निर्माता नादिम ने अपनी मातृभाषा को संपन्नता का दर्शन कराया, उसके शब्द भण्डार का नित नई कविता में प्रयोग कर उसे बंगला, तमिल, मराठी, उर्दू और हिंदी के समकक्ष स्थान दिलाया। उपमा कालिदासस्य के अनुरूप कश्मीरी काव्य संसार में उपमा नादिमस्य कहने में कोई संकोच नहीं। 'जून ख्व्व चोट हिश' (चाँद निकल आया ज्यों रोटी) या 'मोज़रेनि ठेकॅदारन पिलनॉव रोपया खेट हिश' (ज्यों मजूरिन को ठेकेदार ने पकड़ाया खोटा एक रुपए का सिक्का)। उनकी पूरी की पूरी पंक्तियाँ उपमाओं का खज़ाना हैं।

कश्मीरी कविता में पहली बार उन्होंने सजीव और मौलिक 'सॉनेट' (अंग्रेज़ी काव्य में प्रयुक्त चौदह पंक्तियों का छंद) लिखा। उन्होंने पहली कश्मीरी कहानी 'जवाबी कार्ड' लिखी। इस कहानी का कश्मीरी साहित्य में वही स्थान है जो हिंदी में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी का है।

इसी प्रकार रंगमंच को भी नादिम का अद्वितीय योगदान है। अनेक ओपेरा (संगीत रूपक) लिखकर एक और कीर्तिमान स्थापित किया। 'बुँबुर-यंबर ज़ल' (भौंरा और नरगिस)

"स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रगतिशील आंदोलन की अगुआई और कल्चरल फ्रंट की स्थापना कर नादिम ने वैचारिक क्रांति के साथ-साथ साहित्य को जनता की व्यथा-कथा का संवाहक बनाया।"

सबसे पहले लिखकर दाद हासिल की। फिर 'नेकी त्वॉ बदी' (नेकी और बदी) 'व्यथ' (वितस्ता) के माध्यम से कश्मीर की सांस्कृतिक परंपरा को दर्शाने वाले प्राचीनतम ग्रंथ नीलमत पुराण में वर्णित लोक परंपराओं और कथाओं की प्रभावशाली शब्द राशि से युक्त जल प्रपात का प्रवाह और फिर शालीनता में धीरे-धीरे बहने वाली कश्मीर की प्राणदायिनी नदी का भव्य रूप है। कुल मिलाकर आठ-दस संगीत रूपक (ओपेरा) लिखकर नादिम ने युगांतकारी काम किया। इनका मंचन सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर हुआ और सभी लोकप्रिय हुए।

दीनानाथ नादिम के सानिध्य में आकर साहित्य अकादेमी के प्रथम सचिव प्रभाकर माचवे उन्हें वर्तमान भारतीय साहित्य का शिखर पुरुष मानते थे। उनके अनुसार 'कविवर नादिम कश्मीरी भाषा में वही स्थान रखते हैं जो रूसी में माइकोवास्की, बंगला में काज़ी नज़रुल इस्लाम और सुकांत भट्टाचार्य, तेलुगु में श्री श्री, इस्पाहनी में पाब्लो नेरूदा, उर्दू में जोश और फ़ैज, मलयालम में वल्लतोल तथा हिंदी में निराला और मुक्तिबोध रखते हैं। वे 'रोमांटिक रिवोल्यूशनरी' स्वच्छंद विद्रोही कवि हैं। जिन्होंने कविता को जनोन्मुख बनाया।

रामधारी सिंह 'दिनकर' इन्हें काव्यमय कश्मीर का कवि मानते हैं और कहते हैं नादिम जी बड़े ही प्रतिभाशाली कवि हैं। इनकी कविताएं हृदय हिलाने वाली हैं।

बच्चन जी ने इनकी दो कविताओं 'ऐसा है संसार हमारा' और 'हमारा वतन' नाम से हिंदी में पद्यानुवाद किया है, जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं:-

'ऐसा है संसार हमारा ।
इसमें खिलकर सुमन अमन का नित संदेश लाते हैं ।
सिर पर शीतल छाया करके प्यार चिनार जताते हैं ।
अर्जुन सा जोधा रहता है इसकी पहरेदारी में,
बुद्ध यहाँ करुणा के आँसू बोते क्यारी-क्यारी में,
गाते हैं महजूर यहाँ पर कश्मीर की घाटी से,
राग रवीन्द्र उठाया करते बंग देश की माटी से,
यहाँ शराफ़त और मुहब्बत की बहती रहती है धारा,
देखो ऐसी रीति हमारी,
ऐसा है संसार हमारा ।

'हमारा वतन में' अपनी यशस्वी परम्परा का बखान करते हुए वे अंतिम पद में कहते हैं :-

एक नया आदर्श हमारे साथ है,
हमने भारत भर का पाया प्यार है,
मिली वितस्ता से गंगा की धार है,
सत्य और संकल्प हमारा एक है,
हिमगिरी के वन तुहिन कणों की छाँव में
आज हमारी मिट्टी का अभिषेक है
आज प्रेम के सागर में उल्लास है
एक नया आदर्श हमारे पास है।

मैंने एक बार उनसे पूछा 'जब आपने संगीत रूपक लिखे अथवा कविताएं लिखीं तो आपको कश्मीर के जन-जीवन, लोक कथाएं, पक्षी-विशेष, फूल, सब प्रेरित करते हैं, लेकिन 'व्यथ' (वितस्ता) के प्रति आपका एक भावात्मक अनुराग उमड़ता है। क्या 'व्यथ' आपके अपने जीवन की प्रतीक है?' तो नादिम साहिब ने कहा-'चमन जी, व्यथ (वितस्ता) अन्य गीत-नाट्यों की भाँति एक संगीत रूपक है। वास्तव में यह मेरे जीवन की शाश्वत कहानी है। मैं मरण में विश्वास नहीं करता। मेरी जीवन में आस्था है-शाश्वत जीवन में और यही आस्था और विश्वास 'वितस्ता' संगीत रूपक की रचना का प्रेरक बना।'

हिंदी में हम सुनते हैं -
सूर-सूर तुलसी, शशि, उड़गण केशवदास ।
अबके कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकास ।।

ठीक इसी तर्ज पर सुकवि गुलाम नबी 'आरिज़' कहते हैं :-

मस्तानॅ ऑरिफ सानि अदबुचि हूरि कनुक दूर
मजबूर पकान लूर डखविथ ज़ार तय रंजूर ।।
टाकारॅ वनय सानि अदबॅचि कारॅबारुक राज़,
नॉदिम छु नफा, गाटॅ ऑरिज़, मूल छु महजूर ।।

अर्थात् आरिफ हमारी साहित्य सुंदरी के कानों का झुमका है। मजबूर, ज़ार और रंजूर लाठी लेकर कदम-कदम बढ़ रहे हैं। मैं साफ तौर पर अपने साहित्य के कारोबार का राज़ बयान करूँ तो सुनो, नादिम नफा (लाभ) है, आरिज घाटा है और मूलधन महज़ूर है।

* 13 बी, ई-3, शताब्दी विहार,
सेक्टर-52, नौएडा-201307

डॉ. रूप कृष्ण भट *

कश्मीर की सांस्कृतिक धरोहर

पंडित कल्हण की महान कृति राजतरंगिनी के अंग्रेजी अनुवाद में सर औरल स्टेन ने लिखा है कि 'कश्मीर भारत का एकमात्र ऐसा भाग है जो एक स्वतंत्र लिखित इतिहास का दावेदार है।' श्रीनगर से 15 कि.मी. की दूरी पर बुर्जहाम की खुदाई से प्राप्त पुरावशेष 3000 ई.पू. के इतिहास के साक्षी हैं। ऐतिहासिक शोध से अब यह पूर्ण रूप से प्रमाणित हो गया है कि नागा जाति के लोग कश्मीर के मूल निवासी थे और कश्मीरियों ने अपनी संस्कृति एवं सभ्यता की बुनियाद नागा संस्कृति पर ही रखी है। कश्मीर के महान दार्शनिक अभिनव गुप्त का मत है कि प्राचीन युग में 'अगामस' को वेदों की तुलना में पहली ई. से पाँचवीं ई. तक अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता था।

लल्लेश्वरी (ललद्यद)

वैदिक और कश्मीरी संस्कृति का समन्वय वैसे तो बहुत पहले ही हो गया था, परंतु कश्मीर के धार्मिक ग्रंथों में यह देखने को मिलता है कि भगवान शिव को देवता 'इंद्र' से अधिक महत्व दिया जाता था। वी. एन. दराबू के अनुसार पूर्व वैदिक युग के लोग वैदिक समाज में अपने आचार-व्यवहार के कारण अपनी अलग पहचान रखते थे।

बौद्धों और यहूदियों ने कश्मीरी इतिहास तथा संस्कृति पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला। नागा सभ्यता से बौद्ध धर्म के युग तक की यात्रा बहुत अनुकूल रही है। शैववाद तथा कश्मीरी तंत्रवाद ने मिलकर बौद्ध धर्म को कश्मीरी रंग में प्रस्तुत किया। यहाँ की स्थानीय आस्थाएं, वैदिक चिंतन तथा बौद्ध धर्म से प्यार होने वाले स्वरूप को कश्मीर के महानतम दार्शनिकों अर्थात् वासु गुप्त तथा अभिनव गुप्त ने 'कश्मीरी शैववाद' या 'त्रिक दर्शन' का नाम दिया है।

जब कश्मीर पर बाहरी लोगों अर्थात् मुगल, पठान, सिख और डोगरों ने अपना राज स्थापित किया तब कश्मीरियों को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कश्मीर के आंतरिक राजाओं में 'चक' अंतिम शासक थे। कश्मीरी मूल के राजाओं के धर्म परिवर्तन अर्थात् इस्लाम धर्म स्वीकार करने के पश्चात बहुत से लोगों ने इस्लाम कबूल किया। फलस्वरूप शैववाद और इस्लामी चिंतन के समन्वय से एक नया दर्शन विकसित हुआ जिसे तसव्वुफ़ कहा गया। सूफीवाद का विकास यहाँ सैंकड़ों वर्षों तक होता रहा। शैववाद तथा सूफ़ीवाद कश्मीर के दो अत्यंत महत्वपूर्ण जीवन दर्शन हैं, जिनका कश्मीरियों के चिंतन तथा जीवन शैली पर अत्यंत गहरा प्रभाव है।

भगवान लक्ष्मण जू, भगवान गोपीनाथ, लल्लेश्वरी (ललद्यद) और शेख़ नूरूद्दीन नूरानी (नुंद ऋषि) इस संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण नाम हैं। ललद्यद और नुंद ऋषि ने धर्म तथा अध्यात्म को कश्मीरी संस्कृति की उपमा के रूप में प्रस्तुत किया तथा इसे एक अति भावुक सांस्कृतिक अनुगूंज की संज्ञा दी। नुंद ऋषि स्वयं को ललद्यद का दत्तक पुत्र मानने थे। उन्होंने ललद्यद के चिंतन को 'ऋषिवाद' के नाम से प्रचारित किया, जिसे साधारणतया तसव्वुफ़ कहा जाता है।

डा. आर्थर नेवे के अनुसार 'कश्मीरी मुसलमानों ने अपनी इबादत का आरम्भ हिंदू मूर्तियों से किया तदोपरांत मूवे मुबारक की ओर बढ़े। इसी प्रकार मुसलमान सूफी संत भी भगवान की भाँति पूजे जाते थे। अर्थात् कश्मीरी मुसलमान, कश्मीरी भी रहे और मुसलमान भी।'

कश्मीर चिंतन तथा दर्शन की मंथन स्थली रही है। जी. एम.डी. सूफ़ी के मतानुसार 'बुद्धमत' वेदांत तथा इस्लामी

तसव्वुफ़ को कश्मीर में अनुकूल तथा शांतिपूर्ण वतावरण मिला। कश्मीर हिंदू, बौद्ध तथा इस्लाम धर्म के समन्वय का अतुल्य रूप प्रस्तुत करता है। कश्मीर ने भारतीय संस्कृति के विकास में अग्रणी योगदान दिया है। यह मानव बौद्ध की एक शाखा की भांति प्राचीन युग से ही भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का अभिन्न अंग रहा है। जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में 'बौद्धिक तथा भौतिक दृष्टि से कश्मीर का पूरे देश पर लगभग 2000 वर्ष तक प्रभुत्व रहा है।' अवंतिवर्मन, शंकरवर्मन, ललितादित्य, ज़ैन-उल-आबदीन आदि कश्मीर के कुछ ऐसे राजा रहे हैं जिन्होंने मानव सभ्यता तथा मानवता की प्रगति में बहुमूल्य योगदान दिया।

कश्मीरी मुख्य रूप से आचार-व्यवहार, खान-पान, पहनावा, क्रियाकलाप, भाषा और आचरण के मामले में अत्यंत भावुक होते हैं। कश्मीरी उच्च कोटि के मेज़बान होते हैं। कश्मीरी संगीत, नृत्य तथा नाट्य परम्पराओं का यहाँ की धरती से बड़ा गहरा संबंध है। समकालीन कश्मीरी नाट्य मंच पारंपरिक लोक नाट्य 'भांड़ पाथेर' से विकसित हुआ है। कश्मीर के लगभग अस्सी गाँवों में इसके लोक कलाकार हैं, जो अपनी पारंपरिक कला का प्रदर्शन करते रहते हैं। आज भी कश्मीर में सबसे लोकप्रिय नृत्य 'रौफ़' है, परंतु किसी विशेष सांस्कृतिक या समाजिक अवसर पर अन्य कश्मीरी नृत्य भी प्रस्तुत किए जाते हैं। जिनमें 'धम्माल' तथा 'विवाह नृत्य' अग्रणी हैं।

कश्मीरी संगीत तथा गायकी कई संदर्भों में महत्वपूर्ण है। यहाँ का पारम्परिक लोकगीत 'वनवुन' शादी-विवाह, धार्मिक तथा समाजिक अवसरों पर गाया जाता है। 'छकरी' यहाँ का प्रसिद्ध लोक संगीत है जो अपनी बहुरंगी, प्रस्तुति के कारण सदैव आकर्षण का केंद्र रही है। 'वनवुन' तथा 'छकरी' के अलावा कश्मीर में सुगम संगीत भी बहुत प्रसिद्ध है। जैसे 'वचुन', 'ग़ज़ल', 'भजन', 'नाप्त', कव्वाली आदि। कश्मीर का सूफ़ी संगीत अपने विशेष वाद्य यंत्रों, सुरनय तथा पर्दे के कारण अंतराष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त कर चुका है। कश्मीरी वाद्यों में संतूर, तुम्बकनारी, सारंग, गागर, स्वरनै, रबाब, थालुज आदि प्रमुख हैं।

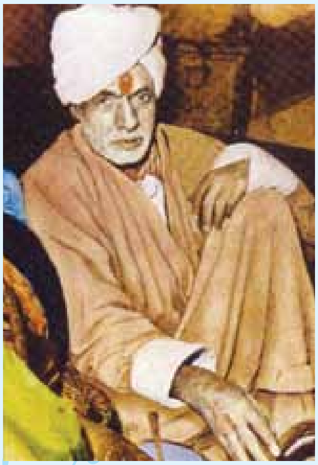
भगवान गोपीनाथ जी

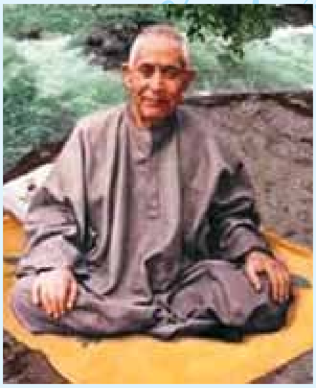
स्वामी लक्ष्मणजू

कश्मीरी भाषा भारत की प्राचीन भाषाओं में से एक है लेकिन इसे कभी भी राजकाज की भाषा बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका और न ही इसको दरबारी या सरकारी संरक्षण मिला। इसे पाठशालाओं तथा विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम भी नहीं बनाया जा सका। कश्मीरी भाषा का छः सौ वर्षीय साहित्यिक इतिहास रहा है और विशेषकर इसका काव्य साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। कश्मीरी भाषा सर्वप्रथम 'ब्राह्मी' से विकसित 'शारदा' लिपि में लिखी जाती थी, तदोपरांत यह अरबी-फ़ारसी लिपि में लिखी जाने लगी। कश्मीरी का अधिकतर साहित्य इसी लिपि में उपलब्ध है। लेकिन पिछले लगभग दो दशक से कश्मीरी प्रवासी इसे देवनागिरी लिपि में भी लिख रहे हैं। इसकी कुछ पुस्तकें रोमन लिपि में भी उपलब्ध हैं। आतंकवाद ने कश्मीरी मूल्यों, परम्पराओं तथा रीतियों को पूर्ण रूप से धराशाही कर दिया है। जिसके कारण कश्मीर की जनता अपनी भाषा, संस्कृति और मूल्यों अर्थात् अपनी पहचान खोती जा रही है। महान भाषाविद् प्रो. ब्रज बी. काचरू ने अपने एक अत्यंत महत्वपूर्ण शोध पत्र में इस बिंदु पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखा है कि-'अगर परिस्थिति नहीं बदली तो पचास वर्ष के अंदर कश्मीरी भाषा लुप्त हो जाएगी।'

नि:संदेह यह सभी कश्मीरियों के लिए चिंता का विषय है। इसलिए आवश्यक है कि कश्मीरी जनता अपनी भाषा तथा संस्कृति को न केवल जीवित रखने का प्रयत्न करे बल्कि इसकी उन्नति के लिए हर संभव प्रयास करे क्योंकि संस्कृति का भाषा से बड़ा गहरा संबंध होता है। भाषा की सुरक्षा वास्तव में संस्कृति की सुरक्षा होती है और जिस समाज की संस्कृति मर जाती है, वह समाज भी मर जाता है। अपनी कश्मीरी पहचान बनाए रखने तथा कश्मीरियत को सुरक्षित रखने के लिए हमें अपनी भाषा एवं संस्कृति से जुड़कर रहना होगा।

* ए-19, कैलाश अपार्टमेंट्स,
सेक्टर-4, प्लॉट-2,
द्वारका, नई दिल्ली-110075

डॉ. मज़हर अहमद ख़ान *

कश्मीर और कश्मीरियत

कश्मीर घाटी अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए देश-विदेश में प्रसिद्ध होने के साथ-साथ धरती पर बसे स्वर्ग के रूप में भी जानी जाती है। इसकी प्रसिद्धि का एक अन्य पहलू है यहाँ की तहज़ीब, धार्मिक एकता और आपसी भाईचारा। नीलमत पुराण के अनुसार कश्मीर पहले एक झील थी। जिसे सतीसर के नाम से जाना जाता था। इस झील में जलोद्भव नामक राक्षस रहा करता था, जो झील के तट पर रहने वाले ऋषि-मुनियों को सताया करता था। उसके प्रकोप से छुटकारा पाने के लिए नाग जाति के लोग कश्यप ऋषि के पास गए। कश्यप ऋषि ने सतीसर को चीर डाला और उसका सारा पानी बह गया तथा एक रमणीक क्षेत्र का जन्म हुआ। कश्यप ऋषि के नाम पर इसे पहले कश्यपपुर या कश्यपमीर कहा जाता था जो आज कश्मीर के नाम से जाना जाता है।

"सूफी-संतों, ऋषि-मुनियों की साधना का केंद्र रही इस देवभूमि पर नाग, बौद्ध, पंडित, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन सभी धर्म के लोगों का संगम देखने को मिलता है। आध्यात्मिक भावना यहाँ की तहज़ीब में बसी है।"

सूफी-संतों, ऋषि-मुनियों की साधना का केंद्र रही इस देवभूमि पर नाग, बौद्ध, पंडित, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन सभी धर्म के लोगों का संगम देखने को मिलता है।

पीर दस्तगीर साहिब की दरगाह, श्रीनगर

आध्यात्मिक भावना यहाँ की तहज़ीब में बसी है। कश्मीरी पंडितों के प्रसिद्ध पर्व शिवरात्रि और नवरेह तथा मुसलमानों के त्योहार ईद और रमजान वादी में एकता का सिंहनाद करते दिखाई देते हैं। अहिंसा, करुणा, मैत्री-भाव, परस्पर सहयोग यहाँ के निवासियों के मूल में विद्‌यमान है। धार्मिक एकता की केसरगंध यहाँ के वातावरण में घुली हुई है। कश्मीरी पंडितों और मुसलमानों के धार्मिक विश्वास और मान्यताएं समानता लिए हुए हैं, जिसके कारण यह एक डोर में बंधे हुए हैं। यहाँ पग-पग पर स्थापित हिंदू-मुसलमानों के धार्मिक स्थल या तो एक ही स्थल पर स्थापित हैं या फिर एकरस हैं। यहाँ के धार्मिक आस्थापनों पर लगने वाले वार्षिक उर्स में सभी धर्मों के अनुयायी समान रूप से सम्मिलित होते हैं जो भावनात्मक एकता को और अधिक दृढ़ता प्रदान करते हैं। इनकी मातृभाषा भी एक ही है और वह है - कश्मीरी। इतना ही नहीं यहाँ के पंडितों और मुसलमानों के उपनाम भी एक समान ही हैं, जैसे - कौल, कार, भट्‌ट, पंड़िता आदि जो आत्मिक एकता को मुखरित करते हैं। इसी एकता, एकात्मता और एकरसता का नाम 'कश्मीरियत' है।

तुलमुला में स्थित प्रसिद्ध क्षीरभवानी मंदिर में हर साल जून के महीने में लगने वाले विशाल मेले में हजारों की संख्या में भक्तगण अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करने आते हैं। इस अवसर पर मुसलमान, क्षीर-भवानी मंदिर में चढ़ाए जाने वाले फूल लाकर अपने कश्मीरी पंडित भाइयों को देते हैं तथा वर्ष भर मंदिर की देख-रेख करते हैं। प्राचीन मान्यता के अनुसार इस वार्षिक पर्व के अवसर पर कोई भी व्यक्ति मांस-मछली खाकर मंदिर में नहीं जा सकता। हालांकि कश्मीरी पंडित और मुसलमान दोनों ही मांसाहारी

हैं। लेकिन इस अवसर पर दोनों ही धर्मों के लोग कुछ दिन पहले की मांस खाना छोड़ देते हैं। इसी प्रकार बटमालो और अनंतनाग में ऋषिमोल साहब के मेलों के अवसर पर भी कोई मांस-मछली का सेवन नहीं करता है।

श्रीनगर में हारी पर्वत के एक छोर पर बना शारिका देवी का मंदिर और दूसरे छोर पर स्थापित मख्दूम साहब की जियारतगाह तथा इस पर्वत के दामन में स्थित सिक्खों का पवित्र गुरूद्वारा छटी पादशाही धार्मिक एकता की जीती-जागती मिसाल हैं। इन्हें श्रीनगर शहर के किसी भी छोर से देखा जा सकता है। यहाँ का प्रत्येक धर्मावलम्बी 'मख्दूम साहब' या 'दस्तगीर साहब' की कसमें खाकर इन दरगाहों, खानकाहों के प्रति अपना विश्वास प्रकट करता है।

1372 ई. में ईरान से आए सैयद अली शाह हमदानी ने सबसे पहले कश्मीर में इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार किया। वितस्ता नदी के किनारे बसी उनकी ख़ानकाह की बनावट जहाँ बौद्ध-विहारों से मेल खाती है वहीं इस ख़ानकाह की एक दीवार पर सिंदूर पुता है, जहाँ कश्मीरी पंडित महाकाली की पूजा करते हैं। इस ख़ानकाह के प्रति दोनों धर्मों के लोगों में अपार श्रद्धा है।

आपसी रवादारी, भाईचारे के दिग्दर्शन हमें विश्व-प्रसिद्ध अमरनाथ गुफ़ा की पवित्र यात्रा के अवसर पर भी देखने को मिलते हैं। इस गुफ़ा को मलिक वंशीय एक मुसलमान चरवाहे ने खोज निकाला था। तबसे लेकर आज तक हर साल यहाँ चढ़ने वाले चढ़ावे का एक-चौथाई भाग मलिक वंशीय मुसलमान को भेंट किया जाता है। इसके अतिरिक्त डल-झील के किनारे हज़रतबल में संगमरमर के पत्थरों

गुरुद्वारा छटी पादशाही

हजरतबल दरगाह

से बनी दरग़ाह है जो देश-विदेश से आए लोगों को आकर्षित करती है। यहाँ पैगम्बर हज़रत मोहम्मद (सल्लः) के सिर के बाल सुरक्षित हैं। इन पवित्र आस्थापनों के अतिरिक्त ऐशमुकाम में स्थापित ऋषि ज़ैनुदीन की दरग़ाह और अनंतनाग में मार्तंड मंदिर हिंदू और मुसलमान दोनों के लिए श्रद्धा का केंद्र हैं।

यहाँ के सूफी-संतों और कवियों के काव्य में भी भावनात्मक और साम्प्रदायिक एकता के स्वर मुखरित हुए हैं। ललद्यद (14वीं सदी) कश्मीरी भाषी पहली कवयित्री हैं जिन्होंने अपने वाखों में कश्मीर के हिंदू और मुसलमानों की सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक भावनाओं का समावेश किया। उनके काव्य में वर्णित शिव, परमतत्व हैं। वह निर्गुण और निराकार हैं। वह सर्वत्र व्याप्त हैं। शिव ही सर्वस्व हैं। वह प्रत्येक कण में विद्यमान हैं। ललद्यद आवाह्न करती है यदि बुद्धिमान हो, तो हिंदू-मुसलमान का भेदभाव भूलकर उसकी शरण में आ जाओ :-

शिव छुई थ्लि-थ्लि रोज़ान,
मो ज़ान हयुन्द त मुसलमान,
त्रुक अ्यि छुक ति पान परज़िनाव,
सोयि छ्यि साहिबस ज़ानी ज़ान।

गीता में उन्हें पूर्ण विश्वास था। वह गीता के निष्काम कर्मयोग को व्यावहारिक रूप में देखना चाहती थीं। वेदांत और हठयोग का प्रभाव भी उन पर देखने को मिलता है।

ललद्यद के समकालीन कवि शेख़ नुरुद्दीन हिंदू-मुस्लिम संस्कृति के प्रतीक पुरुष हैं। वह एक समन्वयकारी संत थे।

उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता और चारित्रिक पवित्रता पर बल दिया। वह हिंदू और मुसलमान दोनों को संदेश देते हुए कहते हैं कि उस परमतत्व से मिलन सम्भव है लेकिन उसके लिए राग-द्वेष की भावना को छोड़ना होगा :-

दब य्लि दयुतुम रागन ति देश्यन,
अ्दि सुई म्य लोबुम् पानस निशे।

कश्मीरी पंडित इन्हें सहजानंद और मुसलमान नुन्द ऋषि के नाम से पुकारते हैं। इनकी ज़ियारत च्रार-शरीफ़ (बड़गाम) में स्थित है। यहाँ आज भी प्रत्येक सम्प्रदाय के लोग अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए दुआएं मांगने आते हैं। कश्मीरी काव्य में दार्शनिक और आध्यात्मिक विचारधारा को आगे ले जाने में ललद्यद और नुन्द ऋषि का विशेष योगदान रहा है। शैवमत, ब्रह्मवाद, अद्वैतवाद और गीता के कर्मयोग को इन सूफ़ी-संतों ने अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है। ललद्यद के द्वारा कहे गए वाख़ और नुन्द ऋषि के शुक्र, हिंदू हो या मुसलमान सभी के घरों में समान रूप से गाए और सुने जाते हैं।

यह ध्यातव्य है कि ज़ैन-उल-आबिदीन (1420-1470 ई.) जिन्हें यहाँ के निवासी प्रेमवश 'बड़शाह' के नाम से संबोधित करते हैं, ने हिंदुओं को धार्मिक आजादी प्रदान की और अपने दरबार में ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। इन्हीं के राज्यकाल में मुल्ला अहमद ने महाभारत का फ़ारसी में अनुवाद किया। सम्राट अकबर (1586 ई.) के दरबार में पीर, मुल्ला, ब्राह्मण सभी को समान अधिकार प्राप्त था। दारा शिकोह ने परीमहल बनवाकर उसमें अपने गुरू अखुन्द मुल्ला शाह के लिए ज्योतिषशास्त्र का स्कूल खोला। इसमें उन्होंने एक पुस्तकालय स्थापित किया और पुराणों का संस्कृत से फ़ारसी में अनुवाद करवाया।

प्राचीन काल से ही कश्मीर संस्कृत-साहित्य के अध्ययन-अध्यापन का केंद्र रहा है। भारतीय काव्यशास्त्र के प्रायः सभी काव्यांगों-रस, अलंकार, ध्वनि, रीति का प्रणयन एवं विकास कश्मीर में ही हुआ था। प्रसिद्ध काव्याचार्य-आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त, भामह, मम्मट, वामन, रूय्यक, क्षेमेन्द्र, महिमभट्ट आदि का संबंध कश्मीर से ही रहा है। हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक कश्मीर के प्रसिद्ध कवि गुलाम अहमद 'महजूर' (सन् 1885-1952) मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर और गुरूद्वारा के लिए एक ही प्रवेश द्वार बनाने की चाहत रखते हैं। वह हिंदू और मुसलमान में कोई भेद नहीं मानते। उनकी नजर में यदि मुसलमान दूध की तरह है तो हिंदू शक्कर के समान है। दोनों को एक जगह मिलाकर देखो तो एक अनोखी मिठास पैदा होती है:-

दोद छु मुस्लिम ह्योन्द छु शकर साफ-साफ।
दोद त बेयि शकर रलाविव पान वोन। - महजूर

ऐसा हिंदू-मुस्लिम, गंगा-जमुनी संस्कृति का सुखद मिलन अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

* मोहल्ला-साजगरीपोरा
हवल, श्रीनगर-190011

खीर भवानी मंदिर-छायांकन: डॉ. वीरेन्द्र बांगरू

डॉ. बीना बुदकी *

कश्मीरी लोक संगीत एवं लोक नाट्य

कश्मीर में संगीत का प्रचलन शकों, अन्य विदेशी जातियों और जनजातियों के प्रवेश के साथ ही हुआ। उनके साथ उनके राग और अन्य लोकगीत भी आए। जिस तरह देश के अन्य भागों में संगीत का विकास मंदिरों में हुआ उसी तरह कश्मीर में भी लोक संगीत का विकास मंदिरों में या बौद्ध विहारों में हुआ। कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में लिखा है कि कश्मीर में सर्वप्रथम संगीत की स्वर लहरियों को बौद्ध लामाओं ने लोकप्रिय बनाया था। धीरे-धीरे ये लामा राजदरबारों में भी प्रवेश पाने लगे और वे राजदरबारों में अपने संगीत को प्रचलित करते रहे। कालांतर में यह संगीत शाही दरबार की विलासिता बन गया। परिणामस्वरूप संगीत तथा नृत्य मंडलियाँ बनने लगीं और ये मंडलियाँ जगह-जगह अपनी कला का प्रदर्शन करने लगीं। बौद्ध राजा धर्म के प्रशंसक होने के साथ-साथ शिव-भक्त भी होते थे। इसलिए शिव पूजा में भी विभिन्न वाद्यों का प्रचलन हुआ।

संगीत को सबसे अधिक प्रश्रय देने का श्रेय सुलतान जैन-उल-आब्दीन (बड़शाह) को जाता है। बड़शाह धार्मिक सहिष्णुता और न्यायप्रियता के लिए मशहूर रहे। उनके शासनकाल में ताशकंद, समरकंद, काबुल, पंजाब और

ताशा (साभार: संगीत नाटक अकादेमी)

तुम्बकनारी (साभार: संगीत नाटक अकादेमी)

दिल्ली से संगीत शास्त्री पहुँचते थे। उनके शासनकाल में संगीत कला की विभिन्न शैलियों का बहुत अधिक प्रचलन हुआ। उन्हीं के जमाने में दस तारों वाले कश्मीरी वाद्य 'तम्बूरी' का आविष्कार हुआ। बड़शाह के शाही दरबार में गवैयों के अलावा गायिकाएं भी काफ़ी संख्या मौजूद होती थीं। इनमें दीपमाल, रत्नमाल, नृपमाल के नाम उल्लेखनीय हैं। ये गायिकाएं गायन-वादन के साथ-साथ नृत्य कला में भी पारंगत थीं। बड़शाह के शासन काल में कश्मीरी संगीतकारों का संपर्क ग्वालियर के संगीतकारों से भी हुआ था। शाही दरबार में 12 हजार संगीतकार थे, जिनमें बहुत से संगीतकार ईरान और तूरान के भी थे। प्रतिदिन उनकी महफिलें सज़ा करती थीं।

बड़शाह के दरबार में संगीतकारों के प्रशिक्षण के लिए दक्षिण से भी कई संगीतकार बुलाए जाते थे और उन्होंने केदार, गौड़, गंधार, देश, वाडगला और मालवा आदि जैसे अनेक कर्नाटकी रागों का प्रचलन किया। बड़शाह के बाद चक्रवंशीय राजाओं का शासन आया। मिर्जा हैदर तुगलक ताशकंद से कश्मीर में प्रवेश करने के बाद यहाँ राजा

बने। उनके समय में भी कश्मीरी संगीत का बहुत विकास हुआ। उन्होंने तम्बूरी, ढोलकी, बाँसुरी और बीन बजाने में खासी दिलचस्पी ली। उनके दरबार में हब्बा खातून नामक एक महिला थी, जिसने अनेक राग-रागनियों में संगीत प्रस्तुत किए। कश्मीर में सूफ़ियाना कलाम भी बहुत मशहूर रहा। यह प्राय: सूफ़ियों द्वारा रचित गीत-संगीत होता था। बड़शाह के शासनकाल में इस संगीतधारा का बहुत विकास हुआ क्योंकि इसी दौरान ईरान और तूरान से अनेक सूफ़ियों ने प्रवेश किया और उन्होंने अपनी संगीत कला का काफ़ी प्रचार किया। सूफ़ियाना संगीत में नृत्य के साथ-साथ गीत भी गाया जाता है। आजकल यह गीत बिना नृत्य के भी गाया जाता है। सूफ़ियाना संगीत में साजे कश्मीरी, कश्मीरी सितार और तबला–ये तीन वाद्य यंत्र इस्तेमाल में लाए जाते हैं। कश्मीरी लोक नृत्य में 'रॉफ़' के अलावा 'भांड पाथर' प्रमुख लोक नृत्य हैं। लोक नृत्यों में 'दंभाली' एक ऐसा नृत्य है जिसमें उछल-कूद अधिक होती है। प्राचीनकाल में इसे प्राय: वातल यानी भंगी गाते थे इसलिए इसको 'वातल दंभाली' कहा गया।

कश्मीरी लोक नाट्य की बहुत अच्छी और आकर्षक परम्परा रही है। इसके अंतर्गत, छकरी रॉफ़, वनवुन, लीला, नाते शरीफ, न्यंदबोथ, चलंत और शेषरंग आदि अनेक प्रकार के लोकनाट्य प्रचलित हैं।

कश्मीर में लोक संगीत का प्रचलन प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है। कल्हण की राजतरंगिणी में भी इसका

नूट

खंगलिंग लिंग

(साभार: संगीत नाटक अकादेमी)

लोक नाट्य भांड पाथर का मंचन (साभार: संगीत नाटक अकादेमी)

उल्लेख मिलता है। मिहिर कुल के राजाओं के यहाँ ऐसी संगीत प्रणाली प्रचलित थी जिसमें मिट्टी के बर्तन, पीतल के मटके, चिमटा और अन्य ऐसी ही वस्तुओं का उपयोग वाद्य यंत्रों के रूप में किया जाता था। छकरी के बारे में कई विद्वानों का मत है कि इसके गाने-बजाने का प्रचलन खेतों-खलिहानों में हुआ। प्रचीन-काल में किसान, छकरी का गायन खेतों में ही करते थे। उस समय हर गाँव का अपना-अपना छकरी दल होता था और कई गाँवों में एक से अधिक छकरी दल होते थे। इन छकरी दलों को शादी-विवाह या अन्य उत्सवों पर अतिथियों का मनोरंजन करने के लिए बुलाया जाता था और इनकी लोकप्रियता इतनी थी कि ये शहरों में भी अपने गायन प्रस्तुत करते थे। छकरी में प्राय: 5 या 6 गायक या गायिकाएं होती हैं जिनमें एक मुख्य गायिका या गायक होता है। मुख्य गायिका या गायक गायन प्रारम्भ करता है और अन्य गायक-गायिकाएं उसी के पद को दोहराते हैं। पद के अंत में जो वाद्य यंत्र बजाए जाते हैं उनकी लय बढ़ती जाती है और इसके साथ-साथ छकरी में नाद सौंदर्य का अद्भुत तीव्र रूप देखने को मिलता है। आजकल छकरी में सारंगी, तुम्बकनारी, घड़ा, पीतल की प्यालियाँ, हारमोनियम आदि वाद्य यंत्र उपयोग में लाए जाते हैं। छकरी में प्राय: गजल और भावप्रवण गीत गाए जाते हैं। इनमें संयोग-वियोग, नख-शिख वर्णन आदि के गीत शामिल होते हैं। छकरी गाने वाले प्राय: महजूर, रसूलमीर, न्याम्सोब आदि के गीत और गजल का गायन करते हैं। छकरी किसी

न किसी आख्यान पर आधारित होती है। किसी आख्यान को लेकर उस पर छकरी का कार्यक्रम बना लिया जाता है जो दो घंटे से भी अधिक समय तक चलता है। इस प्रकार के आख्यानों में ग्रीसक्रूर, क्रालक्रूर, जिन्यमजूर, अकनंदुन आदि शीर्षक पर छकरी प्रसिद्ध है।

शादी-ब्याह, यज्ञोपवीत के अवसर पर विशेषकर मेंहदीरात 'छकरी' के गीतों से गूँजती है। आजकल गवैयों को बुलाने का फैशन बन गया है। ये गवैए पूरी रात गीतों की गूँज से माहौल को रंगारंग बना देते हैं। छकरी का एक गीत है –

क्यतुं छुक नुन्दबॉनय, वलो मॉशूक म्याने।
बॅ ऽ मॉ मर दॉदि च्याने, वलो मॉशूक म्याने।
बॅ सूरत छॅक च्य परी,
च्य शूबनॅय ज़ाम ज़री,
क्यमूँ तेवीज कॅरी, वलो माशूक म्याने।

(ए मेरी सुंदर साथी कहाँ हो तुम? मैं तुम्हारे विरह में कहीं मर न जाऊँ। ए मेरी माशूक वापस आ जाओ। शक्ल से तुम परी जैसी लगती हो, तुम्हारे बदन पर ज़री के कपड़े सज़ते हैं। तुम्हें मुझसे दूर करने के लिए किसी ने जादू-टोना तो नहीं किया है, ए मेरे महबूब कहाँ हो तुम वापस क्यों नहीं आते?)

नाज़नीन यार म्यॉनि यिं छुं मुलाकात
लॅगय यिं छु मुलाकात ....
केंयसिं छि बारात यिंवान्
केंयसिं छि जिनाज़ु निवान
केंह छु सदा नॉल दीवान
केंयॅसि छिया म्यॉजिराथ
नाज़नीन यार म्यॉनि यिं छुं मुलाकात

(ए मेरी मृगनयनी यह पल, यह मुलाकात ही सब कुछ है। कल किसने देखा है? क्योंकि किसी की बारात आती है तो कहीं जनाज़ा उठता है। कोई पल-पल विरह की अग्नि में जल रहा होता है और किसी के लिए जिंदगी खुशियों की सौगात लाती है।)

कश्मीर का सबसे लोकप्रिय संगीत 'रॉफ' है। रॉफ का शाब्दिक अर्थ है नाचना और गाना। लोग टोलियों में बंटकर

रबाब

शहतार

(साभार: संगीत नाटक अकादेमी)

नृत्य के साथ इस तरह के गीत गाते हैं। इनमें मुसलमान स्त्रियों का सामूहिक गान भी प्रचलित हैं। मुस्लिम घरों में इस प्रकार के गीत प्राय: विवाह, किसी धार्मिक या शुभ अवसर पर गाए जाते हैं। मुसलमान स्त्रियाँ सुंदर वस्त्र पहनकर, सज-धजकर घर के आँगन में दो टोलियों में बँट जाती हैं और अपने दाएं और बाएं खडी सहेलियों के कंधों पर बाहें डालकर, कभी दाया पैर तो कभी बायां पैर आगे बढ़ाकर एक-दूसरे के सामने खड़ी हो जाती हैं और पहली टोली की स्त्रियाँ जब रॉफ का प्रथम चरण गाती हैं तो दूसरी टोली की स्त्रियाँ उसको अपनी मीठी लय में दोहराती हैं। रॉफ गीत गाने की परंपरा मुस्लिम शासनकाल से ही प्रचलित रही है। इन गीतों में फारसी और अरबी के शब्दों की प्रचुरता होती है। इस गायन में संयोग-वियोग, नख-शिख वर्णन और इस्लाम धर्म के उच्च आदर्शों को शामिल किया जाता है। रॉफ गीतों में वाद्य यंत्रों का उपयोग नहीं किया जाता। रॉफ का गायन ईद, विवाह या किसी उर्स आदि के अवसर पर किया जाता है। रॉफ़ के कुछ गीत इस प्रकार हैं–

ईद आयि रॅसरसय ईदकाह वसॅवय ईदकाह वॅसवय
ईद आयि सोरान कोनॅय छॅव नेरान, कोनॅय छॅव नेरान

(सखियो ईद धीरे-धीरे आ गई है, चलो ईदगाह चलें, ईद समाप्त होने को आई, तुम लोग निकल क्यों नहीं रही हो, क्यों नहीं निकल रही हो?)

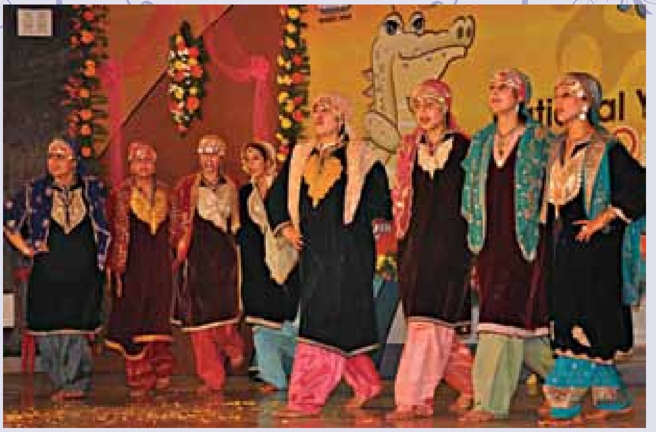

रॉफ नृत्य

कुकिली रौव त्राव मंज़ पोशवननय
माहराज़ आव मेहरूनये लो,
बुलबुल डीशिथ वॉग पोशन्नय
शीरिथ रोज़तय हॉ हीतनी,
माहराज़ आँव मेहरूनए लो,
फरहाय छारान छय शारीनिए,
माहराज़ ऑव मेहरूनये लो,

(हे कोयल सी दुल्हन तुम फूलों के बगीचे में रॉफ़ नृत्य करो क्योंकि महाराज यानी दूल्हा तुम जैसी सुंदरी से ब्याह रचाने के लिए आया है, जिस प्रकार पुष्प वाटिका में पुष्पों को देखकर बुलबुल प्रसन्न होती है उसी प्रकार दूल्हा-दुल्हन को देखकर प्रसन्न हो रहा है। हे सुंदरी तुम सज-धज कर रहो क्योंकि तुम जैसी सुंदरी के लिए ही तो वह आया है।)

कश्मीरी लोक संगीत का प्रमुख आकर्षण है 'वनवुन'। प्रायः शुभ अवसरों पर इसके गाने की प्रथा है। इसका गायन हिंदू और मुस्लिम, दोनों ही स्त्रियाँ करती हैं। हिंदू स्त्रियाँ विवाह, मुंडन, यज्ञोपवीत आदि के अवसरों पर इसका गायन करती हैं, जबकि मुसलमान स्त्रियाँ विवाह और ख़तनहाल जैसे सुअवसरों पर ये गीत गाती हैं। वनवुन के पदों का गायन दुल्हन की आरती उतारते समय, दुल्हा-दुल्हन के पैरों पर मेंहदी लगाते समय या दुल्हन को विदाई देते समय या बारातियों के आगमन के समय गाया जाता है। वनवुन में हिंदू स्त्रियों के गाने का ढंग मुस्लिम स्त्रियों के गाने के ढंग से अलग होता है। हिंदू स्त्रियों के वनवुन के बोलों में संस्कृत शब्दावली अधिक होती है लेकिन मुसलमान स्त्रियों के वनवुन में फ़ारसी मिश्रित शब्दावली का ज्यादा प्रचलन होता है। वनवुन गायन करते समय कोई बुजुर्ग महिला मुख्य पद का उच्चारण धीमी आवाज में लय बनाते हुए करती है और उसके बाद अन्य स्त्रियाँ उस पद को दोहराती हैं। लेकिन मुस्लिम स्त्रियाँ वनवुन थोड़ा भिन्न ढंग से गाती हैं। वनवुन गाने से पहले वे दो टोलियों में बँट जाती हैं और पहली टोली वनवुन के जिस पद का उच्चारण करती है, दूसरी टोली उसी पद को दोहराती है। इस प्रकार वनवुन इतना रसमय हो जाता है कि बस तरन्नुम के साथ गाते-गाते यह सिलसिला चलता रहता है। यह आवश्यक नहीं है कि वनवुन किसी कवि की रचना ही हो, क्योंकि वनवुन गाते समय स्त्रियाँ अपनी कल्पना से भी इसके पद गढ़ती रहती हैं। वनवुन का एक गीत है–

कनि फोट पोन्य तॅय वनि कुल ज्ञोयय अनिगाश ओयय त लॅसेनय।
योन्सस चॉनिस सोनसुंद्य टेचे यिं कॅस ड्यकॅ बजे ज़ाव
योन्यस चॉनिस सोनसुंद्य चूने कुकिल कोतर बचे ज़ाव
योन्यस चॉनिस मोक्तॅव्य रोन्ये यि कस राजॅ रयेंन्ये

(पहाड़ों पर पत्थर में से पानी निकलकर बह रहा है जिससे जंगल में अनेक पेड़ उग आए हैं, अब जीवन में अंधकार समाप्त हो गया है, क्योंकि पुत्र जन्म ने चारों ओर प्रकाश फैला दिया है चिरंजीवी रहो, तुम्हारे जनेऊ में सोने के टीके लगे हैं यह किस भाग्यशाली के यहाँ उत्पन्न हुआ है, तुम्हारे जनेऊ में मोतियों के घुँघरू है यह किस राजरानी के यहाँ उत्पन्न हुआ है?)

हवालय करमख पीरि पीरानैस
चीर थफ करिज्यस दॉमानस

(तुम्हें पीरों के पीर (पति) के हवाले कर दिया है उसका दामन कसकर पकड़ लेना।)

कश्मीरी लोक संगीत की धारा का एक प्रमुख अंग है 'लीला'। इस संगीत प्रणाली के अंतर्गत देवताओं की स्तुति, भजन-अर्चना आदि से संबंधित राग-रागिनियों का गायन होता है। इनका गायन प्रायः देव-स्थानों पर किया जाता है। लेकिन विवाह आदि उत्सवों पर इसका गायन घरों में भी किया जाता है। लीला गायन में करताहल, तुम्बकनारी, घड़ा या प्याले, चिमटा और थालियों आदि वाद्य उपकरणों का इस्तेमाल

"कश्मीरी लोक संगीत की धारा का एक प्रमुख अंग है 'लीला'। इस संगीत प्रणाली के अंतर्गत देवताओं की स्तुति, भजन-अर्चना आदि से संबंधित राग-रागिनियों का गायन होता है। इनका गायन प्राय: देव-स्थानों पर किया जाता है।"

किया जाता है। कश्मीरी में लीला की रचना करने वाले व्यक्तियों में कृष्णजी राजदान, परमानंद, लक्ष्मणदास, हरिहर कौल मुख्य हैं। इनकी लीलाओं का मुख्य विषय प्राय: भक्ति-दर्शन और देव-स्तुति आदि रहता है। जिस तरह कश्मीरी पंडितों के घरों में लीला का गायन होता है, उसी प्रकार मुसलमानों के यहाँ 'नाद शरीफ़' का गायन होता है। नाद शरीफ़ का शाब्दिक अर्थ है–खुदा से दुआ माँगना। इन गीतों में हज़रत मुहम्मद के अलावा मुसलमानों के अन्य पैगंबरों के बारे में भी बखान किया जाता है। इसका मुख्य पद प्राय: मुख्य गायक गाता है और उसके साथ-साथ अन्य गायक उसे दोहराते जाते हैं। नाद् शरीफ़ गायन की परंपरा मुसलमानों के आगमन के साथ ही हुई। इसमें अरबी और फ़ारसी के शब्दों का बाहुल्य मिलता है। नाद़ों के रचेताओं में नाज़िम, शम्स फ़कीर, महमूद गामी, हकानी आदि मशहूर हैं।

कश्मीरी हिंदू कीर्तन या किसी शुभ दिन पर अक्सर 'लीलाएं' गाते है। लीलाओं की शुरुआत गणेश जी की स्तुति से की जाती है। जैसे–

आयसय शरण करतम क्षमा, ओं श्री गणेशाये नम:
गणपत गणेश्वर हे प्रभो, कलिराज़ राज़न हुन्द विभो,
पज़ि लोलु पादन तल नम:, ओं श्री गणेशाये नम:,
गुडनीय च्यय छुय आधिकार, कलिकालकुय च्येय ताजदार

(हे गणपति हम तेरी शरण में आए हैं हम पर दया करो। क्षमा करो, हे प्रभु तुम सभी देवों में सर्वोपरि हो इसलिए तुम्हारी पूजा ही पहले की जाती है, हम स्वच्छ हृदय से तुम्हारे चरणों में है।)

तार-वुन, छुह, केरनव-हक, दित, छुह वनान्,
काँह मांसे, तेंरि-व अपोर
पत तर-वन्यव,-आलुस म करि-व, उद्यम तरि-व अपोर,
करनावि, तार छुनॅह, गरि-गरि बनन वुन्य क्यन-छॅह,
वीला जानन्टशतुर त्यथ साथ, मॅह राव्-रेखि,
बुज़िथ त तॅरि व अपोर

वीणा (साभार: संगीत नाटक अकादेमी)

(ईश्वर मनुष्य को संबोधित करते हुए कहता है कि नदी के उस पार मेरी नाव है, सत्य की उस राह पर जो भी आना चाहता है, आए, यह मौका बार-बार नहीं मिलता है। आलस्य को छोड़कर उठो और आओ। नासमझ तथा बहरे बनकर चुप मत बैठो बार-बार ऐसा मौका नहीं आता है।)

'न्यंदबोथ' का अर्थ है निराई का गीत। जब किसान खेतों में धान की निराई करने जाते हैं तो वे सामूहिक रूप से यह गीत गाते हैं। ये गीत बहुत ही भावप्रवण होते हैं। इन गीतों का मुख्य विषय कृषि की सफलता को लेकर होता है। इन गीतों में कहीं-कहीं संयोग और वियोग श्रृंगार भी देखने को मिलता है। ये गीत प्राय: नृत्य के साथ-साथ गाए जाते हैं। लेकिन अब इनका प्रचलन बहुत कम हो गया है। इनके साज में ढोल, मटकी और चिमटा मुख्य हैं। खेतों में धान की पौध के गट्ठर बाँधते वक्त तथा निराई-कटाई के वक्त ये गीत गाए जाते हैं–

बोय ओय बेरे-बेरे, बॅज कॉदस करी वल्य वल्य
बॉयि लगयो दुसकिस रॉदस, थॅज कॉदस करो वल्य
मोल ओए बेरे-बेरे थॅज कादस करी वल्य वल्य

(हे बहना-तुम्हारा भाई मुंडेर के रास्ते से आया है तुम शीघ्रता से धान की पौध के गट्ठे बना लो, भाई के आने का सुनकर बहन कह उठती है-हे मेरे भाई तुमने पश्मीने की चादर ओढ रखी है जो तुम्हारे लंबे कद को और भी सुशोभित कर रही है, तुम्हारे इस कद पर मैं बलिहारी जाऊँ, पिता भी इसी रास्ते से आ रहे हैं इसलिए गट्ठर जल्दी बना लो।)

संतूर (साभार: संगीत नाटक अकादेमी)

यितो म्यानि यावन चूरो लो लो
करयो गूर तॅ गुरे लो लो
हा पानह क्या करुथ कारोबार, नाहक गोख
मुल्कस मन्ज बज़्गार, रावरोवुथ टोठ संसार

(फसल कटने पर पौधे अपनी विरह को व्यक्त करते हुए कहते हैं, मेरे यौवन को चुराने वाले तुम आ जाओ मैं तुम्हें लोरियाँ गाकर सुलाऊँ। हाय मेरे इस तन ने कैसा कारोबार किया बिना बात के देशभर में बदनाम भी हुए और इस प्यारे संसार को खोना भी पड़ रहा है (अर्थात पेड़ जैसे बढ़ते है उनकी शान छलकती है उनकी खुशबू दूर-दूर तक फैलती है लेकिन फसल कटते ही वह इस संसार को अपनी खुशबू और नाम के साथ छोड़ देते है))।

'चलंत' कश्मीरी लोक संगीत का एक प्रमुख आकर्षण है। चलंत की ही तरह से 'शेषरंग' नाम का लोकगीत भी प्रचलित है। ये छकरी की तरह से ही गाया जाता है। यहाँ के कई संगीत शास्त्रियों ने चलंत, शेषरंग और अनेक लोक संगीत प्रणालियों को विकसित करने का बहुत प्रयास किया। इन संगीत शास्त्रियों में गुलाम नबी डोलवाल, ज़लाल, गिलानी, गुलाम अहमद सोफी, मोहम्मद इब्राहीम भट्ट, हबीबुल्लाह बम्बो, गुलाम अहमद डार, गुलाम कादिर भट्ट, अली मोहम्मद शेख, गुलाम अहमद भट्ट, अब्दुल अज़ीज़ खाँ, द्वारका नाथ, गोपीनाथ भट्ट, हबीबुल्लाह, अब्दुल ख़ालिक, सनाउल्लाह, सोमनाथ, जून बेगम, माहताब बेगम, इसीना अख्तर आदि नाम प्रमुख हैं।

स्वामी नन्दलाल जी की वाणी में चलंत इस प्रकार है –

गटि मंज गाश अनुन गव, नटि नटि सारुन पोन्य
नेराश रूज़िथ, आश पाश नाश छारून
स्वय गयि सूहम हमसू ची ज़ान
वैराग द्राति सत्य राग गछि लोलुन,
फलि फलि सोंवरून हेलि अम्बार

(अंधकार में से प्रकाश लाना है घट-घट जल ढोकर लाना है निराश रहकर आशा की नई किरणें खोजनी हैं स्वयं 'सोहं अहम् सो' का ज्ञान प्राप्त करना है वैराग्य दरांती से राग की काट-छाँट करके दाने-दाने करके राशि एकत्रित करनी है अर्थात् कर्म करने ही फल प्राप्त किया जा सकता है।)

नबीशाह जिलानी के उर्स पर यह गीत गाने की प्रथा है:

नूरुक परतव प्यव आसमॅनी,
असि बूज़्झ शाह जीलानी आव,
कॅलिमय महमूद गोख दपॅनी,
शेखन त वलियन इकरार आव
तामत औसुख च रुहॅनी, नोहस तूफान मोकलेयि नाव
बादशाह सॅरी मोहताज चॅनी,
दरगाह चॅनी छि खाक डुवैनी
शूबॅवन्य जाय छि बगदाद जाय बगदाद चॅनी
असि बूॅज़् शाह जीलानी आव।

(जिस प्रकार उनके दिव्य प्रकाश से यह पृथ्वी प्रज्जवलित हुई, सारा विश्व प्रकाशमान हो गया है। महमूद स्वयं उन्हें न्यौता देने गए थे, जिसे सभी शेखों तथा वलियों ने स्वीकार किया, तुम रुहानी हो सारे बादशाह तुम्हारे रहमो करम के मोहताज हैं तुम्हारी दरगाह में झाडू लगाते हैं तुम्हारी जगह बगदाद में है हमने सुना है कि शाह जिलानी आ रहे हैं।)

* 952/302, ए.सी.सी. अपार्टमेंट,
शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-I,
सहिबाबाद, गाजियाबाद-201002

डॉ. दिलशाद जीलानी *

कश्मीरी लोक नाट्य : भांड पाथर

कश्मीर में कई शताब्दियों से लोक-नाट्य 'भांड पाथर' खेलने की परम्परा रही है। भांड पाथर अर्थात् भांडों द्वारा खेला जाने वाला कश्मीर का पारम्परिक लोक नाट्य। भांड एक साथ नट, गायक, अभिनेता एवं विदूषक भी होते हैं। ये प्रायः टोलियों में गाँव-गाँव घूमते हैं तथा नृत्य एवं गायन द्वारा लोगों का मनोरंजन करते हैं। विशेष उत्सव, त्योहार तथा विवाह आदि के अवसरों पर इन्हें नृत्य एवं गायन के लिए बुलाया जाता है। प्रायः प्रत्येक गाँव में एक-एक भांड हुआ करता है, परंतु इनकी अधिक संख्या वाहधोर गाँव में निवास करती है। कश्मीर के सभी भांड मुसलमान हैं। ये इन लोक नाट्यों के स्वयं वाहक तथा स्रष्टा भी हैं। इनके अपने गुरू तथा परम्पराएं होती हैं। वस्तुतः प्राचीन काल में यह जाति सारे कश्मीर में फैली हुई थी किंतु आजकल ये नट अनंतनाग जिले के अकिनगाम गाँव, श्रीनगर जिले के वाहधोर गाँव और बारामुला जिले के बुमई गाँव में ही अधिकतर रहते हैं।

इस नाट्य में अभिनय करने वाले कलाकार अपने प्रभावपूर्ण रंग-बिरगें परिधानों, भाव-भंगिमा, कटाक्ष आदि से किसी भी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक समस्या को मनोरंजक ढंग से जनता के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। कश्मीर में यह नाट्य तब अस्तित्व में आया जब यहाँ राजनैतिक अस्थिरता के कारण नाट्य-साहित्य समाप्त होने तथा रंगमंच का दीपक बुझने को था। उस समय कुछ साहसी नाट्य-कलाकारों ने यहाँ के रंगमंच की परंपरा को जीवित रखने के लिए अनथक प्रयास किए। इस प्रकार कश्मीरी नाटक को धीरे-धीरे भांडों ने अपना लिया। मुगल शासन काल में यहाँ के भांड कलाकारों को काफी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इसी दौरान भांडों ने प्रत्येक गाँव में जाकर अपनी कला का प्रदर्शन किया, किंतु सिक्ख तथा अफगानों के राज्यकाल में इस नाट्य कला को प्रोत्साहन प्राप्त न हो सका।

शेर पाथर (साभार: संगीत नाटक अकादेमी)

भांड प्रायः समाज के प्रति इतने सचेत एवं जागरूक रहे हैं कि सामाजिक जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधि का चित्रण भी वह एक यथार्थवादी कलाकार की भांति अपने आकर्षक अभिनय तथा प्रभावपूर्ण वाणी द्वारा करते हैं। ये अपने इतिहास के प्रति भी सजग रहे हैं तथा रंग-तत्वों के अनोखे समन्वय द्वारा अपने आस-पास के जीवन की बेहूदगियों को नाटक में पकड़कर अपनी रचनाशीलता का एक प्रभावशाली आयाम उद्घाटित करते हैं।

भांड-पाथर में पात्रों की संख्या छः-सात से अधिक नहीं होती है। मसखरे प्रत्येक भांड-पाथर में हुआ करते हैं। कभी ये दर्शकों से मजाक करते हैं तो कभी अन्य पात्रों की नकल उतारते हैं। इनके संवादों और चेष्टाओं से हास्य की सृष्टि होती है। इस हास्य का स्तर निम्न होता है। मसखरों के अभिनय में मूक अभिनय और उछल-कूद के तत्व भी पाए जाते हैं। कभी-कभी इनका पहनावा देखकर ही हंसी आ जाती है। किसी-किसी पाथर में मसखरे सूत्रधार की भूमिका भी निभाते हैं। पाथरों में स्त्रियों का अभिनय स्त्री वेशधारी पुरुष ही करते हैं।

भांड-पाथर में 'सुरनै' (शहनाई) को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। शहनाई के साथ नक्कारा और ढोल भी बजाए जाते हैं। ये इस कला के मुख्य वाद्य माने जाते हैं। शहनाई पात्रों के प्रवेश, प्रस्थान या किसी विशेष अभिनय के समय बजाई जाती है। विभिन्न पाथरों में शहनाई पर विभिन्न मुकाम (राग) पेश किए जाते हैं। प्रत्येक पाथर के अंत में भांड, राजा और प्रजा, अभिनेता और दर्शक, ग्रामीण और नागरिकों सभी के लिए दुआ माँगते हैं। 'भांडों की तरह दुआ माँगना' कश्मीरी भाषा में मुहावरा भी बन चुका है।

यद्यपि ये भांड देवी का स्मरण करके 'भांड पाथर' खेला करते थे, परंतु फिर भी समाज में इन्हें आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। कश्मीर में आज भी नाट्य-कलाकारों को 'भांड' ही कहते हैं। किंतु अब इन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता है। यहाँ 'भांड-पाथर' के संबंध में एक किंवदंती प्रचलित है कि इनके पूर्वजों (अकिनमाम पंडित) में से किसी को देवी ने प्रकट दर्शन देकर उसके हाथ में शहनाई थमाई तथा बजाने को प्रोत्साहित किया। यद्यपि पंडित ने उस समय शहनाई बजाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की लेकिन देवी के आग्रह पर उसने अकिनगाम के देवदार की छाया में उसके सम्मान में शहनाई वादन किया। कुछ वर्षों तक पंड़ित और उसका बेटा देवी के सम्मान में शहनाई बजाते रहे, किंतु किन्हीं कारणवश उन्होंने इसे त्याग दिया। इसके तुरंत बाद वह पंडित अंधा हो गया और लिद्दर घाटी से बाहर भटकने लगा। कुछ समय पश्चात् लिद्दर घाटी के मजिस्ट्रेट के स्वप्न में आकर देवी ने आदेश दिया कि पंड़ित को पुन: अकिनगाम वापस लाया जाए। वहाँ पहुँचने पर पंड़ित की आँखों की रोशनी वापस लौट आई। तभी से अकिनगाम में 'भांड-पाथर' नाट्य की परम्परा को जीवित रखने के प्रयास होते रहे, जिसमें शहनाई की स्वर लहरियाँ गूँजने लगीं। लेकिन ये कलाकार इस कला का विकास सफलतापूर्वक न कर सके। क्योंकि न तो इनके पास नाटककार थे और न कुशल अभिनेता। वे स्वयं नाटकों की रचना करते तथा उसका अभिनय भी करते थे। इनके नाटकों के संवाद निम्नस्तरीय होते थे, किंतु बाद में जिन 'भांड पाथर' की रचना की गई, वे उच्च स्तरीय थे। यहाँ तक कि राजा-महाराजा भी इसकी ओर आकर्षित हुए। कहा जाता है कि जब महाराजा गुलाब सिंह ने कश्मीर में प्रवेश किया था तो उन्हें यहाँ की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं की जानकारी इसी 'भांड-पाथर' को देखकर ही प्राप्त हुई थी।

"भांड प्राय: समाज के प्रति इतने सचेत एवं जागरूक रहे हैं कि सामाजिक जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधि का चित्रण भी वह एक यथार्थवादी कलाकार की भांति अपने आकर्षक अभिनय तथा प्रभावपूर्ण वाणी द्वारा करते हैं।"

'भांड पाथर' का सरल शाब्दिक अर्थ भांडों (नटों) द्वारा अनेक पात्रों का स्वांग भरना है। इनके द्वारा खेले जाने वाले पाथर बहुत हैं, जिनमें से कुछ प्रसिद्ध पाथर हैं: 'राज पाथर' (इसमें राजा का स्वांग भरा जाता है।), 'बट पाथर' (इसमें कश्मीरी पंडित की हू-ब-हू नकल उतारी जाती है।), 'वातल पाथर' (इसके अधिकांश पात्र भंगी (वातल) होते हैं।), 'दरज़अ पाथर' (इसमें दरद राजाओं की बीवियों का मजाक उड़ाया जाता है।), 'शिकारगाह' (इस पाथर में नट मुखौटे लगाकर विभिन्न पशुओं की भूमिका निभाते हैं।), 'गुसाई पाथर' (इसमें साधुओं की नकल उतारी जाती है।) और 'हअन्ज पाथर' (हअन्ज जाति का मुख्य व्यवसाय नाव चलाना है। यह पर्यटन व कश्मीरी संस्कृति की पृष्ठभूमि को उजागर करने का मनोरंजक साधन है।

ये सभी 'पाथर' बिना किसी मंच के आकाश तले खेले जाते रहे हैं। अभिनेता दर्शकों के मध्य से उठकर नाटक में सम्मिलित हो जाते हैं और जनता से सीधे संबोधित होते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई नट दर्शकों के

मध्य से उठकर अपनी भूमिका निभाता है तथा लौटकर दर्शकों के मध्य ही बैठ जाता है। इस प्रकार यह लोक नाट्य जन-सहयोग का अच्छा उदाहरण भी प्रस्तुत करता है।

सामान्यत: सभी पाथरों में हमें सत्ता के विरुद्ध जनसाधारण के विद्रोह की झलक भी मिलती है। यह विद्रोह हास्य के रूप में प्रस्तुत होता है। शोषित अपनी शोचनीय अवस्था पर स्वयं ठहाके लगाते हैं। अधिकांशत: भांड पाथरों में जिन पात्रों पर व्यंग्य किया जाता है, उन सभी का संबंध शोषक वर्ग से होता है। जैसे :- राजा, रानियाँ, जमींदार, ढोंगी साधु, मुगल शहजादे आदि। इस प्रकार यह लोक नाट्य विषमता के विरोधों से ही जीवन ग्रहण करता रहा है। जन-सामान्य की नाराजगी प्रकट करने और हंसकर विरोध प्रकट करने का यह सर्वसुलभ साधन था।

वास्तव में अकिनगाम के भांडों के संघटन का श्रेय श्री मोतीलाल क्यूम को जाता है। उनकी एक नाट्यकृति 'त्रुनोव' (त्रिनामधारी) 1966 में प्रकाशित हुई थी। इस नाट्यकृति में तीन नाटक 'त्रुनोव', 'मांगय', और 'मुजूल्यनिक' संकलित हैं। ये तीनों नाटक भांड-पाथर का रूपाकार लिए हुए हैं। ये मंच पर भी अनेक बार सफलतापूर्वक प्रस्तुत किए जा चुके हैं। भांड पाथर के प्राय: सभी महत्वपूर्ण तत्व जैसे- मसखरापन या हास्य-व्यंग्य, रंग, चाल, गान, नृत्य, शहनाई वादन तथा ताल और लय द्वारा नियमित गात्र-विक्षेप (बीवतमवहतंचील) अभिनय, बोलियाँ, दुआ-ए-खैल (आशीर्वाद और शुभकामना) आदि इसमें अपनी-अपनी विशेषताएं लिए होते हैं। 'त्रुनोव' में स्वतंत्रता के पश्चात् कश्मीर के गाँव में अफसरशाही के प्रवेश का मजाक उड़ाया गया है। गाँव में आए हुए एक नए अफ़सर को लेकर ग्रामीण पात्रों की प्रतिक्रिया द्वारा उपहास की सृष्टि की गई है। जबकि 'मांगय' (माँग) गाँव के ही परिवेश को लेकर लिखा गया नाटक है, जिसमें लड़कियों के मोल-तोल की उस प्रथा पर प्रहार किया गया है, जो कश्मीर के गाँवों में स्वतंत्रता के बाद भी प्रचलित रही। इस संकलन का सबसे सशक्त नाटक है 'मुजूल्यनिक' (पालने का पूत) जो हमारे राजनीतिक परिवेश की ज्यादतियों को निर्ममता से खदेढ़कर रख देता है। क्यूम साहब ने 'हरम खानुक आडनु' को कश्मीरी भांड पाथर के रूपाकार में ढाला है। इसमें इन्होंने राजा, रानियों, मंत्रियों तथा अन्य पात्रों द्वारा शासन व्यवस्था के फूहड़पन तथा प्रथा पालन की निरर्थकता को दर्शाया है। इसके अतिरिक्त इनके 'हम क्याह गोम' (हाय मुझे क्या हुआ), 'तोतु त आडनु' (तोता और आईना) तथा 'डख योंलि चलन' (जब आधार छूट जाएगा) शुद्ध लोकरंगी हैं। इनमें भांड शैली का संशोधित रूप मिलता है। इस प्रकार क्यूम साहब के प्रयत्नों से कश्मीर के पेशेवर भांडों को संगठित किया गया, जिससे अकिनगाम (कुकरनाग में स्थित) में 'भगत भांड रंगमंच' की स्थापना हुई।

मुहम्मद सुभान भगत ने कश्मीरी गाँव के परिवेश और समस्याओं को लेकर कई नाटक लिखे। इससे पूर्व वे कश्मीरी लोक नाट्य भांड पाथर में शहनाई वादन का काम किया करते थे। इनके दो नाटक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं- 'तकदीर' (1972) और 'दिवसि रंग' (रंगोत्सव)। 'तकदीर' में तीन नाटक 'पोज अपु' (सच-झूठ) 'यिति छू बनवुत' (यह भी सम्भव है) और 'तकदीर' संकलित हैं। भांड पाथर से संबद्ध होने के बावजूद भी इसमें नाटककार ने आधुनिक नाट्य-शिल्प को अपनाया है। 'यिति छु बनवुन' में

पीरों-फकीरों का वेश-धारण करने वाले धूर्तों की कहानी है, जो सीधे-सादे ग्रामीणों को ठगते हैं जबकि 'तकदीर' में गाँव के नव धनाढ्यों की धूर्तता और शोषण का चित्रण है। भगत ने शोकिया 'भांड' नटों का नेतृत्व करके विविध भांड-पाथरो का विधिवत् और निरंतर मंचन किया तथा कश्मीर के पेशवर रंगमंच के लिए एक आदर्श मार्गदर्शक बने।

फारूक मसुदी ने भी भांड पाथर के शिल्प का प्रयोग करते हुए एक उल्लेखनीय नाटक 'कालेज पाथर' की रचना की, जिसमें कालेज जाने वाली लड़कियों के हाव-भाव को बड़े रोमांटिक अंदाज में पेश किया गया है। आधुनिक परिवेश की अभिव्यंजना के लिए श्री राधे कृष्ण ब्रारू ने भांड पाथर शैली में ही 'याहू' नामक एक नाटक प्रस्तुत किया। यह राजः पाथर पर आधारित था। उसके पशचात् श्री मक्खन लाल सराफ ने श्री क्यूम के नाटक 'मुजूल्यनिक को इन्साफ' नाम से राजः पाथर के रूप में पेश किया।

भांड पाथर सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य से भरा रहता है। विषय चाहे हास्य हो या गम्भीर । भांड अपने नृत्य और गीत में अवश्य निर्मित करता है। यहाँ तक कि दर्शन का कठिन एवं गूढ़ क्षेत्र भी एक भांड से अछूता नहीं रहता।

कश्मीर में भांड पाथर खेलने की प्रथा 19वीं शती तक बराबर चली लेकिन आगे इन कलाकारों की अपनी ही संताने इस कला को अपनाने के प्रति आकर्षित नहीं हो पाई जिसके फलस्वरूप अब यह लोक नाट्य दम तोड़ चुका है। भांड पाथर जो सामूहिक प्रतिरोध का एक बेहतरीन वाहक था आज अपनी ही संकुचित सीमाओं में सिमटकर रह गया है। यद्यपि राज्य सरकार, ललित कला अकादमी और साहित्य अकादमी अपने अनथक प्रयास द्वारा इस प्राचीन मृतप्राय सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षण प्रदान करने में अत्यधिक प्रयास भी कर रही हैं, लेकिन आज इलैक्ट्रानिक एवं प्रिंट मीड़िया के समक्ष यह कला अपनी प्रासंगिकता खो चुकी है। वस्तुतः यह लोक नाट्य कश्मीरी संस्कृति का एक अनिवार्य अंग होने के कारण अब केवल सरकारी कार्यक्रमों तथा सभा-सम्मेलन आदि के आयोजन की शोभा बन चुके हैं।

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

राज पाथर

रजनी पाथरे 'राजदान' *

कश्मीरी लोकगीत वनवुन

कश्मीर के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि कश्मीर पर हिंदू शासन लगभग चार हजार वर्षों तक रहा। हिंदू शासकों के आरम्भिक काल में हम सम्राट अशोक का वर्णन भी पाते हैं, जिन्होंने 250 ई. पू. कश्मीर पर विजय प्राप्त की और वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार किया। 'राजतरंगिनी' से पता चलता है कि अशोक के समय में हिंदू-धर्म एवं बौद्ध धर्म शांतिपूर्वक मिल-जुलकर रहे।

हूणों ने 525 ई. के लगभग कश्मीर पर शासन किया किंतु वे अधिक समय तक टिक न सके। इनके पश्चात् मंगोल, अफगान, चक एवं मुगलों ने भी कश्मीर पर अपना आधिपत्य जमाया। यह समय राजवंशों के व्यक्तिगत स्वार्थ, षड्यंत्र एवं लूट-पाट के कारण काफी उथल-पुथल का समय रहा। अंततः 1339 ई. में कश्मीर में मुस्लिम शासन स्थापित हुआ।

बदलते समय के साथ-साथ कश्मीर की संस्कृति ने अपने अंदर भिन्न-भिन्न संस्कृतियों को आत्मसात किया और कश्मीरी संस्कृति सच्चे अर्थों में गंगा-जमुनी संस्कृति का प्रतीक बन गई। वर्तमान में कश्मीर-घाटी में हिंदू और मुस्लिम दो संस्कृतियाँ हैं। ऊपरी तौर पर देखने से भले ही ये भिन्न दिखाई दें, परंतु इनकी आत्मा एक ही है। इन दोनों जतियों के पूर्वज हिंदू थे, इसके साक्षी इनके खानदानी नाम पंडित, दर आदि हैं।

विवाह से पूर्व दिवागोन की पूजा

किसी भी संस्कृति का संवाहक उसका लोक साहित्य माना जाता है। यह साहित्य पारंपरिक स्वरूप में लोक जीवन से प्रसूत जनसामान्य के आनंद एवं विषाद की सुर सरिता है, जो हजारों वर्षों से निरंतर प्रवाहित हो रही है। प्रत्येक पीढ़ी के बुजुर्ग इसे अपने पूर्वजों की अमूल्य धरोहर मानकर मौखिक रूप से संजोए हुए हैं। लोक साहित्य की दो मुख्य विधाएं लोक कथा तथा लोक गीत माने जाते हैं। पाश्चात्य विद्वान क्लावस्टन, कोहलर तथा एमेन्यूएल कासकुईन लोक कथाओं का उद्गम स्थान कश्मीर को मानते हैं। इनमें अशोक के शासन काल की जातक कथाएं तथा सोमदेव रचित पंचतंत्र कथाओं का भी उल्लेख मिलता है। जब कश्मीर से बौद्धमत पूर्व दिशा की ओर फैला तो वह अपने साथ लोककथाओं को भी ले गया। पाँचवीं शताब्दी में ये लोककथाएं अरबी-फारसी अनुवाद के माध्यम से पश्चिमी देशों तक जा पहुँची।

कश्मीरी लोक साहित्य में लोक गीतों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। ये लोक गीत प्रत्येक अवसर पर मिलकर गाए जाते हैं। ये लोक गीत हैं-वनवुन, रोफ, हिक्ट ग्यवुन, वान, ललनावुन, लड़ीशाह, भांड पाथर, बच्नगम, धमडिल और नैंदग्यवुन आदि। वनवुन कश्मीरी लोक गीतों का प्रमुख खंड है। यह प्रायः उत्सव, पर्व, मेखला (यज्ञोपवीत) तथा विवाह के अवसर पर गाया जाता है। शोध कर्ताओं के अनुसार वनवुन की परम्परा वैदिक युग से रामायण,

घर के मुख्य द्वार पर क्रूल चित्रण

महाभारत, श्रीमदभागवत से होती हुई वर्तमान युग तक चली आ रही है। कश्मीरी हिंदू शुभ कार्य आरम्भ करने से पहले निर्विघ्न कार्यसिद्धि हेतु शिव-पार्वती का आवाह्न करते हुए वंदना करते हैं:-

'शोक्लम करिथ वनवुन ह्योतये, शोभफल द्युतये माजि भवानी।'

वनवुन मुख्य रूप से ईश प्रार्थना से जुड़ा हुआ है। इसमें वैदिक युग के रीति रिवाज़ों का भी संदर्भ मिलता है। उदाहरण के लिए जब शनिवाली देवी का विवाह होने वाला था तो पुशन देव ने उसके शीश को अलंकृत करने हेतु सुंदर 'कपाल-पुश' अथवा 'कलपुश' निर्मित किया। इंद्रदेव ने इसे अधिक कमनीय रूप देने के लिए उस पर श्वेत पट्टा लपेट दिया। इस पट्टे को कश्मीरी भाषा में 'तरंग कोर' कहते हैं। आज भी 'कलपुश' और 'तरगं कोर्' विवाह के समय दुल्हन के शीश पर होना अनिवार्य माना जाता है। पाँच हजार वर्ष पूर्व की ये वैदिक पंक्तियाँ आज भी हिंदुओं के विवाह में कन्या के शीश पर 'कलपुश' रख, उस पर 'तरग् कोर' लपेटते हुए कश्मीरी-वनवुन में गाई जाती हैं:-

'पूशन योवनय शनिवालि दीवी, चे कूरि थोवनय मड. लय-माजे।'

(वैदिक देवता पुशन ने अपने हाथों से अलंकृत 'कपाल-पुश' देवी शनि वाली के मस्तक पर रखा। इसी प्रकार आज तुम्हारे माता-पिता ने मिलकर इस 'कलपुश' को तुम्हारे शीश पर सजाया है।)

वनवुन गायन पद्धति वैदिक मंत्रोच्चार से काफी मिलती-जुलती है। वनवुन गाते समय गायिकाएं मंडलाकार, पंचकोणीय अथवा षट्कोणीय आकार में बैठती हैं। इस समूह की मुख्य गायिका वनवुन की प्रथम पंक्ति गाती है, जिसे सामने बैठी गायिकाएं उसी उदात्त-अनुदात्त स्वर में दोहराती हैं। यह गायन प्राय: द्रुत लय में न होकर विलंबित लय में होता है। इस गायन में किसी भी प्रकार के वाद्य का प्रयोग नहीं होता फिर भी इसकी मदिर लय के श्रवण मात्र से वातावरण में एक शांत, मधुर व तन-मन की सुधि बिसराने वाला सात्विक परिवेश निर्मित हो जाता है।

परंपरागत वनवुन प्राय: कन्या के माता बनने की अवस्था से प्रारम्भ होता है। गर्भावस्था के छठे अथवा सातवें माह में माता-पिता गर्भवती बेटी को शुभ मुहूर्त में ससुराल भेजते समय उसके साथ ताज़े दही की कई परातें, सूखा मेवा, मिश्री के ग्यारह कुंजे, नान, सैंधा नमक व अनेक भेंट वस्तुएं भेजते हैं। इस प्रथा को 'प्याव' अथवा 'दोद हे हेथ गछुन' कहते हैं। भारत के अन्य प्रदेशों के विपरीत कश्मीर में कन्या की प्रथम संतान उसकी ससुराल में ही जन्म लेती है। शिशु के जन्म के आठवें दिन जच्चा का 'श्रान सोन्दर' (सौंदर्य-स्नान) समारोह होता है, जिसमें पड़ोस व परिवार को खान-पान तथा गान के लिए आमंत्रित किया जाता है।

'थन येलि प्योहम रन-प्यव करमय, जोतिषनत् पंडितन कोरमय साल।'

द्योक नरिवन

(मेरे लाल! जब तुम्हारा जन्म हुआ, मैं फूली नहीं समाई! मैंने छप्पन प्रकार के व्यंजन बनाकर ज्योतिषियों और पंडितों को जीमने का न्योता दिया)

'व्यनायक च़ोरम आथवार दरमय,
कोरमय छाँडिथ शूबिदार नाव।'

(तुम मेरी कोख से जन्म लो, इसके लिए मैंने विनायक चतुर्थी व रविवार का व्रत रखा। जब तुम्हारा जन्म हुआ, मैंने काफी विचार पूर्वक तुम्हारा शुभ-मंगलकारी नाम रखा।)

जन्म के पश्चात् बालक का 'ज़रकासय' (मुंडन संस्कार) किया जाता है। 'ज़रकासय' संस्कृत के 'जात्निष्करण' का अपभ्रंश रूप है। इसमें शिशु के बाल पहली बार उस्तरे से बिलकुल साफ कर दिए जाते हैं। कश्मीरी हिंदुओं में बालकों का मुंड़न संस्कार किया जाता है, बालिकाओं का नहीं। लोक-विश्वास है कि जन्म के बाल न काटने से बुरी आत्माएं कष्ट देती हैं-

'रुत साथ बुछिथय ज़र हो कासय,
आय् दरि बड़ि बागि वनवान छेय।'

(शुभ मुहूर्त देखकर हमने तुम्हारे केश काटे हैं तथा वनवुन-गान द्वारा ईश्वर से तुम्हारी चिरायु की कामना करती हैं।)

जन्म के ग्यारहवें दिन बालक अथवा बालिका का 'कहनेथर' संस्कार होता है। इसमें यज्ञ का प्रावधान है। इस अवसर पर नवजात शिशु को यज्ञ वेदी के निकट ले जाकर गाय का घी तथा शहद चटाया जाता है। हिंदू मान्यतानुसार ऐसा करने से शिशु की आत्मा व शरीर पवित्र हो जाते हैं। आजकल ऐसी प्रथाओं में वनवुन का अभाव पाया जाता है। इसके कारण हैं-अपनी जन्मभूमि से उखड़े कश्मीरी पंडित समाज का अपनी उखड़ी जड़ों को पुन: रोपित करने में व्यस्त एवं संघर्षरत रहना, अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से अपरिचित घाटी से बाहर जन्मी नई पीढ़ी और वनवुन विशेषज्ञ महिलाओं का अभाव। कश्मीरी हिंदुओं के 'मेखला' (यज्ञोपवीत) तथा 'लग्न' (विवाह) संस्कार वनवुन के बिना अपूर्ण माने जाते हैं। कश्मीरी हिंदुओं की 'मेखला' तथा 'लग्न' दस प्रथाओं में बंटे हुए हैं। 'लिवुन या गरनावय' (उत्सव हेतु घर एवं परिसर की साफ-सफाई), 'दपुन' (सगे संबंधियों तथा मित्रों को उत्सव का न्योता देना), 'क्रुल खारून' (घर की साफ-सफाई के पश्चात् मुख्य द्वार के ऊपर सात रंगों की सहायता से बेल-बूटों की रंगोली बनाना), 'मंज़िराथ या मेंहदीरात' (पूरी रात लोक नृत्य तथा लोकगीत गाकर रतजगा करना व मेंहदी लगाने का समारम्भ), 'श्राण' (लग्न के अवसर पर वर अथवा कन्या को और मेखला के अवसर पर बटुक अथवा बह्मचारी को चौकी पर बिठाकर दूध-दही से नहलाना), 'दिवगोन' (यज्ञ प्रज्जवलित कर वैदिक रीति से देवताओं का आह्वान करना), 'वारिदान' (सगे संबंधियों के मध्य भेंट-वस्तुओं का आदान-प्रदान), 'अग्निकुंड' (हवन कुंड में पवित्र अग्नि प्रज्जवलित करना), 'द्योक-नरिवन' (तिलक व मौलि बंधन) और 'कलश-लव्' (कलश पूजन एवं अभिमंत्रित जलाभिषेक)। इन प्रथाओं के कार्यान्वयन

व्यूग

परम्परागत वेशभूषा में कश्मीरी दुल्हन

के समय पृष्ठभूमि में महिलाओं द्वारा वनवुन गायन चलता रहता है।

कश्मीरी हिंदू-मुस्लिम समाज के विवाह उत्सव में समानता होते हुए भी धार्मिक प्रथाओं के कारण भिन्नता पाई जाती है। हिंदू समाज में विवाह उत्सव चार दिन अर्थात् मसमुचरावुन, मंज़िराथ, दिवगोन और खांदर (विवाह) जबकि मुस्लिम समाज में यह उत्सव तीन दिन अर्थात् मसमुच़रावुन, मंज़िराथ और येनिवोल (बारात) का होता है।

हिंदू महिलाएं श्रीगणेश, शंकर-पार्वती आदि देवी-देवताओं की वंदना करते हुए वनवुन गायन आरंभ करती हैं, जबकि मुस्लिम महिलाओं का वनवुन बिसमिल्ला कहकर आरंभ होता है। मुस्लिम महिलाएं भी 'जरकासय' (मुंड़न) तथा विवाह के अवसर पर वनवुन गाती हैं। इनकी वनवुन शैली विलंबित न होकर द्रुतलय में होती है। वनवुन के समय मुस्लिम महिलाएं दो दलों में विभक्त हो आमने-सामने पंक्तिबद्ध खड़ी होकर एक-दूसरे के गलबंहियाँ डाले एक कदम आगे और एक कदम पीछे जाते हुए इसे एक स्वर में गाती हैं। इसे 'रॉफ' कहा जाता है। इस प्रकार की गायन शैली कुमांऊ तथा गढ़वाल में भी प्रचलित है।

हिंदू-'वनवुन'

हिंदू वनवुन के हज़ारों श्लोक हैं। इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि मात्र विवाह मंडप में ही करीब दो सौ वनवुन श्लोकों का गायन होता है। यज्ञोपवीत अथवा विवाह के अवसर पर भवन तथा उसके परिसर को स्वच्छ करना लिवुन अथवा गरनावय कहलाता है। इसी दिन कन्या-पक्ष कन्या के बाल खोलकर उनमें तेल लगाते है। इसे 'मसमुच़रावुन' कहा जाता है। इसी दिन से घर में वनवुन गायन होता है:-

'नख तल अनितोन पंडिथा गरिथ,
वसदीव राज़न्यैन दियि साथ च़्रिथ।'

(तनिक पड़ोस के पंडित जी को बुलावा भेजो ताकि वे आकर वासुदेव महाराज के राजभवन की साफ-सफाई करने के लिए शुभ मुहूर्त निकाल कर दे सकें)

'नवि नेछपत्रे रूत द्राव साथा,
ज़गि होन्द दाता श्री भगवान।'

(जगत् स्वामी ईश्वर की कृपा से नए वर्ष के पंचांग में 'लिवुन' के लिए शुभ मुहूर्त निकल आया है)

'हरमोख पथमुन श्रूच़-पोन्य तोरमय,
वसदीव राजुनगर नोवमय,'

(हरमुख पर्वत से पवित्र गंगाजल लाकर हमने वासुदेव महाराज का राजमहल स्वच्छ किया है।)

दपुनः घर को स्वच्छ करने के बाद गृहस्वामिनी सबसे पहले सपरिवार मायके वालों को यज्ञोपवीत अथवा विवाह का निमंत्रण देने जाती है। उस दिन मायके वाले भी सानंद भोज तथा भेंट-वस्तुओं का प्रबंध करते हैं:

"हिंदू महिलाएं श्रीगणेश, शंकर-पार्वती आदि देवी-देवताओं की वंदना करते हुए वनवुन गायन आरंभ करती हैं, जबकि मुस्लिम महिलाओं का वनवुन बिसमिल्ला कहकर आरंभ होता है।"

'गोडन्य बबस् त् माजि निश चा़यिखय,
सति सिनि करहय ज़ियाफत।
नून चो़चि़ अतगथ तोर् हयथ द्रायिखय,
दपिय आयिखय बांधवन।'

(तुम सबसे पहले अपने माता-पिता को न्योता देने गई। उन्होंने सात प्रकार के उत्तम व्यंजनों से तुम्हारा स्वागत किया तथा लौटते समय तुम्हें शगुन के रूप में सैंधा नमक, नान-रोटी व द्रव्य भी दिया।)

क्रूलः इस अवसर पर बुआ भवन के मुख्य द्वार पर स्वास्तिक, ओमकार तथा सुंदर बेल-बूटे सात रंगों व केसर के माध्यम से चित्रित करती है। इस समय मुख्य द्वार के समक्ष महिलाएं बैठकर क्रूल-वनवुन का गान करती हैं।

'क्रूर श्वारनस ज़गि' कुस ओयय?
परमीश्वर त पार्वती मजि।'

(बुआ रानी! क्रूल चित्रण के समय तुम्हारी दाहिनी ओर कौन सी दिव्य शक्ति आशीष देने हेतु विद्यमान थी? बुआ का उत्तर है-आशीष देने के लिए स्वयं शंकर-पार्वती पधारे थे।

'सिरिसन्ज़ सथ रंग अथ दारस खरिमय,
र्‌ति साथ् कोंग ट्योक अथ कोरमय।'

(बुआ कहती है-मैंने सूर्य-रश्मियों की सप्त रंगी रंगोली भवन के मुख्य द्वार पर चित्रित की है तथा द्वार की शोभा द्विगुणित करने हेतु उसे केसर का गोलाकार तिलक भी लगाया है)

मंज़िराथः- हिंदू और मुस्लिम दोनों संप्रदायों में मंजिराथ (मेंहदी रात) का महत्वपूर्ण स्थान है। इस शाम से सगे-संबंधी व पड़ोसी उत्सव में शामिल होते हैं। प्रीतिभोज के साथ-साथ रात भर नाच-गाना चलता है। मध्यरात्रि के समय बुआ भिगोई हुई मेंहदी का तसला लेकर आती है और सबसे पहले वर, कन्या अथवा यज्ञोपवीत धारण करने वाले बालक के हाथों व पैरों में मेंहदी रचाती है। इसके बदले सभी परिवार वाले उससे मेंहदी लेकर उसे नेग देते हैं।

कश्मीरी दुल्हन

'मंजि़ र्‌जि़ सोंबरिथ बचि़य, वचि़य गंग, जमना सारस्वत,
क्रश्ननि मंजे़ रचि़य क्युत, 'तुलमुल'
अन्दरय राग्न्या बचि़य!
दिवता बागस तुलमुलि नागस्,
नागस् मंज़ खोत मंजे़ पोष।'

(आज समस्त सगे संबंधी यहाँ तक कि गंगा, यमुना, सरस्वती तक उत्सव की शोभा बढ़ाने के लिए उपस्थित हुई हैं। वासुदेव महाराज का पूरा परिवार श्रीकृष्ण की मेंहदीरात के उत्सव में भागीदार होने यहाँ पधारे हैं। देवी 'राग्न्या' 'तुलमुल' जैसे पवित्र सरोवर से निकल कर यहाँ दर्शन देने आई हैं। आज की मेंहदी के पुष्प भी उसी पवित्र सरोवर में पुष्पित हुए हैं)

श्राणः- कश्मीरी में इसे 'वुज़श्रान' या 'गोड्श्रान' कहते हैं। जिस प्रकार देव मूर्तियों के समक्ष मंत्रोचार करते हुए उनके मस्तक पर दुग्धाभिषेक अथवा जलाभिषेक किया जाता है उसी प्रकार वर, कन्या अथवा यज्ञोपवीत धारण करने वाले ब्रह्मचारी को चौकी पर बिठाकर चार बालिकाएं एक लम्बे

श्वेत मलमल के वस्त्र को चारों कोनों से पकड़कर खड़ी हो जाती हैं। उस समय ब्राह्मण वैदिक मंत्रों के साथ वस्त्र के ऊपर से दुग्धाभिषेक कराते हैं। इसके साथ-साथ महिलाओं का वनवुन गायन भी चलता रहता है।

'कूनन च़ोन छय कनिक च़ोरय,
मोल तय गोर छुय गोड् दीवान।'

(श्वेत वस्त्र के चारों कोने चार बालिकाओं ने थाम रखे हैं, उसके ऊपर से पिता तथा ब्राह्मण (गुरूजी) तुम्हारा दुग्धाभिषेक कर रहे हैं)

'आमि दोद सतिय गर-गर करयो,
ज़ामति दोद सति तन मलयो।'

(तुम्हारी माता गाय के कच्चे दूध से तुम्हारा मुख तथा कंठ पवित्र कर रही है। इसके पश्चात् वह तुम्हारे शरीर को दही से मल-मलकर स्वच्छ कर रही है)

दिवगोन: दिवगोन का अर्थ है देवों का आगमन। ब्राह्मण इस अवसर पर वैदिक मंत्रोचार द्वारा देवी-देवताओं का स्वागत करते हुए यज्ञ आरम्भ करते हैं। 'गोड्श्रान' के पश्चात् कन्या, वर अथवा ब्रह्मचारी (जिसका यज्ञोपवीत संस्कार होने वाला है) ननिहाल से आए वस्त्राभूषण धारण कर तथा स्वच्छ वस्त्र से मुँह ढककर पूजा स्थल पर पहुँचते हैं। इस समय वैदिक रीति से यज्ञ संपन्न होता है। यज्ञ के साथ-साथ चलने वाले वनवुन गायन का आधार भी वैदिक श्लोक ही होते हैं। दिवगोन विवाह अथवा यज्ञोपवीत संस्कार के एक दिन पहले संपन्न होता है।

यदि कन्या का विवाह हो तो इसी यज्ञ वेदी पर उसे

यज्ञोपवीत संस्कार

'डिजहोर' (मंगल सूत्र) पहनाया जाता है तथा उसके खुले केशों के मध्य भाग से माँग निकालकर केशों को दो भागों में बांटकर मौजी से बाँधा जाता है। ये दो भाग मायके तथा ससुराल के प्रतीक माने जाते हैं। डिजहोर स्वर्ण निर्मित षठकोणीय अलंकार होता है जिसे मौजी (लालरंग का सूती धागा) में डाल दोनों कानों में पूजा करते समय पिरोया जाता है।

मेखला (यज्ञोपवीत) के लिए अग्निकुंड वनवुन:-

मेखला अथवा यज्ञोपवीत संस्कार के लिए ईंटों का विशालाकार अग्निकुंड निर्मित किया जाता है। इसे श्रीनगर में स्थित शंकराचार्य पहाड़ी की पवित्र मिट्टी से लीपा जाता है। तत्पश्चात् बटुक/ब्रह्मचारी तथा ब्राह्मण इसके निकट बैठकर कुंड में अग्नि प्रज्ज्वलित करते हैं। इसमें चौबीस घंटों के लिए सतत अग्नि प्रज्ज्वलित रहती है और यज्ञोपवीत संस्कार हेतु होम चलता रहता है:

'सोन् संदि टोंगरे त् रोप् संदि बेलय,
शैंकराचार अनिमय शेलय म्यच्'।

(सोने-चाँदी के फावड़े से हमने स्वयं शंकराचार्य की पवित्र मिट्टी यज्ञवेदी को लीपने के लिए लाई है।)

'अगन-कोंड सय सोन संज़ सेरे,
ज़ेरे-ज़ेरे खोरमय अगनय कोंड'

(यह पवित्र अग्निकुंड सोने की ईंटों से निर्मित हुआ है। इस हवनकुंड को हमने धीरे-धीरे बड़ी सावधानी से रचा है)

यज्ञोपवीत के अवसर पर लगभग 150 वनवुन श्लोकों का गायन होता है। हवन के चलते ब्रह्मचारी बालक को जनेऊ (यज्ञोपवीत) डाला जाता है। इसे ग्रहण कर वह 'द्विज' (दो-जन्मा) अर्थात् ब्राह्मण कहलाता है। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी बालक गुरू हेतु भिक्षुक बनकर उपस्थित सगे संबंधियों से भिक्षा माँगकर अपने गुरू (ब्राह्मण) के चरणों में रखता है, जिसे 'अबीद' कहा जाता है। अबीद संस्कृत शब्द 'अभेद' का कश्मीरी रूप है, जिसका अर्थ है-बिना किसी भेदभाव के। बालक बिना किसी भेदभाव के, अहंकार रहित हो, सबके समक्ष भिक्षापात्र लेकर जाता है। भले ही वह राजपुत्र ही क्यों न हो।

व्यूग

विवाह : विवाह के दिन कन्या की केश रचना से श्रृंगार आरम्भ होता है। उसके खुले केशों को सुलझाते समय वनवुन गान किया जाता है। गायन के साथ-साथ उसके केश दो भागों में बाँटकर दो चोटियाँ गूंथी जाती हैं:-

'ज़ठ वालोयय रूमय-रूमय, मोसमय ख्वनि लल्नावोथ।
ज़्विलयन रूमन सुम स्यज़् द्रायि,
शोरिका आदि वाक् पारनेय।।'

(तुम कोंमलांगी हो, हम तुम्हारे केश हौले-हौले सुलझाएंगी। फिर भी यदि तुम्हें कष्ट हो तो हम तुम्हें अपनी गोद में लेकर सांत्वना देंगी। तुम्हारे रोम-कूप अत्यंत कोमल हैं। इनमें तुम्हारी माँग सरल एवं सुंदर शोभित हो रही है, क्यों न हो, स्वयं देवी शारिका तुम्हारी चोटियाँ गूँथने आई हैं।)

तरंग् बाँधते समय वनवुन

केश संवारने के बाद कन्या के मस्तक पर 'कलपुश' पहनाया जाता है तथा उसके ऊपर श्वेत 'तरंग कोर' और उसके ऊपर ज़री का पट्टा लपेटा जाता है, इसे 'बंदि' कहा जाता है:-

'माजि भवानि आयि मंज भत सरिए,
महरिनि व्युत ज़रिए तरंगा हयै्थ,
मोहरा छलवन्य वार्-वार् छलिने,
ओबुर माय् करिने़ आदित् अंत-तान्य।'

(भवानी माता दुल्हन के लिए 'तरंग्' लेकर भवसागर में प्रकट हुई हैं। हे धोबी! इस तरंग की धुलाई के लिए तुम स्वर्ण मुद्रा पाओगे, किंतु स्मरण रहे कि इसे धोते समय सावधानीपूर्वक कलफ तथा अभ्रक से सजाना)

'दोब्य् ओनुय तरंगाह, गाह लोगुय त्रावने,
ताह कोरूय माजिभवाने।
तरंगस चानिस ताह गोय थोदये
गोंडये भवानित् डैक-बड्ड आस।'

(हे कन्या! धोबी तुम्हारा तरंग ले आया है। उसकी चमक से दसों दिशाएं प्रभामय हो उठी हैं। भवानी माता ने अपने हाथों से ऊँची-ऊँची तहें कर उसे तेरे कलपुश पर लपेटा है। तू अवश्य सौभाग्यवती सिद्ध होगी।)

दूल्हा तथा बारातियों के आगमन पर वनवुनः-

दूल्हे तथा बारातियों के आगमन की प्रतीक्षा में महिलाएं समयानुकूल 'वनवुन' आरम्भ करती हैं:-

'वसदीव राज़नि हंकलि ठस गव,
हैस रोज़ दुनियादार हय आव। '

(वसुदेव महाराज के मुख्य-द्वार की कुंडी खड़की है। सावधान! द्वार पर दुनियादारी जानने वाला (दूल्हा व्यं.) आ पहुँचा है।)

'बागस सनिस गुल फोल्य ताज़्य,
सानि कोशि मोख्त महाराज़ू हय आव'

(हमारे उद्यान में ताज़े सुगंधित पुष्प खिले हैं कारण आज हमारी कन्या को वरण करने मुक्ताहल जैसा सुंदर दूल्हा आया है।)

'पारि-पारि लगितोस रथ-सवारे,
महाराज़ू राज्कोमारे आव।'

(दूल्हे के रथ की हम बलैया लेंगी। दूल्हा इसी रथ पर बैठकर हमारी राजकुमारी से विवाह रचाने आया है।)

पोशि पूजाहः विवाह समाप्त होने से पहले हिंदू समाज में विवाह की अंतिम प्रथा पोशि-पूजाह़ (पुष्प पूजा) कहलाती है। इसमें दूल्हा-दुल्हन को शिव-पार्वती स्वरूप मानकर

पूजा जाता है। इसमें दूल्हा-दुल्हन को एक-दूसरे के सामने बैठाकर उनके ऊपर रेशमी वस्त्र अथवा ज़री वाला शॉल डाल दिया जाता है। कन्या पक्ष के सभी सगे संबंधियों सहित माता-पिता उन पर पुष्प वर्षा करते हुए पूजा करते हैं। एक ओर वैदिक मंत्रोचार तथा दूसरी ओर वनवुन गान ध्वनित होता रहता है।

'पम्पोश फोल्य प्रेयमय सरसय,
शेवशंकरसय छय पोश-पूज़ाह'

(प्रेमरूपी सरोवर में भाव-रूपी कमल खिले हैं क्योंकि आज भगवान शंकर की पुष्प-पूजा हो रही है।)

'वैकोंठ साम्पुन सनिस घरसय,
रामीश्वरसय छय पोशिपूज़ाह'

(भगवान शंकर की पुष्प-पूजा के फलस्वरूप हमारा घर वैकुंठ-धाम बन गया है।)

'सर्व निरथन हन्ज़ फल छि कशीरेय,
मोख्तीश्वरसय छय पोशि पूज़ाह।'

(सर्व तीर्थों के फल कश्मीर मे इसलिए प्राप्त होते हैं, क्योंकि केवल यहाँ पर ही मुक्तेश्वर (मुक्तिदाता शंकर) की पुष्पों द्वारा पूजा होती है।)

'पोशि-पूज़ाह' के लगभग साठ श्लोक उपलब्ध हैं। इस पूजा की समाप्ति के साथ विवाह सम्पन्न होता है तथा कन्या ससुराल की ओर प्रस्थान करती है। ये क्षण अत्यंत मार्मिक होते हैं। माता-पिता सहित संपूर्ण परिवार भावुक हो उठता है।

'त्रन लूकन हंदि लूख गय जमाह कोरिहोंद तमाह करिज़ि न ज़ाह।'

(तीनों लोकों की नागरिक प्रांगण में उपस्थित, भावुक हो एक-दूसरे से कह रहे हैं कि कन्या-प्राप्ति की कामना कभी मत करना, वह पराया-धन होती है।)

'सोन संज़ि गंगजे रोप संज़हिय छय,
दयसंज़्द्रियछय वार् रछिज़न'

(माता द्रवित होकर दूल्हे से प्रार्थना करती है कि मैंने अपनी बालिका का बालपन में सोने-चाँदी से बनी गंगज् से दूध पिलाकर बड़ा किया है। तुम्हें ईश्वर की सौगंध है, मेरी बेटी की देख-भाल में कोई कसर मत छोड़ना।)

वीगि वच़न (विशेष योग वचन):

'वीगि-वच़न' का अर्थ है विशेष अवसर पर वनवुन गायन। यह वर के विवाह हेतु घर से बारातियों सहित प्रस्थान के समय गाया जाता है। वर के प्रस्थान से पहले आँगन में सात रंगों की गोलाकार रंगोली सजाई जाती है जिसे 'व्यूग' कहा जाता है। व्यूग पर दूल्हे को खड़ा करके माँ उसकी आरती उतारकर उसे विदा करती है। दूल्हे के बारात सहित प्रस्थान के बाद परिवार की महिलाएं दूल्हे की माँ को इसी 'व्यूग' के मध्य खड़ा कर उसके चारों ओर गोलाकार परिधि में वनवुन गाते हुए नृत्य करती हैं-

'दितुम दयन त् रोछुख नानि/में देदि कानि सेदेयम।
ज़ाखा यज़मन बायि सानि/चानि-चानि करान छय।
यादाश रूदया खानमालि/में देदि कानि से देयम।'

(ईश्वर ने मुझे पुत्रवती बनाया। बालक की देख-भाल नानी ने की। इसे गोद में लिए-लिए मेरी पसलियाँ दुखती रहीं। मैं ईश्वर को धन्यवाद देती हूँ कि अब मेरा पुत्र वयस्क हो गया है और दुल्हन लाने गया है। साथ में गाती हुई अन्य महिलाएं दूल्हे को सावधान कर गान में कहती हैं- हे माँ के लाड़ले तेरी माँ सदा तेरा ही नाम जपती रहती है। अपनी माँ को भूल मत जाना।)

जब वर-वधू को लेकर घर लौटता है तो दोनों को व्यूग पर खड़ाकर माँ पुनः आरती उतारती है-

रॉफ नृत्य

'यज़्मन-बायछि वाह-वाह करान,
शाह आवरनि हेथ गाह त्रावान'

(गृह स्वामिनी सपरिवार वाह-वाह! कर उठी- देखो! मेरा राजा बेटा चारों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ सपत्नीक गृह प्रवेश कर रहा है।)

वीगि-वच्न यज्ञोपवीत संस्कार के समापन के अवसर पर भी गाए जाते हैं। यज्ञ समापन पर ब्रह्मचारी जब झेलम नदी पर स्नान कर गणेश मंदिर में आराध्य के दर्शन हेतु घर से निकलता है तो आँगन में बनाए गए 'व्यूग' पर माँ उसकी आरती उतारती है। विवाह की भांति ही परिवार की महिलाएं माँ को व्यूग के मध्य भाग में खड़ी कर उसके साथ नाचती-गाती हैं:-

'हुम वोथुम, वीगि खोतुम/तोत् वोथुम यारबल।
माम् लाल्नि कोछि खोतुम/तोत् वोथुम यारबल।'

(मेरा शुक (पुत्र) होम-समाप्ति के पश्चात् झेलम नदी के घाट पर नहाने चला है। उसके पाँवों में मेंहदी लगी है अत: मामा जी ने उसे गोद में उठा रखा है।)

हिंदू 'वनवुन' कश्मीरी धार्मिक संस्कारों का अक्षय भंडार है। इन धार्मिक संस्कारों के चलते जहाँ एक ओर वेदवेत्ता ब्राह्मणों की वेद-ध्वनियाँ वातावरण को पवित्र करती रहती हैं, तो दूसरी ओर कश्मीरी महिलाएं अपनी मातृभाषा में इन्हीं वेद ध्वनियों को वनवुन में प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार ये दोनों मिलकर कश्मीरी सभ्यता एवं संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कश्मीरी मुस्लिम वनवुन

कश्मीरी मुसलमानों की शादी का वनवुन हिंदू वनवुन की अपेक्षा काफी हलका-फुलका तथा वर्तमान संदर्भों को लिए होता है, जिसमें मेंहदीरात, मसमुच्रुन (कन्या के बाल खोलकर तेल लगाना) तथा यनिवोल (दूल्हे का बारात लेकर शादी करने आना) आदि प्रथाएं प्राय: समान होती हैं। केवल धार्मिक संदर्भ एवं वर्णन शैली भिन्न होती है। उदाहरण के लिए लड़की के बाल खोलते समय गाया जाता है:

'बिसमिल्लाह करिथ हेमव वनवोनुय,
साहिबन अंजाम ओनुये,
मसमुच्रावोय खैशे खैशे, रेशे बाबन्य कूरिए।'

(अल्लाह का नाम लेकर लड़की के बाल खोलने शुरू करो। मालिक की मेहरबानी से काम (शादी) अंजाम तक पहुंचेगा अरी ऋषि तुल्य बाबा की बेटी! हम धीरे-धीरे तेरी लटों को सुलझाएंगी)

मेंहदी रचाते समय: 'पादशाह बागस ह्युमय वोनये/ छण्डिथ ओनमय मंज़े पोश'

(बादशाह के बाग से मैंने खोजकर तुम्हारे लिए मेंहदी के फूल लाए हैं।)

'वोथतय दोद मजी, शमादान ज़ालतय मंज़ि कोण्ड खारतय देवानखान'

(दाई माँ! आज मेंहदीरात है। उठो शमादान जलाओ। नीचे की मंज़िल में रखा मेंहदी से भरा हुआ तसला बैठक में लेकर आओ। लड़की के हाथों में मेंहदी रचानी है।)

'देवानखानस सोन सुंद तालव/लालव जरिथ देवानखान'

(दूल्हा और बाराती जिस बैठक में बैठे हैं, उसकी छत रत्न-जड़ित स्वर्ण से निर्मित है।)

लड़की की विदाई पर: 'हडर छय हयवान मलिस रोखसथ/अशवानि खून छय हारानी'

(पिता की लाड़ली मैना (बेटी) पिता से विदा माँगने आई है। उसकी आँखें खून के आँसू बहा रही हैं।)

रॉफ: मुसलमानों के वनवुन में 'रॉफ' का महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रत्येक उत्सव-पर्व कर प्रदर्शित किया जाता है। ईद के अवसर पर यह घर-घर में गाया जाता है:

'ईद आयि रख, रस ईदगाह वस्वाय, ईदगाह वसवाय'

(सखी! ईद का पवित्र दिन आया है चलो धीरे-धीरे पैदल ही ईदगाह जाएंगे)

रॉफ में कई गीत प्रश्नोत्तर शैली में होते हैं। ये प्राय: विवाह के समय गाए जाते हैं।

इसके अतिरिक्त कश्मीरी मुस्लिम समाज में अन्य तीन प्रथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें भी वनवुन गायन होता है तथा सगे-संबंधियों को दावत का न्योता दिया जाता है। शिशु जन्म पर 'शादियाना' मनाया जाता है। इसमें शिशु को नहला कर उसके बाएं कान में 'अज़ान' पढ़ी जाती है तथा दाहिने में 'तकबार'। 'अजान' शिशु के स्वागतार्थ व 'तकबार' उसे अटल मृत्यु का संदेश देती है:

'थन येलि प्योहम, हमदाह पोरमय,
कन्नय पोरमय दीनि इस्लाम'

ज़रकासय उत्सव: पहली बार जब बालक अथवा बलिका के जन्मजात केश उस्तरे से उतारे जाते हैं तो उसे 'ज़रकासय' कहा जाता है। इस अवसर पर भी वनवुन गाया जाता है:

"कश्मीर लोक गीतों का अक्षय भंडार है। वनवुन के अतिरिक्त हिक्कट, वान, ललनावुन आदि लोक गीत लोक कंठ में रचे-बसे हैं। व्यावसायिक लोकगायकों के गीत भांड पाथर, लडीशाह, छकरी, बच्च-नगम्, रेषि मच्चर, धमलि, न्येंद-गेवुन लीला आदि अपने आप में विलक्षण लोक-गीत हैं।"

'रुत-दोह बुछिथ्य ज़र हो का सय/ वुमर ज़ीठ् थविनय बोड खोदाय।'

(नजूमी से शुभ दिन निकालकर आज तुम्हारा 'ज़रकासय' (केश कर्तन) उत्सव मना रहे हैं और खुदा से तुम्हारी लम्बी उम्र की दुआ माँगते हैं)

खतनहाल या खतना: मुसलमानों की एक महत्वपूर्ण धार्मिक प्रथा (केवल बालक हेतु) मानी जाती है। इस अवसर पर भी रिश्तेदार व पडोसियों को प्रीतिभोज दिया जाता है। इस धार्मिक प्रथा के सम्पन्न होने के दौरान महिलाएं वनवुन गाती रहती हैं।

सारांश में कश्मीर लोक गीतों का अक्षय भंडार है। वनवुन के अतिरिक्त हिक्कट, वान, ललनावुन आदि लोक गीत लोक कंठ में रचे-बसे हैं। व्यावसायिक लोकगायकों के गीत भांड पाथर, लडीशाह, छकरी, बच्च-नगम्, रेषि मच्चर, धमलि, न्येंद-गेवुन लीला आदि अपने आप में विलक्षण लोक-गीत हैं।

* 'आरोहण' बंगला,
30, पुष्पक पार्क, औंध,
पुणे-411007

अवतार कृष्ण राजदान *

कश्मीरी लोक-संस्कृति के कुछ रंग

कश्मीर का परंपरागत मकान – छायांकन : डॉ वीरेन्द्र बांगरू

किसी भी देश या स्थान को असली रंग-रूप में देखने से पहले वहाँ की लोक संस्कृति का अध्ययन करना जरूरी है। यह वह आईना है जिससे हम संबंधित स्थान के हर पहलू की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। किंतु लोक-संस्कृति अपने-आप पनपती नहीं, वस्तुत: यह लोक-जीवन से अस्तित्व में आती है। यही वह साहित्य है जो संबंधित स्थान के लोगों के रहन-सहन तथा उन विशेष क्षणों का विश्लेषण करता है, जो इनके अंग बनकर रह जाते हैं और इन्हीं क्षणों को लोक आस्था कहते हैं। लोक आस्था का लोक मान्यताओं से गहरा संबंध होता है। ये लोक मान्यताएं संबंधित स्थान की भौगोलिक सीमाओं तक ही सीमित रहती हैं।

भारत के सिरमौर कश्मीर को सबसे प्राचीन राज्य के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसकी लोक-संस्कृति भी अन्य प्रदेशों की तुलना में सबसे प्राचीन है, अलग है। आजकल संसार सीमित होकर रह गया है और यदि यह ऐसे ही सिमटकर रह जाए तो लोक-संस्कृति का केवल एक ही रूप मिल पाएगा। कश्मीर की लोक-संस्कृति के कुछ रंग अन्य प्रदेशों से भिन्न हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है कि यह ऋषि-वाटिका चारों ओर बर्फपोश पर्वतमालाओं से घिरी रहती है। कल्हण पंडित के अनुसार ये पर्वत मालाएं इसकी पहरेदार हैं। आमतौर पर कश्मीरी पर्वत को सीमा और पर्वत के उस पार के क्षेत्र को 'बाहर' तथा घाटी के क्षेत्र को 'अंदर' मानते हैं। यह देव

भूमि देश-विदेश के पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र है।

भारत के किसी भी हिस्से से आए व्यक्ति को कश्मीर में पंजाबी कहा जाता है। इसके दो कारण हैं। पहला यह कि कश्मीर और पंजाब के बीच व्यापारिक संबंध रहे हैं। अत: पंजाब के लोग ही यहाँ आते रहते थे। दूसरा यह कि कश्मीरियों के साथ पंजाबियों की बोल-चाल होने के कारण वे हर किसी भारतीय को पंजाबी कहते। संभवत: ऐसा कहने में इनको मिठास लगता। विदेशी लोगों को कश्मीरी आमतौर पर 'अंग्रेज' कहते हैं। इसका कारण है कि लगभग तीन सौ वर्षों तक हम अंग्रेजों के गुलाम रहे। वे गर्मियों के मौसम में कश्मीर में हवाखोरी करने आते थे। यह जाने बिना कि आदमी किस देश से संबंध रखता है हमारे ज़हन में अब भी उनका प्रभाव है।

कश्मीर में पानी बहुतायत में मिलता है। पानी के कारण ही यहाँ की प्राकृतिक छटा में चार-चाँद लग गए हैं। इसके होने से यहाँ के लोक-जीवन या संस्कृति पर विशेष प्रभाव पड़ा है। नाला, चश्मा, झील या अन्य जल-स्रोतों को छोड़कर एक महत्वपूर्ण दरिया का वर्णन करना उचित रहेगा जिसको कश्मीरी में 'व्यथ' कहते हैं। इसको 'बिदसपियस' वितस्ता, नीलजा या झेलम भी कहा जाता है। यह वेरीनाग से निकलकर अंत में खन्नाबल या खादनयार में समाहित हो जाती है। यह घाटी को दो भागों में बाँटती है। आजकल इन दो भागों के बीच ग्यारह पुलों द्वारा जमीनी यातायात चलता है। एक समय ऐसा भी था, जब इस दरिया के नाम पर श्रीनगर इस पार और उस पार में बँटा हुआ था। नौका या नाव ही एकमात्र साधन था जिसके द्वारा लोग शहर के इस पार या उस पार आ-जा सकते थे। इस तरह नौका यहाँ के लोक जीवन या संस्कृति में एक अलग रंग के रूप में पहचानी जाती है। जिस तरह इस समय सड़कों पर वाहन चलते हैं, उसी तरह उस समय वितस्ता में नाव चलती थी। नाव अब भी हमारी लोक-संस्कृति में छाई हुई है। वह भी समय था जब वितस्ता के इन दो भागों में रहने वाले लोगों में आर्थिक अनियमितता देखने को मिलती थी। इस पार के सारे क्षेत्र आर्थिक रूप से समृद्ध थे। यहाँ पुराने आलीशान मकान हैं जिनका वास्तुशिल्प कई सौ वर्ष पुराना है। किंतु अब लोग खुले में बसना चाहते हैं। वस्तुत: यह आज की बात नहीं है। जबसे अमीर खान ने अमीरा कदल बनाया, लोग इसके आस-पास आवास बनाकर रहने लगे। श्रीनगर के उत्तर या उत्तर-पश्चिम के क्षेत्र को 'सरहद' कहा जाता था। समय बदलने के साथ-साथ अब हर जगह पॉश कॉलोनियां बनने लगी हैं।

"कश्मीर के लोक-जीवन या संस्कृति पर यहाँ की झीलों ने विशेष प्रभाव डाला है। इनमें डल-झील और वुल्लर झील उल्लेखनीय है। यदि ये यहाँ न होतीं तो कश्मीरियों की जीवन शैली कुछ और ही होती।"

कांगडी

कांगडी बनाता हुआ कारीगर

कश्मीर के लोक-जीवन या संस्कृति पर यहाँ की झीलों ने विशेष प्रभाव डाला है। इनमें डल-झील और वुल्लर झील उल्लेखनीय है। यदि ये यहाँ न होतीं तो कश्मीरियों की जीवन शैली कुछ और ही होती। डल झील के साथ जुड़ा एक बड़ा भू-भाग है, जिसे 'रौन्यवार' या 'रैणावारी' कहा जाता हैं। यहाँ की जमीन हर तरह की तरकारी पैदा करने में उपजाऊ है। तरकारी की उपज करने वाले को 'दांदुर' कहते

हैं। हाँ, उन लोगों को भाग्यवान समझा जाता है, जिनकी बेटियाँ रैणावारी में ब्याही गई हों। वह इसलिए कि यहाँ कुछ नहीं मिलेगा तो सब्जी तो जरूर मिलेगी और डल झील का सैर-सपाटा भी किया जा सकेगा।

डल झील में अपनी एक अलग दुनिया बसी हुई है, जिसका हमारी लोक संस्कृति पर जबरदस्त प्रभाव है। यह सैलानियों के आकर्षण का केंद्र है और इसमें बसने वाले लोगों का एक अलग रंग देखने को मिलता है। इसमें रहने वाले लोगों को कश्मीरी में 'हौज' या 'हांजी' कहते हैं। कहा जाता है कि ये प्रभातसेन के समय से यहीं बसे हुए हैं। ये लोग सिंहलद्वीप से यहाँ आए थे। नाव इनकी रोजी-रोटी का मुख्य साधन है। ये लोग सब्जी की काश्त भी करते हैं। ऐसे हाजियों को 'डेम्बे-हौज' कहते हैं। इसी तरह 'वुल्लर' झील में जो हांजी रहते हैं, वे झील से सिंघाड़े और नदरू निकालते हैं। इनको 'गार्य हौज' कहते हैं। जो हांजी सिर्फ वितस्ता में रहते हैं, वे 'बहच' (बड़ी नाव) में माल एक जगह से दूसरी जगह लाते-लेजाते हैं। इनका एक और वर्ग है जिनको 'जॉड-हॉज' या मछली पकड़ने वाले हांजी कहते हैं। ये प्राय: डल और वुल्लर में होते हैं। सिंधु-वितस्ता के संगम पर जो हांजी आवास करते हैं, वह पहाड़ी लकड़ियाँ चुनकर बेचते हैं जिसको 'हक' कहते हैं। अंत में वह हांजी तबका है जो 'डैगा' में आवास करता है। 'डैगा' एक बड़ी नाव होती है, जिस पर छत लगी रहती है। इसके अंदर कमरेनुमा दो से तीन खाने होते हैं। इनमें आराम की सब तरह की व्यवस्था होती है। डल, हजरतबल या क्षीर भवानी जाने के लिए लोग इसी में जाना पसंद करते है। डैगा के साथ शिकारा होना जरूरी है। शिकारा एक छोटी सी किश्ती होती है, जिसमें एक या दो आदमी बैठ सकते हैं। पहले तो इसी डैगे में बैठकर सैलानी वितस्ता विहार करते थे। अब डैगे ने समृद्ध रूप ले लिया है जिसे 'हाउस-बोट' कहा जाता है। हाउस-बोट 1890 में अस्तित्व में आई, जो एक कश्मीरी पंडित नारायण दास का आविष्कार है। बाद में एक अंग्रेज ने इसको सैलानियों के अनुरूप बनाने का बीडा उठाया। इस तरह से नाव की एक नई संस्कृति का आविर्भाव हुआ। हाउस-बोट के मालिक या हांजी मालदार होते हैं क्योंकि ये कश्मीर की सैर पर आने वाले सैलानियों को साल भर रिझाकर अच्छा पैसा कमाते हैं। ये टूटी-फूटी अंग्रेजी में बात भी कर सकते हैं। वह भी समय था जब ये निर्धनता के अंधेरे में जी रहे थे और 'मौर' में नाव चलाते थे। 'मौर' का अर्थ है बड़ा नाला जो यहाँ के तत्कालीन सुलतान जैन-उल-आबदीन (बडशाह) ने अपने शासन काल में बाढ़ से बचने के लिए खुदवाया था। हांजियों के बच्चे कुशल तैराक होते हैं। इनके संबंध में प्राय: कहा जाता है कि यदि वह दरिया में गिरेगा तो ऊपर आने पर अपने साथ मछली भी लाएगा।

डल झील का दृश्य, कश्मीर

''डल झील में अपनी एक अलग दुनिया बसी हुई है, जिसका हमारी लोक संस्कृति पर जबरदस्त प्रभाव है। यह सैलानियों के आकर्षण का केंद्र है और इसमें बसने वाले लोगों का एक अलग रंग देखने को मिलता है।''

प्रकृति ने फूलों की इस बस्ती को दो भागों में बाँटा है। एक का नाम है 'कामराज' और दूसरे का 'मराज'। कामराज इसका ऊपरी भाग है और मराज निचला भाग। ये दोनों भाग एक-दूसरे से भिन्न हैं जबकि इनमें रहने वाले लोगों का रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान में कोई अंतर नहीं है। दोनों भागों के लोग कश्मीरी बोलते हैं लेकिन उच्चारण में थोड़ा फर्क है। ऊपरी भाग उपजाऊ है और दूर-दूर तक लहलहाते खेत नजर आते हैं। यह भाग अन्न का भंडार माना जाता हैं किंतु इसका निचला क्षेत्र उपजाऊ नहीं है। कारण यह है कि यह हर साल बाढ़ की चपेट में आ जाता है, इसलिए यह उतना समृद्ध नहीं है जितना कि ऊपरी क्षेत्र है। निचले क्षेत्र में सोपोर कस्बा आता है, जिसे 'छोटा लंदन' कहते हैं।

कश्मीर भारत का एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ बर्फ पड़ती है और वर्ष के लगभग छ: महीने तक ठिठुरती सर्दी का प्रकोप लोगों को झेलना पड़ता है। इस दौरान यहाँ की नदियों, झीलों, तालाबों का पानी जम जाता है। प्राचीन काल से यहाँ के

लोक-जीवन में दो मुख्य वस्तुएं शीतकाल में प्रयोग में लाई जाती हैं। ये दो चीजें हैं 'कांगड़ी' और 'फिरन'। ऐसा माना जाता है कि कांगड़ी इतावलियों द्वारा यहाँ लाई गई थी। कुछ एक का यह भी कहना है कि कांगड़ी 'कुंज' का प्रतिरूप हो सकती है जिसे तिब्बत में प्रयोग किया जाता है। कुछ भी हो, सर्दियों में कांगड़ी यहाँ के लोगों के लिए जीवनदायिनी का काम करती है। यहां के शादी-ब्याह या शोक के दिनों में कांगड़ी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मार्घशीर्ष की संक्रांति के दिन कांगड़ी को पितरों के नाम पर दान किया जाता है। सर्दियों में मुसलमान भी कांगड़ी को दान के रूप में पीर को देते हैं। मृतक के ग्यारहवें दिन जब उसका पूर्ण पिंडदान किया जाता है तो उस दिन भी कांगड़ी का दान करने का प्रचलन है। इसी तरह शिवरात्रि महोत्सव से पहले नव-विवाहिता जब ससुराल वालों के साथ शिवरात्रि महोत्सव मनाने के लिए जाती है, तो अपने साथ रंग-बिरंगी तीलियों से बुनी कांगड़ी भी लेकर जाती है। कश्मीरियों की एक और रस्म है, जिसका लोक-संस्कृति के साथ गहरा संबंध है। वह यह कि जब सर्दियाँ शुरू होती हैं, तो पौष मास में नई-नवेली दुल्हन को किसी निश्चित दिन मायके से बुलाकर नए कपड़े पहनाए जाते हैं। मेहमानों की गोश्त और भात से मेहमाननवाजी की जाती है। इसके बाद ये मेहमान अपनी इच्छानुसार कांगड़ी में पैसा डालते हैं। इसे दुल्हन को शिशिर से बचाने की मुख्य रस्म माना जाता है। किंतु अब मान्यताएं बदल गई हैं। लोगों का रहन-सहन बदल गया है और कांगड़ी का इस्तेमाल कम होता जा रहा है।

"कश्मीर में सख्त सर्दी के कारण ताजा सब्जियों का अकाल सा पड़ जाता है इसलिए यहाँ सदियों से सब्जी सुखाने की रिवायत है और यह काम गर्मियों में ही पूरा किया जाता है ताकि सर्दियों में उनका इस्तेमाल किया जा सके।"

पश्मीना शालें-छायांकन: डॉ. मजहर खान

कश्मीरी महिलाए, छायांकन: अभिषेक पाण्डेय

शीत से बचने के लिए यहाँ के लोग एक खास वस्त्र का इस्तेमाल करते हैं जिसे 'फिरन' कहते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है चोगा या चोला। यह 'पीरहन' का विकृत रूप हो सकता है। यह आमतौर पर मोटे ऊनी कपड़े का बनाया जाता है। सर्दियों में यह भी कश्मीरियों के लिए जीवनदायिनी का काम करती है। किंतु फिरन तभी पहना जाता है जब इसमें कांगड़ी हो। इसकी बनावट ने समय-समय पर कई रंग बदले हैं। कुछ लोग इसे घुटने से ऊपर तक पहनना पसंद करते हैं, तो कुछ लोग घुटने से नीचे का पहनते हैं। मुसलमान भाई जो फिरन पहनते हैं उसकी बनावट हिंदुओं द्वारा पहनी जाने वाली फिरन से कुछ भिन्नता लिए होती है। समय-समय पर इसे अलग-अलग नाम भी दिए गए हैं, जैसे-'मुनुल-हब्ब्' या 'फुल गया' किंतु यह फिरन या कश्मीरी गाउन से ही जाना जाता है। इसका इस्तेमाल न केवल कश्मीर में बल्कि भारत के अतिरिक्त सुदूर देशों में भी होता है। आजकल नए-नए डिजाइनों और कशीदाकारी के साथ अपना शौक पूरा करने के लिए भी लोग इसे पहनते हैं।

कश्मीर में सख्त सर्दी के कारण ताजा सब्जियों का अकाल सा पड़ जाता है इसलिए यहाँ सदियों से सब्जी सुखाने की रिवायत है और यह काम गर्मियों में ही पूरा किया जाता है ताकि सर्दियों में उनका इस्तेमाल किया जा सके। जो स्थानीय सब्जी यहाँ सर्दियों में भी उपलब्ध रहती है, वह है 'हाक' जिसे शाक भी कहा जाता है। यह यहाँ किसी भी मौसम में और किसी भी समय प्रचुर मात्रा में मिलता है। कश्मीरी जन माँस-मछली खाने से परहेज नहीं करते। इसका प्रमुख कारण यह है कि कश्मीर प्राचीनकाल से शैव मत का केंद्र रहा है

समावार (कहवा और चाय बनाने का पात्र) – छायांकन: डॉ. वीरेन्द्र बांगरू

जिसके अपने उसूल, अपने सिद्धांत हैं। यही वह दर्शन है जिसमें माँस खाने पर प्रतिबंध नहीं है। एक और कारण यह भी है कि यहाँ सर्दी का प्रकोप ज्यादा होता है और माँस खाने से बदन में गर्मी का संचार होता है। बड़े दिनों अर्थात् महा शिवरात्रि जैसे पर्वों पर मांस नहीं पकाया जाता है।

भारत में चाय का सेवन हर जगह किया जाता है। मगर कश्मीरयों का चाय पीने का अंदाज कुछ अलग होता है। चाय एक ऐसा पेय है जो शीतकाल में शरीर को गर्मी पहुंचाता है और तरो-ताजा बना देता है। यहाँ की चाय देसी चाय से कुछ अलग होती है। इसके बनाने का तरीका भी अलग है। पानी में चाय की पत्तियां डाली जाती हैं और इसके बाद पतीले को चूल्हे पर चढाया जाता है। इसको तब तक उबाला जाता है जब तक चाय की पत्ती रंग न छोड़ दे। इसमें शक्कर, इलायची और बादाम की गिरि डाली जाती है। इस चाय को 'कहवा' या 'मोगल्य चाय' कहते हैं। कहा जाता है कि यह पेय कश्मीर में मुगलों के समय प्रचलन में आया। इसलिए इसे 'मोगल्य चाय' कहते हैं। चाय को यदि दूध डालकर बनाया जाए तो उसे कश्मीरी में 'दोद-चाय' या 'डबल चाय' कहते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ एक विशेष चाय भी बनाई जाती है जिसे 'नोन-चाय' (नमकीन चाय) कहते हैं। आम लोगों में यह 'शीर्य-चाय' से भी मशहूर है। अधिकांश लोग इसी चाय का सेवन करते हैं। इसके बनाने का कोई खास तरीका नहीं है फर्क केवल इतना है कि इसमें चीनी के स्थान पर नमक डाला जाता है। इसके अतिरिक्त 'दम-ट्युठ' और 'कोंग चाय' पीने का भी प्रचलन है। दम-ट्युठ को आम चाय की तरह बनाया जाता है। इसमें न शक्कर डाली जाती है और न ही नमक जबकि कोंग चाय में केसर डाला जाता है। चाय का जिक्र होने पर 'समावार' का जिक्र करना जरूरी बन जाता है। कश्मीरियों के लिए समावार और चाय एक-दूसरे के पूरक हैं। समावार में चाय बनाकर पीने में अपना ही आनंद है। मगर समावार कश्मीरियों का अपना आविष्कार नहीं है। इसके संबंध में कहा जाता है कि यह रूस से यहाँ आया था।

यहां की उपज वर्ष में मात्र एक फसल है। ग्रीष्मकाल में किसान धान बोने, निराई करने और अंत में धान काटने में व्यस्त रहते हैं किंतु सर्दियों में इनके काम बिल्कुल अलग होते हैं। इनके घरों में ऊन-कताई, कंबल और शाल बुनाई की जाती है। बाण्डीपुर में बनी चादर, चार में बनी कांगड़ी, पांपोर में बने कुलचे यहाँ मशहूर हैं। एक काम यहाँ साल भर किया जाता है और वह है तोसा या पशमीना ऊन कातना और शाल बनाना। यह काम आमतौर पर कश्मीरी लड़कियाँ करती हैं। चटाईयाँ और खड़ाऊँ भी शीतकाल में ही बनाई जाती हैं। हालांकि आजकल चमड़े के जूते पहने जाते हैं, लेकिन खडाऊँ का हमारे लोक जीवन या लोक-संस्कृति से गहरा संबंध है। बर्फ की मोटी तह पर चलने या सड़कों की उतराई-चढ़ाई को पार करने के लिए खड़ाऊँ का ही इस्तेमाल किया जाता था। समय के साथ-साथ इसे विभिन्न आकार दिए गए। इसके विभिन्न नाम मिलते हैं जैसे ठस खान, शेनि खान, ओबॅर खान आदि। यहाँ पुरातनकाल से इसे इस्तेमाल में लाते रहे हैं। अब इसका इस्तेमाल दूर-दराज के गांवों में ही होता है। हां, कश्मीरियों के पास एक खड़ाऊं अब भी सुरक्षित है और वह है पीर पंडित पादशाह की खड़ाऊं जो एक चमत्कारी साधु थे।

कश्मीर में लोक-जीवन या लोक-संस्कृति के अनेक रंग देखने को मिलते हैं।

* डी - 255, गली 14/15,
लोअर शिव नगर, जम्मू

डॉ. कृष्णा रैणा *

कृष्ण राज़दान के काव्य का आध्यात्म और लोकरंग

भारतीय संस्कृति में कर्म, ज्ञान और भक्ति ही जीवन के अस्तित्व के लिए सार्थकता प्रदान करते हैं। इसी कारण मनुष्य का जीवन स्वत: लक्ष्य न होकर लक्ष्य प्राप्ति का मुख्य साधन है और यही विचार भारतीय संस्कृति का केंद्र बिंदु है। कश्मीरी साहित्य का आरंभ 13वीं शताब्दी में शितिकंठ के 'महानय प्रकाश' से माना जाता है परंतु इसमें विशेष रूप से तांत्रिक पूजा का वर्णन है और संस्कृत शब्दावली का ही अत्यधिक प्रयोग हुआ है। अत: आज की कश्मीरी भाषा से इसकी भाषा नितांत भिन्न है। कश्मीरी भाषा की सर्वप्रथम कवयित्री ललद्यद (लल्लेश्वरी) ही हैं, जो कश्मीरी निर्गुण संत परंपरा की प्रतिनिधि कवयित्री हैं। कश्मीरी काव्य में भक्ति की तीन धाराएं-राम भक्ति, कृष्ण भक्ति तथा शिव भक्ति उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त आख्यानात्मक काव्य, देशभक्ति पूर्ण काव्य और स्वच्छद कविताएं भी मिलती हैं।

पं. कृष्ण राजदान

शिव विचारधारा ने हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, वैचारिक, साहित्यिक आदि पक्षों को प्रभावित किया है। शायद ही कोई कश्मीरी पंडित होगा जो शिव का उपासक न हो। इसी का परिणाम है कि कश्मीर शैवमत अध्ययन और मनन का विषय बन गया। जहाँ एक ओर आदि कवयित्री ललद्यद ने निराकार शिव को लिया तो दूसरी ओर पं. कृष्ण राज़दान ने 'शिवु लगुन' की प्रस्तुति में सगुण तथा निर्गुण का सम्मिश्रण किया। शैविक अद्‌वैतवाद से लेकर शिव की आराधना तक कश्मीरी जीवन पर शिव का ही प्रभाव है। कश्मीरी लोक गीत 'वनवुन' में भी इसकी परंपरा है।

शिव अनादि और अनंत है, बुद्‌धि से परे हैं। वे जगत की सृष्टि, पालन और संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु और महेश त्रिविध रूप धारण करते हैं। भगवान शंकर के अनेक नाम और रूप हैं। कहीं वे कुंदगौर शिव हैं तो कहीं नीललोहित हैं, कहीं प्रलयंकर महाकाल हैं, तो कहीं वे शिव अर्थात् कल्याण हैं। अनादि काल से शिव की उपासना लिंग रूप में की जाती है, जिसका प्रमण मोहनजोदड़ो के उत्खनन से प्राप्त शिवलिंगों से मिलता है। लिंग पूजा वास्तव में शक्ति और शक्तिमान का प्रतीक है, पुरुष और प्रकृति का सहज चिह्न है। शिव के डमरू नाद में समस्त संगीत है। तांडव और लास्य के वे स्वामी हैं।

कश्मीरी भाषा में श्री कृष्ण राज़दान का 'शिव लगुन' और परमानंद का 'शिव परिणय' काव्य आता है। कवि कृष्ण जुल राज़दान (1850-1920 ई.) कश्मीर के एक सगुण भक्त कवि रहे हैं। इन्होंने लीला काव्य की रचना की जिसमें आध्यात्म, भक्ति और संगीत का मिश्रण है। इनके काव्य पर कश्मीरी समाज और संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता है। इन्हेंने शिव पार्वती के विवाह का जो वर्णन किया है वह एक ओर आत्मा-परमात्मा का आध्यात्मिक मिलन है और दूसरी ओर कश्मीरी वर-वधु का हू-ब-हू चित्रण है। इनकी रचना 'शिवु लगुन' में 227 कविताएं संकलित हैं। इन कविताओं में कवि ने शिव भक्ति का प्रतिपादन विवाह के माध्यम से किया है, जो बहुत ही सरल, सरस और कश्मीरी जीवन शैली को प्रस्तुत करने वाला है। इसके माध्यम से कश्मीर की विवाह पद्‌धति का सांस्कृतिक रूप उजागर होता है। इन कविताओं को कश्मीरी पंडित घरानों में विवाह के अवसर पर तन्मय होकर गाया जाता है।

कृष्ण राज़दान ने कश्मीरी विवाह पद्‌धति को चित्रित करने वाले मंगल-गीतों का भंडार दिया है। वे वर्णन करते हैं-'गंधर्व लूख आव वायान बाजे, त्रन भवनन हुंद राजे

आव।' अर्थात दूल्हे के रूप में तीन भुवनों के राजा आए हैं और सारे गंधर्व देवता बाजे बजाते हुए आ रहे हैं।

कवि ने तुंबकनारी (शहनाई), सितार और संतूर का भी वर्णन किया है तथा अंबर और कपूर की सुगंध का चित्रण भी किया है। दूल्हा जब प्रागंण में बने व्यूग (रंगोली) पर खड़ा होता है, तो वह स्थान परम पद जैसा बन जाता है। फिर दुल्हन को भी वहीं लाया गया, उन पर फूल और मोहरें डाली गईं तथा आरती उतारी गई, आरती की थाली में चावल और सात जलते हुए दीपक रखे थे, फिर मिश्री खिलाई गई, फिर द्वार पूजा हुई, अग्नि के पास बैठकर लग्न (विवाह) करने लगे। आजकल भी कश्मीरी परिवारों में जब विवाह होते हैं तो घर के आँगन में व्यूग (रंगोली) बनाई जाती है, जिस पर पहले दूल्हे का स्वागत किया जाता है। मेंहदीरात के दिन घर के प्रवेश द्वार को तीनों ओर से चूने के पानी से लीपा जाता है और अलग-अलग रंगों से फूल-पत्तियाँ बनाई जाती हैं। द्वार के ऊपर 'स्वागत' लिखा जाता है, जिसे 'कूल' बनाना कहते हैं। यह काम दूल्हा या दुल्हन की बुआ द्वारा किया जाता है। इस समय नए अरहोर पहनते हैं और चावल के आटे की रोटियाँ और खिचड़ी खाई जाती है। कृष्ण राज़दान ने सर्वत्र जनमानस और लोक संस्कृति का ध्यान रखा है। कश्मीर में विवाह के समय जब दूल्हा या दूल्हन को सजाया जाता है, तो उनको मननमाल (तिले से बनाई गई माला) सिर पर तरंग या पगड़ी बाँधी जाती है। कृष्ण राज़दान ने भी शक्तिनाथ के विवाह संस्कार के समय मननमाल बाँधने का विस्तार से वर्णन किया है:-

भक्त वत्सलु मोनुख म्यान्य मनुनुय।
शक्तिनाथ गण्डयो मननय माल।। ('शिवु लगुन' पृष्ठ 182)

कश्मीरी विवाह पद्धति में दूल्हा और दुल्हन को विवाह के समय फूलों से पूजा करते हैं, इसमें वधू के माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी, चाचा-चाची, मासियाँ, बुआएं और सभी बड़े लोग उन्हें फूलों से पूजते हैं, इसका वर्णन भी कृष्ण राज़दान ने किया है:-

ओम कर श्रूख पर श्री गणोये,
पोशि पूजाये वेलु है वोत।
धर्मुक सोथ द्युत कर्म लीखाये
शक्ति वोर शिव तै शिवन शक्ति
श्री महारोदुर वोर माजि व्वमाये
पोशि पूज़ाये वेलु हय वोत।। ('शिवु लगुन' पृष्ठ 170)

कृष्ण राज़दान पोशि पूजा का वर्णन करते हुए कहते हैं 'आज ईशान की पोशि पूजा है, मोती रूपी तारक धुति से आँचल सुशोभित है, आज पोशि पूजा है। जमना जी पंखे से हवा करती हैं, महाविद्या मिश्री खिलाती हैं, सरस्वती रूपी दाई माँ इनके साथ हैं आज ईशान की पोशि पूजा है:-

नाबद आपरान कहाविद्या छस,
करान जमना छस वावजि वाव,
हधु मोज सरस्वती सूत्य छस पानस,
छमै ईशानस पोशिपूज़ा।। ('शिवु लगुन' पृष्ठ 172)

कृष्ण राज़दान ने दुल्हा-दुल्हन के 'दयबत' (दोनों के इकट्ठे) भात खाने का वर्णन भी किया है। जो रसोइया भात की थाली लेकर आता है, उसे नेग के तौर पर काफी पैसा दिया जाता है। इन्होंने कश्मीर का संदर्भ भी दिया है कि कश्मीर उत्तम नगर है, इसी को शारदा पीठ नाम भी दिया गया है। यहाँ शारदा माता ने कामेश्वर का वरण किया है। कवि ने स्थानीय वातावरण का चित्रण भी अपने काव्य में बहुतायत से किया है। उन्होंने सोने रूपी बर्फ गिरने का भी चित्रण किया है और छतों पर बर्फ गिरने से मानो लाल और जवाहर गिर गए:-

समियो लूकौ स्वनु शीन वालौ,
पश आयि भर्य भर्य लालौ सूत्य,
ऑगनन टेंग खत्य पथ ह्योत बालौ,
कुठय पोरण खोत तालका सूत्य।।
('शिवु लगुन' पृष्ठ 190)

कवि शिव के चरणों की उपमा पंपोश (स्थानीय शब्द कमल के लिए) से देते हैं। कवि की रचना शिव-पार्वती की पौराणिक कथा पर आधारित है। इसमें कश्मीरी पंडित घरानों में होने वाले विवाह संस्कार के धार्मिक अनुष्ठानों और रीति-रिवाज़ों का लेखा-जोखा है। इस काव्य रचना के दो आयाम हैं-पहला आयाम लोक संस्कृतिपरक है और दूसरा दार्शनिक। इनके अनुसार शिव-पार्वती का मिलन 'गुलाब' और 'आरुवल' का मिलन है, यह दो हृदयों का एकाकार

होना है, यह परम शक्ति और परम शिव का मिलन है। ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए लोभ और मोह को नष्ट करना आवश्यक है तभी 'स्व' और 'पर' एक हो सकते हैं :-

पर त पान यश्वसान बोज़न आय
जै जै भगवथ मायांय

कवि वैवाहिक संबंधों की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं। तभी वे कहते हैं-'च़ छुख दोह त ब छस रक्ष्य, च आकाश त ब बुतराच' यही समाज का स्वीकृत बंधन है, जिसका समर्थन लोग करते हैं। कवि इसे सृष्टि कर्म का उत्सव मानते हैं और आने वाली पीढ़ी के लिए संस्कार सुरक्षित रखते हैं। शिवरात्रि कश्मीरी पंडितों का सबसे प्रमुख त्योहार है, धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से इस त्योहार की महत्ता है। यह त्यौहार फाल्गुन कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को पड़ता है। यह पूजा रात्रि को होती है। इसे शिवरात्रि पूजा हेस्य (हररात्रि) या बटुक पूजा कहते हैं। कश्मीरी इस दिन शिव का बटुकनाथ या बटुक भैरव के अवतार रूप में पूजन करते हैं। मेरे विचार से भैरव शिव के गणों में आते हैं, जिनकी उन्होंने रचना की है। यह पर्व पूरे पंद्रह दिन का होता और अमावस्या तक मनाया जाता है। इस अवसर पर घरों को लीपने से ही उत्सव आरंभ हो जाता है। कृष्ण राज़दान इसको शिव की सतराथ मानते हैं- 'शिव राच़ हरि छय सत राथ' (शिव लगुन, पृ. 250) शिव पुराण के अनुसार शिवरात्रि को शिव और पार्वती का विवाह हुआ था। कश्मीर में अधिकतर लोग शिवरात्रि को पूजा के समय भैरव को माँस और मछली का भोग अर्पण करते हैं। यही परंपरा हिमाचल के ऊपरी इलाकों में भी देखने को मिलती है।

कृष्ण राज़दान शिव-शक्ति को मिलन की रात्रि मानते हैं, इसी कारण उनकी पोशि पूज़ा का प्रतीकात्मक अर्थ है। ईशान की पोशि पूज़ा में आकाश से पुष्प वृष्टि होती है, सूर्य देवता उनके रूप के साक्षी हैं, सायबान सारा आकाश है, उनके माथे पर चंद्रमा प्रकाशमान है और लोकपाल चंवर करते हैं। सप्त ऋषि सत्जल, इत्र और काफूर लेकर छिड़कते हैं, गंगा जी पानी से तृप्ति करती हैं, लक्ष्मी आँचल को चूमती हैं, महाविद्या मिश्री खिलाती है, सरस्वती जी द्वोद मॉज अर्थात् दाई माँ की तरह साक्ष्य है, कर्मलेखा इसका व्यूग (रंगोली) बनाती है, इस पोशि पूज़ा से समस्त संसार का अंधकार छंट गया है और चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश है। इस तेजवान के माथे पर चंद्रमा का टीका प्रकाशित हो रहा है, दया स्वंय ही इस दयावान के सामने हाथ जोड़े है। अत: अपने मन को अरग और प्राण को पुष्प बनाओ आज ईशान पोशि पूज़ा (पुष्पों से पूजा) है।

कश्मीर में शैव दर्शन और शाक्त दर्शन का अधिक प्रभाव है। शिव प्रकाश स्वरूप है, शक्ति विमर्श है। जीव ब्रह्मांड का संकुचित रूप है और शिव शक्ति प्रकाश और विमर्श का संगम है। शिव-पार्वती मिलन (शिवरात्रि) आध्यात्मिक मिलन है। यही नाद-बिंदु मिलकर अर्धनारीश्वर हुए, इसी नाद-बिंदु के योग से सृष्टि की रचना हुई है।

कवि कर्म पर बल देते हैं। संपूर्ण जीवन को उसकी संपूर्णता से जीने के लिए कर्म की आवश्यकता है। कवि के मन की श्रद्धा है, इसमें कुछ पाने का लोभ नहीं है, इसमें केवल श्रद्धा भाव है, जिसमें 'पर' (दूसरा) और 'पान' (स्व) में काई भेद नहीं है:-

कर्म फल वोपदोन धरम श्रद्धाए,
लूभ येलि गोल न मुह पानय चोल
पर त पान यश्वसान वोज़न आये,
जै जै छु भगवथ मायांये।

अर्थात् धर्म-श्रद्धा से कर्मफल की उत्पति होती है, इससे लोभ समाप्त होता है और मोह अपने आप समाप्त होता है। मैं भगवान की माया का जयजयकार करता हूँ क्योंकि इसी से स्व और पर का भाव मिटकर समभाव उत्पन्न होता है। यही सर्वभूत आत्मवाद है।

कवि ने अपने काव्य को स्थानीय परिवेश में रचा है। कश्मीरी रीति-रिवाज, वेश-भूषा, विवाह के सारे धार्मिक अनुष्ठान, मेंहदी रात, क्रूल (रंगोली), वनवुन (लोकगीत) मंगल गीत, पोशि पूज़ा, दयबत (दुल्हा-दुल्हन का पूजा पर इकट्ठे खाना) आदि का सटीक वर्णन है। कवि ने लोक भाषा में अपने आपको लोकमानस के साथ आत्मसात कर वाणी प्रदान की है।

* मकान नं. 117, सेक्टर-45,
फरीदाबाद-121003 (हरियाणा)

श्रीमती चन्द्रकान्ता *

सती प्रदेश की बेटियाँ

कश्मीर को सती प्रदेश कहा गया है। सती रूपा नारियों ने समय-समय पर कश्मीर में इतिहास रचा है। नीलमत पुराण में कश्मीर जन्म की कथा कुछ इस प्रकार कही गई है कि प्रलय के बाद शिवरूपी जलसृष्टि में नौका के रूप में प्रकट हुई सती ने भूमि का रूप धारण कर लिया था। – 'नौदेहेन सती देवी भूमिर्भवति पार्थिव। तस्यान्तु भूमो भवति सरस्तु विमलोदकम।।'

इस कथा में भूमि के बीच छः योजन लम्बे और तीन योजन चौड़े सतीसर का जिक्र है, जिसमें कालांतर में ब्रह्मा से अमरत्व का वरदान प्राप्त कर राक्षस जलोद्भव, सुरक्षा के लिए रहने लगा। जलोद्भव किनारों पर बसे नाग, निषाद, भुट्ट आदि जाति के लोगों को त्रस्त करने लगा, तो नागों के राजा नील ने पिता कश्यप ऋषि, जो कनखल में तपस्या कर रहे थे, से अरदास की कि उन्हें इस राक्षस से वे मुक्ति दिलाएं। कहानी में आगे, कश्यप ऋषि की घोर तपस्या से देवताओं को प्रसन्न करने का जिक्र है, नागों को जलोद्भव से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना है। लेकिन ब्रह्मा के वरदान के कारण जल में राक्षस का वध संभव नहीं था। अतः देवताओं ने वराहमूला (बारामूला) के पास पहाड़ काटकर सतीसर झील को पानी से रिक्त कर दिया और राक्षस का अंत किया।

कथा के अनुसार झील के भीतर से सुंदर वादी निकल आई। कश्यप ऋषि के प्रयासों से वादी का जन्म हुआ तो नाम दिया गया 'कश्यपमर' जो कालांतर में 'कश्मीर' हो गया। देवतागण वादी के अनुपम सौंदर्य से अभिभूत हो यहीं रहने लगे। लेकिन जल की निकासी के कारण नई समस्या खड़ी हो गई। जल नहीं तो जीवन कैसा? यहाँ स्वयं देवियों ने समाधान प्रस्तुत किया कि वे नदियाँ बनकर प्रदेश में बहेंगी। सती स्वयं वितस्ता बनी। लक्ष्मी विशोका, गंगा सिंधु, अदिति त्रिकोटी, दिति चंद्रावती, शची हर्षपथा और लंबोदरी लिछर नदियाँ बनकर वादी में बहने लगीं।

कश्मीर में स्त्रियों ने समय-समय पर इतिहास रचा है। राजनीति, समाजनीति और साहित्य-संस्कृति के हर अनुषंग में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कश्मीर की प्रथम साम्राज्ञी यशोवती को स्वयं श्री कृष्ण का समर्थन प्राप्त था। कल्हण पंडित ने राजतरंगिणी में पांडव काल से 1148 ईस्वी तक के राजाओं का इतिहास लिपिबद्ध किया है। इसमें राजाओं के साथ-साथ रानियों का भी विषद् वर्णन मिलता है। महाभारत काल में कश्मीर के प्रथम हिंदू राजा गोनन्द की मृत्यु के बाद जब उसका पुत्र दामोदर भी मारा गया तो दामोदर की पत्नी यशोवती राज्य सिंहासन पर बैठी। स्त्री के साम्राज्ञी बनने पर विरोधी आवाजें उठीं। श्रीकृष्ण ने स्वयं उन विरोधियों को शांत करते हुए कहा कि कश्मीर भूमि तो पार्वती की भूमि है अतः स्त्री यहाँ साम्राज्ञी हो सकती है। कल्हण ने उस काल में स्त्रियों की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'पिता के घर में लड़कियाँ संस्कृत और प्राकृत की शिक्षा ग्रहण करती थीं। रानियाँ भी राजकीय मामलों में भागीदारी करती थीं।'

रानी सुगंधा देवी – राजा शंकर वर्मन की पत्नी रानी सुगंधा देवी का राज्यकाल यद्यपि मात्र दो वर्ष का रहा। पति की मृत्यु के बाद उसने शासन कुशलतापूर्वक चलाया। 904-906 ईस्वी के बीच उसने कई मंदिरों का निर्माण कराया, जिनके अवशेष आज भी पट्टन के पास मिलते हैं। रानी सुगंधा देवी ने अपने बेटे की स्मृति में गोपालपुरा नगर बसाया।

दिद्दा रानी – क्षेमगुप्त की पत्नी दिद्दा ने 950 ईस्वी से 1001 तक शासन किया। उसका पति कमजोर शासक था। राज्य में तमाम षड्यंत्र रचे जा रहे थे। दिद्दा ने बड़ी कुशलता और बहादुरी से षड्यंत्रकारियों का सफाया करवाया। बेटे और पोतों की अभिभावक बनकर उसने शासन चलाया। कई पुण्य कार्य किए, विहार बनवाए। लोग उसे आदर देते थे और उसके जीवट की प्रशंसा करते थे। यद्यपि

कल्हण ने उसकी शक्ति-कामना के लिए दिद्दा रानी की निंदा की, पर अपने राज्य की रक्षा के लिए वह विरोधियों के सामने अडिग रही। आज भी कश्मीर में दादी-नानी को 'द्यद' (दिद्दा) नाम से संबोधित किया जाता है, जो आदरसूचक शब्द माना जाता है।

कोटा रानी - राजा सहदेव की पत्नी कोटा रानी कश्मीर की अंतिम हिंदू शासिका थी। उसने लगभग दस वर्ष तक राज किया, जिसे पंडित जोनराज ने सराहा है। राज्य को शत्रुओं से बचाने के लिए कोटा रानी ने अथक संघर्ष किया। आक्रमणकारियों और राज्य हड़पने के लोभियों का अंतिम समय तक मुकाबला किया। अदम्य जीवट वाली रानी कोटा ने देश की रक्षा के लिए स्वयं को होम कर दिया। जब खिचिनशाह ने राज्य पर कब्जा किया तो कोटा रानी ने उससे विवाह कर राज्य चलाने में सहायता की।

हिंदू शासन काल में सिल्ला और चद्दा जैसी महिला सैनिकों के नाम भी मिलते हैं, जिन्होंने शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध में वीरता का प्रदर्शन किया। कश्मीर में इस्लाम के आगमन के बाद महिलाओं पर बंदिशें लगीं। पर्दा प्रथा का चलन आरम्भ हुआ। महिलाओं की निर्भीक छवि कुछ धूमिल अवश्य हुई, पर अध्यात्म, दर्शन, साहित्य और संगीत के क्षेत्रों में स्त्रियों ने नए प्रतिमान रचे।

ललद्यद - शैवयोगिनी ललद्यद को कश्मीरी भाषा की प्रथम कवयित्री होने का श्रेय जाता है। ललद्यद का जन्म और मृत्यु दोनों विवादास्पद हैं। डॉ. ग्रियर्सन, आर. सी. टेंपल, प्रेमनाथ बजाज आदि विद्वानों के अनुसार ललद्यद का जन्म चौदहवीं शताब्दी में 1335 ई. के आस-पास हुआ था। बारह वर्ष की आयु में उसका विवाह एक ब्राह्मण युवक निक्का भट्ट के साथ हुआ था लेकिन ललद्यद ने गृहस्थ जीवन नहीं निभाया। अपने गुरू सिद्ध श्रीकंठ से उसने कहा कि निक्का भट्ट तो पूर्वजन्म में मेरा बेटा रहा है अत: मैं इस जन्म में उसके साथ घर-संसार कैसे बसा सकती हूँ? ललद्यद ने लगभग डेढ़ सौ वाक् रचे, जो श्रुति परम्परा से पीढ़ी-दर पीढ़ी जन-मानस में रच-बस गए। ललद्यद के वाकों में त्रिकदर्शन का सार है। वह मनुष्य और परम सत्ता के बीच एकात्म संबंध की प्रणेता रहीं। उन पर सूफियों और बौद्धों का प्रभाव रहा। ललद्यद के लिए सभी धर्म उस परम सत्ता तक पहुँचने के रास्ते थे।

ललद्यद ने सत्कर्म करने की प्रेरणा दी, जीवनचर्या, खान-पान में संयम की सीख दी। ललद्यद का समय वादी में अशांति और आपसी कलह का समय था। हिंदू-मुसलमानों के बीच भेदभाव की नीतियाँ पनप रही थीं। ललद्यद ने एक वाक् में कहा-'शेव छुय दलि-दलि ख-जान ...' शिव सर्वत्र व्याप्त हैं, उसके प्रकाश में नहा लो। हिंदू-मुसलमान में भेद न करो, अपने आप को पहचानो, वही ईश्वर से असली पहचान बनेगी, अपने बारे में वे कहती हैं - 'दी यिय करुम ...' जो कर्म मैने किए वही मेरी अर्चना है। जीभ से जो उच्चारा, वही मेरा मंत्र है। देह से यदि कोई काम लिया तो वह प्रत्यभिज्ञा का परिचय था।

अपने वाक़ों में वे कहती हैं-'आसा बोल कडिनेम सासा ...' (चाहे उसे कोई हजार गालियाँ दे, उसे, उसकी आत्मा को कोई कष्ट नहीं पहुँचता, वह तो उस सहज शंकर की भक्त हैं, उसके मन-दर्पण पर मैल कैसे जम सकती है। उसे अपने पर विश्वास था, तभी वह कह पाई, कि लल्ली ने जो पद कहे, उन्हें हृदय से बांच लो)।

ललद्यद के साथ अनेक चमत्कारिक घटनाएं जुड़ी हैं। कथाएं अनेक हैं, कथाओं में अतिश्योक्तियाँ भी हैं पर सारतत्व-यह कि उनमें अलौकिक शक्तियाँ थीं। जीवन के उत्तरार्ध में सूफी संत समनानी (1371-72 ई.) से प्रभावित होकर ललद्यद ने सम्भवत: इस्लाम ग्रहण कर लिया हो। हालांकि वे दीन-धर्म की हदों से ऊपर थीं, इसीलिए सभी धर्मो का प्रभाव उनके वाकों में हैं। तारीख-ए-हसन के लेखक-पीर गुलाम हसन ने उनके धर्मांतरण के विवाद को यह कहकर शांत किया कि 'फिल हकीकत वय अज़

ललद्यद

खासान खुदा अस्त'। वह हिंदू थीं या बाद में सैय्यद हुसैन समनानी के सम्पर्क में आकर उन्होंने इस्लाम ग्रहण किया, इस बात का महत्व नहीं है। हकीकत यह है कि वह खुदा के खास बंदों में से एक थीं।

हिंदू मुसलमान दोनों ने उसे प्यार दिया। उसके वाकों में गीता का सार है, सूफियों की सादगी व समर्पण है, त्रिकदर्शन का समन्वय है, अपूर्व साहस और बेबाक बयानी है। उसने स्त्री विमर्श के नए आयाम रचे। सुलतान शिहाबुद्दीन के राज्यकाल में उनका निधन हुआ।

रूप भवानी–साधारण से असाधारण तक की यात्रा करने वाली एक और संत कवयित्री रूप भवानी 'अखिलेश्वरी' नाम से जानी जाती हैं। सोलहवीं शती में पंड़ित माधवजू दर के घर जन्मी रूप भवानी अपने ज्ञानी पिता को अपना गुरू मानती थीं। माधवजू स्वयं शैवमत के ज्ञाता और साधक थे। संस्कृत–फारसी का ज्ञान होने के बावजूद रूप भवानी ने कश्मीरी भाषा में श्रुक् (श्लोक) रचे। दस वर्ष की आयु में उनका विवाह हुआ लेकिन ससुराल में मिले कष्टों से तंग आकर वे मायके लौट आईं और आध्यात्मिक जीवन जीने लगीं। बचपन से ही उनका रुझान आध्यात्मिकता की ओर रहा। इनका काव्य शुद्ध आध्यात्मिक एवं रहस्यवादी है। निर्गुण भक्त कवियों में रूप भवानी का विशिष्ट स्थान है। इनका समय भी कश्मीर में उथल–पुथल और अशांति का समय था। रूप भवानी ने लोकमंगल और ईश भक्ति का काव्य रचकर लोगों के जख्मी दिलों पर मरहम लगाने का काम किया। इनके बारे में भी अनेक चमत्कारिक घटनाएं प्रचलित हैं।

रूप भवानी के बारे में एक कथा, सूफी संत शाह सादिक–कलंदर से जुड़ी है। कहते हैं कि एक बार नदी के एक किनारे से सूफी संत ने रूप भवानी को आवाज दी, ओ रूपा (चाँदी) इस तरफ आओ, मैं तुम्हें सोना बना दूँगा। इस पर रूप भवानी बोली ओ दरवेश! तुम मेरी तरफ आओ, तो मैं तुम्हें 'मुक्ता' बना दूँगी, अर्थात् तुम्हें मोक्ष दिला दूँगी। इसी संत ने रूप भवानी की शक्ति–परीक्षा ली। शिव–पार्वती को लेकर मल्लाह बनकर नदी पार कर रूप भवानी के पास गया। रूपा समझ गई, उसने सूफी संत को लौटा दिया और स्वयं नदी पार की, जहाँ वह शिव के साथ पार्वती के रूप में बैठी थी।

रूप भवानी ने वस्तरवन, मणिगाम, वासकुर, लार आदि कई स्थानों पर तपस्या की। वासकुर गाँव में रूप भवानी का दिन मनाया जाता है। हवन होता है और यज्ञ–धूम में रूप भवानी के श्लोक पढ़े जाते हैं। इस दिन खीर बनाकर सभी उपस्थित लोगों में बाँटी जाती है। आज भी माधवजू दर के खानदान से जुड़े लोग रूप भवानी को अंशरूपा मान उसका दिन व्रत रखकर मनाते हैं। उसके श्लोकों का मनन करते हैं।

हब्बाखातून–सोलहवीं शती में पांपोर के निकट सिमपोर गाँव में अबदी–रायर के घर जन्मी अप्रतिम सुंदर बेटी का नाम माता–पिता ने 'जून' (चाँद) रखा। माँ ने आँचल में समेट प्यार दिया। संपन्न घराने में शादी की, पर जून का पति अजीज लोन मंदबुद्धि तो था ही, संवेदनहीन भी निकला। पत्नी को कोई सुख न दे पाया। जून का कंठ सुरीला था। अपने ही रचे गीत वह मधुर स्वर में गाती थी। जून ने पति का दिल जीतने के लिए कामना और आवेग भरे गीत रचे, पति को सुनाए, पर उस पर कोई असर न हुआ। जून हताश हो गई। उनकी यह हताशा 'कांसि मा राविन शूरे पान' गीत में स्पष्ट परिलक्षित होती है और वे कामना करती हैं कि किसी का बालपन जाया न हो।

हब्बाखातून

ललद्यद, रूप भवानी, अरणिमाल या हब्बाखातून इन सभी महत्वपूर्ण कवित्रियों का ससुराल यातनागृह ही रहा। 'जून' भी कहती है 'वुारिवेन सूत्य वार छस नो'–मैं सुसराल में सुखी नहीं हूँ, मेरा यौवन असमय ढल रहा है।

'जून' संत-फकीरों के पास अपनी दु:ख-गाथा लेकर गई। संत ख्वाजा-मसूद ने उसे धैर्य बंधाकर सुखी भविष्य का आश्वासन दिया और नया नाम दिया, 'हब्बाखातून'।

हब्बा का जीवन कष्ट सहते और रोते-धोते ही बीत जाता यदि एक दिन उसके करुण गीतों से खिंचकर यूसूफशाह चक उसके पास न आता। घोड़े पर तफरीह के लिए निकला सुलतान, खेतों में काम करती इस अनिद्य सुंदरी, कोकिलकंठी का गीत सुनकर दिल हार गया और उसे रानी बनाकर अपने महल में ले आया। हब्बा के दिन फिरे। 1570 ई. में वह अजीज लोन के नरक से निकलकर यूसुफशाह चक के महल में आ गई। सुख का समय उसके जीवन में आया। हब्बा ने 'लोलगीत' रचे। फारसी एवं कश्मीरी साज़ों के योग से एक नए राग 'रास्ति कश्मीरी' की रचना की, जो रात्रि के अंतिम प्रहर में गाया जाता है। यूसुफशाह चक और हब्बा ने मिलकर 'गुलमर्ग' की खोज की। एक वर्ष दो माह तक राज्य करने के बाद यूसुफ को गद्दी से हाथ धोना पड़ा। अपने सहयोगियों की मदद से उसने खोया हुआ राज्य वापस पा लिया और 1581 ई. में वह दोबारा गद्दी पर बैठा। मुगल स्वयं कश्मीर को हथियाना चाहते थे। मुगलों से तंग आकर उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा और दोबारा कश्मीर नहीं लौटा। 1592 ई. में बिहार के 'बसोक' स्थान पर उसकी मुत्यु हुई।

यूसुफ के दूसरी बार दूर जाने के बाद हब्बा का जीवन वीरान हो गया। उसने महल छोड़ दिया और जनसामान्य के बीच बेनाम जीवन जीने लगी। वह यूसुफ को पुकारती रही। उसके गीतों में मार्मिक वेदना भर गई। हब्बा के गीतों में विरह वेदना है, कामना का ज्वार है, रूठन और मनुहार है। विरह के चरम में हब्बा ने सूफियाना कलाम गाए। विरह-वेदनासिक्त स्वानुभूत गीत रचे। उसके गीतों में प्रिय-मिलन के लिए खुद को मिटाने की कातर पुकार है। उसने उस सोज को सुनने की बात की, जहाँ न कोई हिंदू है न मुसलमान। वह शून्य की, फना-फिला की स्थिति है। कश्मीरी काव्य में हब्बा आज भी प्रेम काव्य की जन्मदात्री और करुण गीतों की साम्राज्ञी मानी जाती है। उसके गीतों का प्रभाव अरणिमाल, महजूर, महमूद गामी आदि कवियों पर पड़ा।

अरणिमाल-अरणिमाल का विवाह फारसी के विद्वान एवं कवि 'बहरेतवील' के रचनाकार भवानीदास काचरू के साथ हुआ था लेकिन दाम्पत्य सुख से वह उम्रभर वंचित ही रही। उसने भी पति की उपेक्षा और ससुराल वालों का क्रूर व्यवहार सहा। हब्बाखातून के दो सौ वर्षों बाद जन्मी अरणिमाल ने भी प्रेम और विरह से पगे दर्द भरे गीत लिखे। प्रेम और आकांक्षा से भरपूर जीवन जीने की कामना ने उसके गीतों में मांसलता और दैहिक सौंदर्य का आत्मीय राग भर दिया। अरणिमाल के सहज सुंदर गाए गीतों में आकाश भर पीड़ा है। चिर-प्रतीक्षा और कभी पूरी न होने वाली उम्मीद है। करुण रस से आप्लावित ये गीत जीवन की विडम्बनाओं और मानव नियति की त्रासदियों के जीवंत साक्ष्य हैं। 'मे शोक चाने..' गीत में अरणि कहती है, 'मैंने अपने प्रिय के लिए प्रेम के प्याले भर दिए हैं। सखी! कोई उसे आवाज दो। वह किसी पहाड़ की चढ़ाई चढ़ते मिले या किसी चरागाह की ढलान उतरता नजर आए, तो मेरी अरदास उस तक पहुँचा देना। क्या करूं सखी हिरण की तरह उछाल मार वह मेरी आँखों से ओझल हो गया। भरी बहार में मेरा बाग उजाड़कर चला गया। अरणी के गुच्छा-गुच्छा फूल मुरझा गए। प्रिय चाहे मेरे सभी आभूषण ले ले पर मेरे पास लौट आएं। इतनी सी आकांक्षा रही अरणिमाल की लेकिन 'बहरेतवील' लिखने वाला विद्वान पुरुष स्त्री मन का छलछलाता आवेग समझ न पाया।

अरणिमाल के गीतों में फारसी और संस्कृत शब्दों का सरल प्रयोग है, वैयक्तिक दु:ख का उदात्तीकरण है, तभी वह सर्वकालिक बनकर आज भी प्रेमियों के मन में हूक पैदा करते हैं।

रूचद्यद-1880 ई. में जन्मी रूचद्यद हिंदी एवं संस्कृत विद्वान कवि जनार्दन सागर की पत्नी थी। वह ताउम्र एक भली गृहस्थ के रूप में जानी जाती यदि उसकी बहू धनवती ने उसके गुनगुनाए वाक् लिपिबद्ध न किए होते। 1918 ई. में पति की मृत्यु के बाद रूचद्यद ने अध्यात्म का सहारा लिया। समय बिताने के लिए चरखा कातने लगी। चरखा कातते वह तन्मय होकर वाक् गुनगुनाती। घरवालों ने उसके वाक्ों पर ध्यान नहीं दिया पर उसकी बहू धनवती ने सास के कहे वाक् कागज पर उतारे और उन्हें अलमारी में संजोकर रखती गई। सास की मृत्यु के बारह वर्ष बाद जब धनवती बीमार हुई तो उसने अलमारी में संजोकर रखे

कागज पति को दिखाए। विद्वत्जनों ने उन्हें परखा तो वे उस मूक साधिका की रचना क्षमता और नवोन्मेषी प्रतिभा के कायल हो गए। ललद्यद की शैली से मिलते-जुलते रूचद्यद के वाक् उनकी निजी तर्कशीलता और जीवन दृष्टि से पाठक को अभिभूत करते हैं। कला और संगीत की विश्लेषणात्मक पद्धति और बारीक सूझ रूचद्यद की पहचान है। 'कला छय मोहिनी, यछ लोल अनुराग' वाक् में वह कला में लालित्य, सुर, ताल, संगीत के साथ, प्रेम-अनुराग और भाव को प्रश्रय देती हैं। भाव पक्ष और कलापक्ष के सामंजस्य पर उनकी कला की परिभाषा अवस्थित है। जीवन का सुख-दु:ख और रागात्मकता तो वहाँ है ही, एक अनुभवजनित सीख भी है कि जीवन तो उम्र भर सीखना और सीख को व्यवहार में लाना है। एक चौराहा है, जहाँ दिशाभ्रम देते अनेक पुल और रास्ते हैं। सही रास्ता चुनना एक चुनौती है।

कश्मीरी साहित्य में चौदहवीं शती की ललद्यद, सोलहवीं शती की रूप भवानी और हब्बाखातून, अठारहवीं शती की अरणिमाल और बीसवीं शती के पूवार्द्ध में जन्मी रूचद्यद ने अपने जीवन दर्शन और ज्ञान से न केवल कश्मीरी भाषा साहित्य को समृद्ध किया बल्कि पूरे भारतीय साहित्य एवं संस्कृति को अपनी रचनाओं से संवर्धित किया है और स्त्री विमर्श के अनूठे आयाम रचे।

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध से ही स्त्रियों ने उच्च शिक्षा प्राप्त कर जीवन और राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी भागीदारी की नई मिसाल कायम कीं। आज वे उन क्षेत्रों में प्रवेश कर चुकी हैं जो पहले पुरुषों के लिए सुरक्षित थे। सामाजिक उत्थान और राष्ट्र निर्माण में जिन स्त्रियों ने योगदान दिया उनमें से कुछ नाम हैं:-

धनवंती हंडू रामाराव-1893 ई. में धनवंती फैमिली प्लानिंग एसोसिएशन की संस्थापक एवं अध्यक्ष रहीं। उन्होंने 'अंतरराष्ट्रीय प्लांड पेरेंटहुड' की स्थापना की और लोगों को परिवार नियोजन का महत्व समझाया। स्त्रियों को सीमित परिवार की खूबियों और साधनों से परिचित कराया। कई कार्यक्रम किए, जिनसे महिलाओं में निरोध द्वारा अयाचित गर्भ को रोकने की चेतना जगाई।

विजयलक्ष्मी पंड़ित- स्वतंत्रता संग्राम के दौरान विजयलक्ष्मी पंड़ित ने राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह यू. एन. एसेम्बली की पहली महिला अध्यक्ष बनीं। 1937 ई. में वे कैबिनेट-मिनिस्टर भी रहीं। विदेशों में भी उन्होंने एक समर्थ और विदुषी महिला होने की छाप छोड़ी।

श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित

कमला नेहरू-राष्ट्र नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू की पत्नी कमला, पति की छत्रछाया में रहकर राष्ट्र सेवा के कार्य में सहयोग देती रहीं। 1921 ई. के स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान, असहयोग आंदोलन में उन्होंने स्त्रियों को साम्राज्यशाही के विरुद्ध खड़ा होने के लिए तैयार किया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और विदेशी वस्तुओं की होली जलाने के अपराध के कारण वह दो बार जेल भी गईं। कमला, गांधी जी से बहुत प्रभावित थीं। असहयोग आंदोलन के दौर में वह कुछ समय कस्तूरबा गांधी के साथ गांधी आश्रम में भी रहीं। जयप्रकाश नारायण की पत्नी प्रभावती से भी जुड़ीं। महिलाओं में सामाजिक सुधार और राष्ट्र-चेतना जगाने के लिए उन्होंने पत्रिका निकाली और सामाजिक-उत्थान के कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी निभाई।

श्रीमती कमला नेहरू

इंदिरा गांधी-कश्मीर की बेटी इंदिरा न सिर्फ कई बार भारत की प्रधानमंत्री बनीं बल्कि उन्होंने विश्व की कुछ चुनिंदा समर्थ स्त्रियों की सूची में अपना नाम अंकित कराया। पिता जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें बेटे की तरह पाला, राष्ट्र प्रेम जगाया और राष्ट्र निर्माण में

श्रीमती इंदिरा गांधी

महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए बचपन से ही तैयार किया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान बचपन में 'वानर सेना' का नेतृत्व करने वाली इंदिरा ने राष्ट्र की एक सक्षम नेता बनकर स्त्री सामर्थ्य की नई मिसालें कायम कीं। अपने शासनकाल के दौरान अनेक साहसिक निर्णय लिए। उन्होंने परमाणु ऊर्जा-कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी। बंगलादेश के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर पाकिस्तान का सैन्य-गर्व चकनाचूर कर दिया। आज जो प्रगति परमाणु-ऊर्जा क्षेत्र में हो रही है, उसके लिए इंदिरा गांधी के प्राथमिक प्रयासों को भुलाया नहीं जा सकता।

अंग्रेजी साहित्य के क्षेत्र में भी कश्मीरी मूल की कुछ स्त्रियों ने अच्छा साहित्य दिया है। नैनतारा सहगल भारतीय अंग्रेजी साहित्य रचने वाली पहली महिला है। शांता रामाराव ने उपन्यास, यात्रा वृतांत और नाटक के क्षेत्र में काम किया। उनकी कुछ प्रसिद्ध पुस्तकें हैं-'होम टु इंडिया', 'रिमेंबर द हाउस' और 'माई रशियन जर्नी'। इन्होंने थिएटर के लिए ई. एम. फॉस्टर की कृति 'ए पैसेज टू इंडिया' का नाट्य रूपांतर भी तैयार किया है। सुधा कौल ने 'टाइगर लेडी' में कश्मीर की एक सशक्त महिला का जीवनवृत्त लिखा है। इस पुस्तक का विदेशों में भी स्वागत हुआ।

हिंदी सिनेमा के क्षेत्र में सोनी राजदान, प्रीति सप्रू जैसे नाम हैं, तो टी.वी. पत्रकारिता के क्षेत्र में निधि राजदान, शीरीन मान और कावेरी बामजई उभरती हुई कई सशक्त महिलाएं अपनी प्रतिभा से परिचित करा रही हैं।

विदेशों में भी कई कश्मीरी महिलाएं अपनी प्रतिभा दर्शा रही हैं। अमेरिका में, विस्कान्सन यूनिवर्सिटी में अंग्रेजी की प्रोफेसर ललिता पंडित ने भाषा और समीक्षा पर कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। जयश्री ओदिन यूनिवर्सिटी ऑफ हवाई में शिक्षण का कार्य कर रही हैं, उन्होंने ललद्यद की रचनाओं का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद भी किया है। कश्मीरी महिलाएं विज्ञान, तकनीकी, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, सूचना प्रौद्योगिकी से लेकर बैंकों, समाज-सुधार के क्षेत्रों और मानवाधिकार संस्थाओं में कार्यरत हैं। कोई भी क्षेत्र उनके लिए अछूता नहीं है।

* मकान नं. 3020, सैक्टर-23,
गुड़गांव-122017 (हरियाणा)

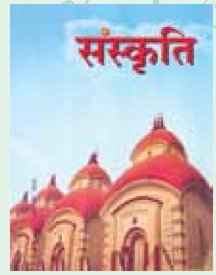

आपका पत्र मिला

आप द्वारा संपादित पत्रिका 'संस्कृति' में भारतीय संस्कृति की परंपराओं, लोक संस्कृति, पुरातत्व, भारतीय कला और साहित्य की गहनता और गंभीरता से प्रस्तुति है। हमारे देश में भारतीय संस्कृति की कला और साहित्य के प्रदर्शन और प्रस्तुतिकरणका अभाव है। इस दुर्भागयपूर्ण यथार्थ के संदर्भ में 'संस्कृति' पत्रिका बहुत महत्वपूर्ण है। संस्कृति मंत्रालय द्वारा 'संस्कृति' की पत्रकारिता का प्रयास प्रशंसनीय और सराहनीय है। एक भारतीय होने के नाते से भी, मैं आपका आभार और अभिनंदन व्यक्त करती हूँ।

तारा गाँधी भट्टाचार्य
उपाध्यक्ष, गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली

संस्कृति का अंक मिला। अंक बहुत सुन्दर छपा है और उसमें सम्मिलित लेख भारत की विविध आयामी संस्कृति का भव्य परिचय देते हैं। आपने सम्पादन में बहुत परिश्रम किया है और आपकी सूक्ष्म दृष्टि प्रत्येक पन्ने पर परिलक्षित होती है। मंत्री और मंत्रालय दोनों बधाई के पात्र हैं। यदि आप अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद करवा सकें तो लेख भेज दूंगा। नमस्कार और बधाई के साथ।

प्रो. लोकेशचन्द्र
हौज़ खास एनक्लेव, नई दिल्ली

संस्कृति मंत्रालय की धरोहर 'संस्कृति' पत्रिका एकमात्र ऐसा ज्ञानकोष है, जिसमें विभिन्न राज्यों की संस्कृतियों, इतिहास और समाज की झलक मिलती है। लेख लिखना और भेजना एक प्रक्रिया है, पर उन लेखों को सजाना, रंग भरना और पूर्णता देना दक्षता का काम है। संपादक की संपादन कला से अभिभूत हूँ। संपादक और इससे जुड़े सभी लोग बधाई के पात्र हैं। डॉ. लीना मिश्र का भुशुण्डी रामायण तथा डॉ जगन सिंह का भरमौर की जनजातीय संस्कृति लेख ज्ञानवर्धक हैं।

डॉ. बीना बुदकी
वसुंधरा, गाजियाबाद

'संस्कृति' के 18 वें अंक की प्रति प्राप्त हुई। हार्दिक धन्यवाद। मुझ जैसे अकिंचन मलयालम भाषा-भाषी के लिए यह सर्वोत्तम प्रकाशन चिरस्मरणीय रहेगा। प्रथमत: संस्कृति की मुख-मुद्रा आदरणीय रही है-'प्राच्या नव्या विलसतुतरां संस्कृति भारतीया' नितांत सत्य है। मामल्लापुरम के महिषासुरमर्दिनी पैनल का सौन्दर्यबोध, प्राचीन कुरूक्षेत्र की भौतिक संस्कृति, भुशुंडि रामायण आदि लेख पठनीय हैं। मैं भी कुछ लिखने का प्रयत्न करूँगा।

जे.आर. बालकृष्णन नायर
चिलक्कुर, वर्कला, तिरुवनंतपुरम (केरल)

इस सुन्दर 'संस्कृति' पत्रिका का एक-एक पृष्ठ केवल दर्शनीय ही नहीं है, पठनीय भी है और संग्रहणीय भी है। हमारे देश के विभिन्न प्रांतों की, विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृति का परिचय तो इसमें मिलता ही है पर कुछ दूर-सुदूर देशों की संस्कृति की भी पहचान होती है। विवाह की विचित्र प्रथाएं लेख बहुत कुछ समझा देता है। ऐसी गहन प्रथाओं का और विचित्र प्रथाओं को जानना बहुत ही रोचक लगा। श्री सुदर्शन वशिष्ठ का लेख पहाड़ी कलम सचमुच में पहाड़ तथा उसकी कला, उसका आर्ट हमारी आंखों के सामने खड़ा कर देता है। भरमौर की जनजाति के साथ-साथ मणिमहेश यात्रा पूरे भरमौर की जानकारी, चम्बा-कांगड़ा और वहाँ का समस्त सौंदर्य इस भरमौर लेख में समेटा हुआ है। सबसे सुन्दर और सबसे अधिक ज्ञानवर्द्धक लेख इस संस्कृति में 'भुशुण्डिरामायण:भारतीय संस्कृति की आत्मा' है। इस सुन्दर और ज्ञानवर्द्धक अंक के लिये आपको तथा आपके समस्त सहयोगियों को मेरा बहुत-बहुत साधुवाद।

उर्मि कृष्ण
शास्त्री कॉलोनी, अम्बाला छावनी (हरियाणा)

'संस्कृति' पत्रिका को मैं अपने निजी पुस्तकालय में संजोये रखता हूँ। क्योंकि उनमें प्रकाशित आलेख शोधपूर्ण एवं ऐतिहासिक विवरणों से भरे हुए हैं। पत्रिका की अतिसुन्दर, आकर्षक एवं प्रेरणादायक सामग्री संकलन एवं प्रकाशन के लिए आप सब अभिनन्दन के पात्र हैं। सरकारी तंत्र में रहते हुए इतनी निष्ठा और इतनी श्रद्धा देखकर हम पाठक अभिभूत हैं। 'मामल्लपुरम के महिषासुरमर्दिनी पैनल का सौंदर्यबोध', 'मध्ययुगीन साहसिक यात्री मार्कोपोलो की यात्रा में दक्षिण भारत का वर्णन' अति आकर्षक एवं प्रामाणिक विवरणों से भरे पड़े हैं, जो पठनीय एवं संग्रहणीय हैं।

डॉ. एम. शेषन
के.के. नगर (वेस्ट), चेन्नई

'संस्कृति' के 18वें अंक की प्रति प्राप्त हुई। इस पत्रिका में भारतीय संस्कृति की विविधता, रोचकता तथा समृद्धि की झलक मिली। इतना ही नहीं पत्रिका का रंग-रूप इतना मनमोहक व आकर्षक है कि इसे देखते ही खोलकर देखने की तत्पर इच्छा होती है। इसकी रचना सामग्री के अध्ययन से परम्परा रूप में चली आ रही सांस्कृतिकता एवं राष्ट्रीयता का भरपूर ज्ञान प्राप्त होता है। इस पत्रिका से आने वाले शोधार्थी एवं अनुसंधानकर्ताओं को सहायता मिल सकती है। यह मेरा सौभाग्य है कि आपने मुझे इस पत्रिका का हकदार समझकर यह पत्रिका भेजी।

डॉ. ह. रिपुप्यारी देवी
वांखै, थांगपात, मपाल, इम्फाल

'संस्कृति' का अंक-18 मिला। यद्यपि पत्रिका में प्रकाशित अधिकांश गवेणात्मक तथा शोध परक आलेख हम जैसे अध्येता/ शोधार्थी हेतु अत्यंत उपयोगी और मूल्यवान हैं। तथापि कला और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले आलेखों में विशेषत: 'मामल्लपुरम के महिषासुर-मर्दिनी पैनल का सौन्दर्य बोध', प्राचीन कुरूक्षेत्र की भौतिक संस्कृति', निमाड़: इतिहास और संस्कृति की धरोहर', 'बुंदेलखण्ड और सांस्कृतिक अस्मिता: इतिहास के आइने में', 'मानव सभ्यता की जीवंत सांस्कृतिक छवियों वाला प्रदेश झारखण्ड', झारखण्ड के अभिलेखों में प्रतिबिम्बित स्थापत्य कला' एवं 'मध्य गंगा घाटी की गुप्तकालीन मूर्तियों में केश-विन्यास और शिराभूषण' और वेदों में पर्यावरण की अवधारणा वाले खोजपूर्ण एवं सारगर्भित लेख बहुत पसंद आए। इस कड़ी में उल्लेखनीय है कि यशस्वी सम्पादक के सुविचारों में 'भारतीय संस्कृति' तथा 'सर्वधर्म समभाव' के स्वर मुखरित होते हैं। आपके कुशल संपादन हेतु हम अपने अन्तर्मन से सराहना भी करते हैं।

डॉ. हनुमान जी
बाबतपुर, भनई का पुरा, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

'संस्कृति' के अंक संग्रहणीय एवं सुरुचिपूर्ण हैं। 'संस्कृति' स्वर्णजयंती पूर्ण करके और तेज एवं उपयोगी होती जा रही है। भारतीय संस्कृति के अनदेखे पक्षों एवं आयामों को उद्घाटित करना अपने में स्तुत्य कार्य है। हमारे देश में इतिहास, पुरातत्व, संस्कृति एवं परंपरा, कला एवं साहित्य की नई-सी-नई जानकारी प्रस्तुत करने वाली एकमात्र पत्रिका यही है। ऐसे अंकों को नियमित निकालना एवं पाठकों को संस्कृति के अर्थ और महत्व को विस्तार से समझाना स्तुत्य कार्य ही है। किसी साहित्यक पत्रिका का महत्व तभी जाकर शाश्वत हो पाता है, जब वर्षों बाद पाठक उसे याद करते हों और उसकी सामग्री का उपयोग करते हों। इस दृष्टि से 'संस्कृति' सरकारी पत्रिका होकर भी कलात्मक सौन्दर्य एवं वैचारिक गरिमा से युक्त आकर्षक चित्रों सहित मन को मोह लेती है। संपादक मण्डल को हार्दिक बधाई देना हम अपना कर्म समझते हैं।

प्रो.(डॉ) वी.डी.कृष्णन नंपियार
तिरूवल्ला (केरल)

'संस्कृति' का हर अंक अछूता-अनूठा होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। सुष्ठ एवं सूचनाप्रद सामग्री एवं उसकी सुरुचिपूर्ण प्रस्तुति जीवन से जोड़ती एवं सौन्दर्यबोध को नया आयाम देती पत्रिका का हर अंक सच में अद्‌भुत और संग्रहणीय होता है। इस अंक के सभी आलेख सूचनाप्रद एवं रोचक हैं। मुझे सभी विशिष्ट लगे। किस-किस के लेखक को साधुवाद दूं। सभी के प्रति मेरा नमन है, उनके गवेषणात्मक सांस्कृतिक चिन्तन के लिए। ऐसी सुरुचि-समृद्ध सामग्री को अंक में प्रस्तुत करने हेतु मेरा हार्दिक अभिनन्दन स्वीकारें।

कुमार रवीन्द्र
अर्बन एस्टेट, हिसार (हरियाणा)

'संस्कृति' के 18वें अंक की एक प्रति मिली। हमारे देश की सांस्कृतिक सम्पदा के विशाल भंडार को विश्व संस्कृति के साथ परोसकर पत्रिका के ज़रिए आपने प्राचीन और अर्वाचीन सांस्कृतिक पहचान स्थापित करने का पुनीत कार्य किया है। जहाँ तक प्रकाशित लेखादि और रचनाओं की स्तरीयता और उत्कृष्टता की बात है, जितना भी कहुंगा, कम होगा। आकर्षक चित्रों के साथ हमारी लोक कला, साहित्य, संस्कृति और परंपरा विज्ञ लेखकों की लेखनी से प्रस्तुत करके 'संस्कृति' ने हमारी सोच और समझ की उत्कृष्टता का परिचय दिया है।

बिर्ख खड़का डुवर्सेली
दुर्गागढ़ी, प्रधान नगर, दार्जिलिंग

संस्कृति का अंक 18 मिला। स्तरीय लेख, वैविध्य से भरे परिदृश्य और सचित्र लेखों ने सचमुच इस अंक को धरोहरी रूप (सांस्कृतिक) प्रदान किया है। पूरब-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण के अखिल भारतीय स्वरूप का दर्शन इस अंक में एक ही साथ हो जाता है। कतिपय अनछुए सांस्कृतिक पक्षों को 'संस्कृति' में प्रस्तुत कर भारतीय संस्कृति का सरल बोध कराया गया है। भुशुण्डिरामायण, वेद संबंधी आलेख व हिंदवी के संदर्भ में खुसरो की चर्चा अंक को ऊँचाई प्रदान करते हैं। संपादकीय का दिशाबोध और अंत में अपनी बात का निर्देश किसी भी सम्पादक का सम्पादन में सिद्धता प्रकट करता है।इतनी पुरानी भारतीय संस्कृति के 51वें वर्ष में प्रविष्ट होकर 'संस्कृति' प्रौढ़ हो गई है। अब 'संस्कृति' का यह सांस्कृतिक प्रवाह न बंद हो न मंद हो संपादक से यही अभ्यर्थना है।

उदय प्रताप सिंह
हरनारायण विहार, सारनाथ, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

'संस्कृति' अपने 51वें वर्ष में प्रवेश कर रही है। अपने नाम के अनुरूप अद्वितीय अन्वेषण कर निरन्तर समाज और राष्ट्र को अपनी समर्पण भावना से अभिभूत कर रही है। पत्रिका पठनीय-संग्रहणीय है।ऐसी ज्ञानवर्द्धक पत्रिका की तथा सम्पादक की सम्पादन कला की भूरी-भूरी प्रशंसा करता हूँ। पत्रिका के सभी लेख शोधपूर्ण मार्मिक तथा हृदय स्पर्शी हैं 'मामल्लपुरम' के महिषासुर-मर्दिनी पैनल का सौन्दर्य बोध, प्राचीन कुरूक्षेत्र की भौतिक संस्कृति, मानव सभ्यता की जीवंत सांस्कृतिक आत्मा, वैदिक समाज और साहित्य में स्त्री की भूमिका आदि सभी आलेख ज्ञानवर्द्धक हैं। विद्वान लेखकों के प्रति साधुवाद। पत्रिका 'संस्कृति' राष्ट्र हित में परमउपयोगी है। उत्तरोत्तर अभिवृद्धि की कामना करता हूँ।

डॉ. शारदा प्रसाद 'सुमन'
कमला नगर, फिरोज़ाबाद (उत्तर प्रदेश)

मैंने प्रथम बार 'संस्कृति' पत्रिका का दर्शन किया। इसे देखकर आश्चर्ययचकित हूँ कि इसभाषाई प्रदूषण के युग में विविध आयामों के साथ ज्ञान, बोध और मनन की गंगा इस पत्रिका के माध्यम से जिज्ञासु पाठकजनों तक आप पहुँचा रहे हैं। इसके लिए बहुत-बहुत बधाई। संस्कृति में प्रकाशित सभी सामग्री पठनीय और संग्रहणीय है। सम्पादक की अन्तर्दृष्टि और विद्वत्ता का दिग्दर्शन होता है। पत्रिका की साज-सज्जा और सुन्दरता मनमोहक है। इस लोकप्रिय और आकर्षण पूर्ण पत्रिका का अनवरत रूप से प्रकाशन होता रहे। आप सतत् अपनी सम्पादकीय कला की छटा बिखेरते रहें। सभी लेखकों को बधाई और पत्रिका परिवार के सभी सदस्यों को साधुवाद और मेरी शुभकामनाएं।

डॉ.आर.पी. पाठक
श्री लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली
ई-मेल : pathakoham@gmail.com

'संस्कृति' पत्रिका का 18वां अंक प्राप्त हुआ। इस अंक के माध्यम से भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, वह वंदनीय एवं स्तुत्य है। रामशरण 'युयुत्सु' के माध्यम से कुरूक्षेत्र की वैदिक संस्कृति का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, वह वास्तव में सराहनीय है। संस्कृति गह्वर अमरकंटक में डॉ. अनिल कुमार ने वहाँ की प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक छटा का जो दृश्य प्रस्तुत किया है, वह अपने आप में शोध का विषय है। डॉ. परमानन्द पांचाल ने मध्ययुगीन साहसिक यात्री, 'मार्कोपोलो' के माध्यम से जो सांस्कृतिक विविधता को समेटने का संदेश दिया गया है, वह अपने आप में यायावरी का बेहतरीन उदाहरण है। डॉ. लीना मिश्र द्वारा भुशुंडि रामायण का जो लेख किया गया है, वह भी हमारी सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। प्रदीप शर्मा खुसरो द्वारा अमीर खुसरो और गायक कुंदनलाल सहगल की गायकी के माध्यम से जो सुफियाना परम्परा दर्शाई गई है, वह भी हमारी सांस्कृतिक विरासत का ही एक हिस्सा है। डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा वेदों में 'पर्यावरण की अवधारणा' को अत्यंत वैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। पत्रिका की साज-सज्जा एवं चित्रावली बेहतरीन स्वरूप में प्रस्तुत की गई है। इन सभी के लिए आपको मेरी तरफ से शुभकामनाएं और ढ़ेर सारी बधाईयाँ।

डॉ. महासिंह पूनिया
हिन्दी विभागाध्यक्ष, यूनिवर्सिटी कॉलेज, कुरूक्षेत्र

हमेशा की तरह इस अंक में भी भारतीय संस्कृति की पौराणिक, ऐतिहासिक, साहित्यक एवं सांस्कृतिक यात्रा कराने के लिए कोटि-कोटि धन्यवाद।पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव और भौतिकता की चकाचौंध में लोग अपनी बहुमूल्य सांस्कृतिक धरोहर से दूर होते जा रहे है। दृश्य-श्रव्य माध्यम और हिंदी की साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में भी भारतीय संस्कृति की विविधता, विशेषता का प्रचार-प्रसार बहुत कम होता है। इस स्थिति में 'संस्कृति' के माध्यम से जो अभियान आपने छेड़ा है वह सभी भारतीयों के लिए गर्व की बात है।मैं अपने महाविद्यालय के छात्र-छात्राओं, साथी अध्यापकों एवं शहर के साधुजनों को संस्कृति पत्रिका पढ़ने के लिए देता हूँ, ताकि लोग भारतीय संस्कृति के अनछुए अज्ञात पहलुओं को जान सकें।

डॉ.ललित पंड्या
पटेल कॉलोनी, जामनगर (गुजरात)

भारतीय संस्कृति का करती जो सर्वत्र प्रसार,
जिसका प्रिय उद्गीथ छेड़ता हृदयतंत्री के तार,
कला-रीति और सर्वसमन्वय का छेड़े संगीत,
भव्य चेतना का करती है 'संस्कृति' शुभ संचार।
भारतेश की सतत साधना,श्रम का है उपहार,
सुरभित फूलों का बाँटा करता जन-मन को हार,
कलितकलेवर, प्रस्तुति शोभन, आकर्षण का केन्द्र
भावप्रसून जिसे मैं अर्पित करती बारम्बार।
संस्कृति-मंत्रालय संस्कृत भावों का पारावार,
ज्योतिर्मय करने वाला कर सकता भव उद्धार।

डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी
आँचल कॉलोनी, श्यामगंज, बरेली(उत्तर प्रदेश)

'संस्कृति' का अंक 18 हस्तगत हुआ, कृतज्ञ हूँ। इस अंक को आद्यान्त मलयानिल उच्छवास की तरह धीरे-धीरे पी गया। सम्पादकीय 'संस्कृति सत्य, सौंदर्य और नैतिक शिव' एक नव्य चिंतन देता है। अंक का अध्ययन कर चित्त प्रसन्न हो गया सभी आलोखों की मैं हृदय से प्रशंसा करता हूँ। डॉ. रमेश कुन्तल मेघ ने अपने आलेख मामल्लपुरम् के महिषासुर-मर्दिनी पैनल का सौंदर्यबोध पर सप्रमाण सारगर्मित एवं शोधपूर्ण चिन्तन किया है। सभी कलात्मक तथा अनुसंधानिक विषयों पर प्रकाशित आलेख शोधार्थियों के लिए अमूल्य निधि हैं। सांस्कृतिक क्षरण के इस युग में भारतीय चिंतन, कला, मनन और अध्ययन के सर्वव्यापी और सर्वग्राही बनाने में आपकी इस प्रत्रिका का बहुमूल्य योगदान है।

डॉ. रमेश सोबती
एन.आर.आई. एवेन्यू, सुखचैन रोड, फगवाड़ा (पंजाब)

कला, साहित्य एवं सामाजिक संस्कारों की प्रमुख पत्रिका संस्कृति का प्रत्येक अंक सराहनीय होता है। समीक्षित अंक भी गंभीर, गहन विश्लेषणयुक्त रचनाओं से युक्त है। अंक में ख्यात आलोचक समीक्षक रमेश कुंतल मेंघ का आलेख सौन्दर्यबोध को नए सिरे से परिभाषित करता है। रामशरण युयुत्सु, अनिल कुमार तथा भालचंद्र जोशी के लेख क्षेत्रीय संस्कृति तथा सरोकारों की अच्छी प्रस्तुति कही जा सकती है। नरेश पुण्डरीक ने बुंदेलखण्ड तथा अश्विनी कुमार ने झारखंड को नए सिरे से सजाया सवांरा है। राजेन्द्र कुमार दीक्षित, परमानंद पांचाल, देवेन्द्र नाथ ओझा एवं लीना मिश्र ने हमारी ऐतिहासिक सांस्कृतिक धरोहर को विश्लेषित कर उन्हें पाठकों की मुख्य पसंद बना दिया है। लोकेश चंद्र, मीना सिंह, कृपाशंकर सिंह तथा वीरेन्द्र सिंह यादव अपने-अपने विषयों के साथ अच्छी तरह से न्याय कर सके हैं। वैदिक समाज और साहित्य में स्त्री की भूमिका (श्रुतिकांत पाण्डेय), भरमौर की जनजातीय संस्कृति (डॉ. जगन सिंह), विवाह की विचित्र प्रथाएं (योगेश चंद्र शर्मा) एवं रवीन्द्र नाथ झा के आलेख पठनीय व संग्रह योग्य हैं। सुदर्शन वशिष्ठ, प्रदीप शर्मा तथा सुमित पी.बी. ने स्पष्ट व सारगर्भित विश्लेषण अपने-अपने आलेखों में किया है। पत्रिका का कलेवर, साज-सज्जा तथा प्रस्तुतिकरण प्रभावित करता है। इस अमूल्य पत्रिका को प्रत्येक पाठक पढ़कर सहेजना चाहेगा।

अखिलेश शुक्ल
http://katha-chakra.blogpost.com

संस्कृति के अंक-18 के संबंध में लेखकों, पाठकों और प्रशंसकों से भारी संख्या में प्राप्त हुए सुझाव, प्रतिक्रियाओं तथा उत्साहवर्धक पत्रों के लिए हम आभारी हैं। स्थानाभाव के कारण सभी पत्रों को शामिल कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अत: कुछ गिने-चुने पत्रों का ही उल्लेख किया जा रहा है। जिन पाठकों से कुछ विशेष प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुई हैं, उनमें से कुछ नाम निम्नानुसार हैं:-

डॉ. विद्या विनोद गुप्त, चाम्पा (छत्तीसगढ़); **ओम पुरोहित 'कागद'**, संगम (राजस्थान); **संतोष खरे**, सतना (मध्य प्रदेश); **डॉ. सर्जुन प्रसाद**, नई दिल्ली; **डॉ. तारादत्त 'निर्विरोध'**, जयपुर (राजस्थान); **हरी राम मीणा**, आई.पी.एस.; **बलूह बद्दन**, नेशनल बुक ट्रस्ट; **गोपाल जी गुप्त**, कानपुर; **रामशरण युयुत्सु**, जीन्द (हरियाणा); **डॉ. केवल कृष्ण पाठक**, जीन्द (हरियाणा); **डॉ. मनोज श्रीवास्तव**, गाजियाबाद, (उत्तर प्रदेश); **बालकवि बैरागी**, नीमच (मध्यप्रदेश); **डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया**, भारती नगर, अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश); **डा. रमेश कुंतल मेघ**, पंचकुला (हरियाणा); **बी.एस.शांताबाई**, प्रधान सचिव, कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति, बंगलुरू; **रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव 'परिचयदास'**, सचिव, हिंदी अकादमी, दिल्ली; **डॉ. प्रभा पंत**, एम.बी.राज.स्ना.महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल; **डॉ. यतीन्द्र तिवारी**, इन्दिरा नगर, कानपुर; **डॉ. अमित शुक्ल**, द्वारिका नगर, रीवा (मध्य प्रदेश); **अभय छजलानी**, इंदौर; **डॉ. नवरत्न कपूर**, नेरूल, नवी मुम्बई; **प्रो. राममोहन पाठक**, वाराणसी; **नवकान्त शर्मा**, गुवाहाटी; **डॉ. दिनेश पाठक शशि**, सारंग विहार, मथुरा; **डॉ. दीप्ति बी. परमार**, कालावाड़ रोड,

राजकोट (गुजरात); **उदय ठाकुर**, अम्बाला छावनी, (हरियाणा); **डॉ. भगवान शरण भारद्वाज**, सिन्धुनगर, बरेली; **रामनिहाल गुंजन**, नया शीतल टोला, आरा (बिहार); **नन्दलाल ई. परशरामाणी**, सलुम्बर, उदयपुर (राजस्थान); **डॉ. वि.रा.देवगिरी**, जयनगर, बंगलुरू; **डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी**, पानीपत (हरियाणा); **प्रो. (डॉ.) दिवाकर 'दिनेश' गौड**, गोधरा (गुजरात); **प्रो. पी.डी. सोनकर**, राजनादगांव (छत्तीसगढ़); **के. एल. श्रीवास्तव**, जगदलपुर (छत्तीसगढ़); **सुरेन्द्र चौरसिया**, दमोह (मध्य प्रदेश); **डॉ. केशुभाई देसाई**, गाँधी नगर (गुजरात); **मनमोहन सरल**, बांद्रा (पूर्व) मुम्बई; **प्रो. कृष्ण कुमार द्विवेदी**, राजनादगांव (छत्तीसगढ़); **विजय बहादुर सिंह**, निराला नगर, भोपाल; **राज किशन नैन**, अजायब, रोहतक (हरियाणा); **चंद्रमौलेश्वर प्रसाद**, अलवाल, सिंकदराबाद (आंध्र प्रदेश); **स्वामी वाहिद काज़मी**, अम्बाला छावनी (हरियाणा); **विनोद शंकर गुप्त**, जिन्दल मार्ग, हिसार (हरियाणा); **ओम प्रकाश वाल्मीकि**, लाडपुर, देहरादून; **कृष्ण कुमार अष्ठाना**, संपादक-देवपुत्र, इंदौर (मध्य प्रदेश); **डॉ. रामनिवास 'मानव'**, हिसार (हरियाणा); **डॉ. अरुण कुमार**, त्रिवेणीगंज (बिहार); **सलीम खाँ फरीद**, हमासपुर, सीकर (राजस्थान); **डॉ. त्रिभुवन राय**, परेल विलेज, मुंबई; **भगवती प्रसाद देवपुरा**, साहित्य-मण्डल, श्री नाथद्वारा; **प्रो. शामलाल कौशल**, रोहतक (हरियाणा); **विवेक कुमार मिश्र**, सिविल लाइन्स, झालावाड़ (राजस्थान); **के.डी. तिवारी**, बर्रा, कानपुर; **नरभिंडर**, सिरसा (हरियाणा); **प्रो.भगवानदास जैन**, अहमदाबाद (गुजरात); **मंजु सिंह**, हिंदी अधिकारी, भारतीय चुंबकत्व संस्थान, मुम्बई; **डॉ. राजेश कुमार**, विष्णुपुरी, अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश); रत्नेश कुमार, गुवाहाटी; **ईशान महेश**, प्रशांत विहार, रोहिणी, दिल्ली; **राकेश कुमार सिंह**, कतीरा, आरा (बिहार); **अखिलेश श्रीवास्तव चमन**, महानगर, लखनऊ; **डॉ. चन्द्रमणी ब्रह्मदत्त**, अध्यक्ष, नारायणी साहित्य अकादमी, द्वारका, नई दिल्ली; **डॉ अनिता गोपेश**, प्रोफेसर-प्राणिविज्ञान, इलाहाबाद विश्वविद्यालय; **कुशेश्वर**, मुदियाली, कोलकाता, सुनीता कुमारी, शोध छात्रा, भागलपुर विश्वविद्यालय; **डॉ. ज्ञानवती दीक्षित**, सीतापुर (उत्तर प्रदेश); **नरेश कुमार 'उदास'**, पालमपुर (हिमाचल प्रदेश); **किशोरी चौधरी**, पत्रकार, इस्लामपुर, नालंदा (विहार); **प्रमोद भार्गव**, शंकर कॉलोनी, शिवपुरी (मध्य प्रदेश); **डॉ. वी. वेंकटेश्वरा**, चेन्नै; **श्री राजेश मिश्र**, वरिष्ठ पत्रकार, रोहिणी, दिल्ली; **डॉ. प्रीति 'कबीर'** संपादक-संसद से सड़क तक, लखनऊ; **संजीव ठाकुर**, इंदिरापुरम, गाजियाबाद; **डॉ. योगेश्वरी शास्त्री**, राणाप्रताप नगर, नागपुर; **रघुवीर पाठक**, घोघा, भागलपुर (बिहार); **ललित शर्मा**, मंगलापुरी, झालावाड़ (राजस्थान); **युगेश शर्मा**, भोपाल (मध्य प्रदेश); **श्री कृष्ण त्रिवेदी**, फतेहपुर (उत्तर प्रदेश); **जीवन सिंह**, अरावली विहार, अलवर (राजस्थान); **केवल गोस्वामी**, सरिता विहार, नई दिल्ली; **डॉ. संतोष मिश्र**, स्याल्दे, अल्मोड़ा (उत्तराखंड); **जगदीश पंवार**, रोहिणी, दिल्ली; **डॉ. रामप्रकाश यादव**, सहायक प्रोफेसर, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा; **भगवान अटलानी**, मालवीय नगर, जयपुर (राजस्थान); रतिलाल शाहीन, अंधेरी (प.), मुम्बई; **डॉ. मित्रेश कुमार गुप्त**, तिलक मार्ग, मेरठ (उत्तर प्रदेश); **ओंकार स्वरूप चतुर्वेदी**, लूकरगंज, इलाहाबाद; **रामनारायण मिश्र**, गाजियाबाद; **डॉ. प्रणव पंड्या**, कुलाधिपति, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार; **प्रो. सुरेश कुसुंबीवाल**, भुसावल (महाराष्ट्र); **राजेन्द्र दीक्षित**, तक्षशिला महाविद्यालय परिसर, छतरपुर; **छोटे लाल यादव**, रतलाम (मध्य प्रदेश); **प्रो. नन्दलाल कल्ला**, चाँदपोल, जोधपुर (राजस्थान); **डॉ. किश्वर सुल्ताना**, रामपुर (उत्तर प्रदेश); **डॉ. दिनेश चन्द्र अग्रवाल**, शिव विहार सहारनपुर (उत्तर प्रदेश); **प्रो.योगेश चन्द्र शर्मा**, मानसरोवर, जयपुर (राजस्थान); **प्रो. नरसिंह श्रीवास्तव**, मोहाद्दीपुर, गोरखपुर; **लोक बाबू**, रिसाली, भिलाई नगर (छत्तीसगढ़); **प्रो. सीताराम गुप्त 'दिनेश'** गढ़ी परिसर, आलमपुर, भिंड (मध्य प्रदेश); **कुलदीप कौर**, पुस्तकाध्यक्ष, सेल्यूलर जेल, पोर्टब्लेयर।

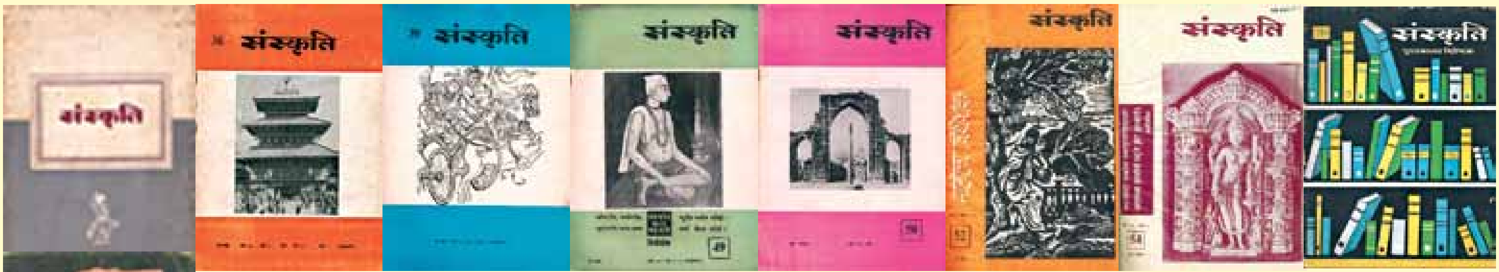

अपनी बात

* 'संस्कृति' पत्रिका अर्द्धवार्षिक है।

* 'संस्कृति' के लिए कला और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (पुरातत्व, मूर्त और अमूर्त विरासत, मानव विज्ञान, लोक एवं जनजातीय कला, हस्तशिल्प, पुस्तकालय, संगीत, नृत्य और नाटक) पर लिखे गवेषणात्मक, शोधपरक और भावपूर्ण लेख आमंत्रित हैं।

* देश-विदेश की सांस्कृतिक परियोजनाओं, कार्यकलापों तथा प्रयोगों संबंधी अधिकृत सूचना पर आधारित लेख भी भेजे जा सकते हैं, लेकिन इस बात का अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिए कि लेख वस्तुनिष्ठ और पूर्णरूपेण निष्पक्ष हों।

* लेख मौलिक और अप्रकाशित हों।

* अन्य भाषाओं के संस्कृति विषयक लेखों का हिंदी अनुवाद भी भेजा जा सकता है, बशर्ते कि अनुवाद और प्रकाशन के लिए मूल रचनाकार की अनुमति प्राप्त कर ली हो।

* 'संस्कृति' में प्रकाशित लेखों के लिए उचित मानदेय दिए जाने का प्रावधान है।

* लेखक द्वारा प्रतिपादित विचार उसके अपने होते हैं, अतः यह आवश्यक नहीं है कि वे सरकार के दृष्टिकोण या सहमति को व्यक्त करते हों।

* 'संस्कृति' में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख अधिमानतः **Walkman-Chanakya, DevLys** अथवा **KrutiDev** फॉन्ट में टाइप करवाकर चित्रों सहित ई-मेल द्वारा ही भेजे जाएं।

ई-मेलः editorsanskriti@gmail.com
dirol-culture@nic.in

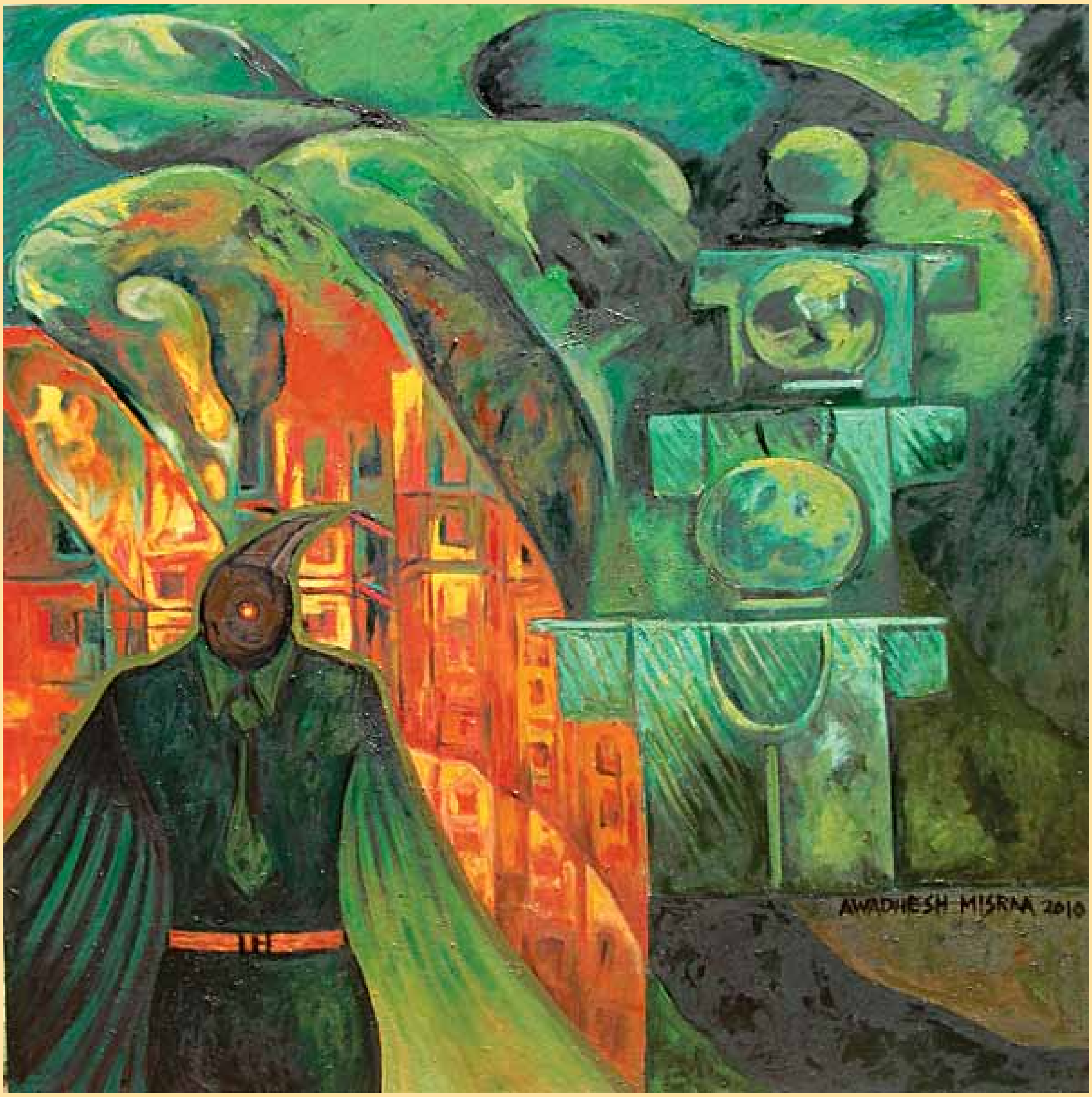

रंग संयोजन, 2010, कैनवास पर तैल रंग, 120 × 120 सें.मी.
चित्रकार : डॉ. अवधेश मिश्र, लखनऊ

मुद्रण: इंडिया ऑफसेट प्रेस, नई दिल्ली, 011-28116494/5486